प्रकाशक—
फूलचन्द गुप्त,
संचालक
सरस्वती पुस्तक सदन,
मोतीकटरा, आगरा ।

प्रथम संस्करण } संवत् २०१२ { सन् १९५५ ई०

मुद्रक—
राकेशचन्द्र उपाध्याय,
आगरा पॉपूलर प्रेस,
मोतीकटरा, आगरा ।

विषय सूची

भूमिका

हिन्दी साहित्य के उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को नाटक के तत्व, विभिन्न प्रकारों, तथा शैलियों और उनकी प्रमुख कृतियों का परीक्षोपयोगी संक्षिप्त आलोचनात्मक अध्ययन एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाय—यही प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य है। इसमें हिन्दी नाटकों के हर पहलू तथा नवीनतम विकास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अनेक गणमान्य आलोचकों के लेखों की सम्मितियाँ और लेख उद्धृत किये गये हैं। विभिन्न परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर भी मिल सकें, ऐसा प्रयत्न किया गया है। गत दस वर्षों में हिन्दी नाटक ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, अनेक नाटककार हिन्दी नाटकों के भंडार को पूर्ण कर रहे हैं। इनका भी समावेश संक्षेप में कर दिया गया है।

हिन्दी नाटकों के पूरे अध्ययन के लिए विद्यार्थियों को निम्नलिखित पुस्तकों, जिनसे प्रस्तुत ग्रन्थ में सहायता ली गई है, का अध्ययन करना चाहिये—डा० सोमनाथ गुप्त "हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास"; डा० नगेन्द्र "आधुनिक हिन्दी नाटक", प्रो० जयनाथ नलिन कृत "हिन्दी नाटककार"; प्रो० शिवनाथ कृत "हिन्दी नाटकों का विकास', श्री ब्रजरत्नदास "हिन्दी नाट्य साहित्य"' डा० दशरथ ओझा कृत "हिन्दी नाटक उद्भव तथा विकास" आदि।

मैं सर्व श्री डा० रामकुमार वर्मा, प० उदयशकर भट्ट, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डा० भगवतशरण उपाध्याय, डा० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, प्रो० कमलेश, श्री रामप्रकाश शर्मा, प्रो० रामप्रकाश अग्रवाल, प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त, तथा प्रो० प्रेमचन्द आदि विद्वानों का विशेष ऋणी हूँ जिन्होंने कृपापूर्वक अपने निबन्ध पुस्तक के लिए दिये हैं। इनके अतिरिक्त मैं "सरस्वती सवाद" के प्रबन्धक श्री प्रतापचन्द्र जी जैमवाल का भी आभारी हूँ जिन्होंने अपने मासिक पत्र में से कुछ लेख उद्धृत करने की अनुमति प्रदान की है। उपरोक्त महानुभावों के प्रेमपूर्ण सहयोग के बल पर ही इस पुस्तक की उपयोगिता बढ सकी है।

—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

भारतीय लोक-नाट्य

नाटक का उदय—

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मानव आत्माभिव्यञ्जन करने वाला प्राणी है। उस अन्तस्थल में सागर की उत्ताल-तरंगों की भाँति जिन सूक्ष्म उमंगों, भावनाओं कटु-मृदु अनुभूतियों का आवर्त्तन चलता रहता है, वह उस भावोद्वेग को नृत्य, संगीत, कायिक हलचल, मुख के विभिन्न हाव-भावों, अंगों प्रत्यंगों के तोड़-मरोड़ तथा आन्तरिक-भाव विन्यास के अनुसार गतिशील अभिनय के द्वारा व्यक्त करता है। बिना क्रियाओं, मुख-मुद्राओं या कायिक अभिनय से उसे परि-तुष्टि नहीं होती। जब हम किसी मर्मस्पर्शी घटना का वर्णन करते-करते शब्दों को अभिव्यक्ति के लिये अपूर्ण पाते हैं, तो स्वभावतः हाथों से स्थिति को अभिनय द्वारा प्रकट कर देते हैं। × आदि निवासी नाच उठते हैं; भावात्मक और कलात्मक रुचि के व्यक्ति सबके समक्ष हाव-भाव ,मुख-मुद्राओं, नृत्य, स्वर-संधान तथा अभिनय द्वारा भावाभिव्यञ्जन करते हैं। ग्रामीणों के नृत्यों में अभिनय ही भाषा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। मानव की यह अदम्य आत्माभिव्यंजन की प्रवृत्ति ही लघु अभिनयों का आदि स्रोत है।

आदि जातियों में प्रकृति का साहचर्य, नाना ऋतुओं का साहचर्य और उनके द्वारा अन्तस्थल में उठे हुए नाना विकार अभिनय की प्रेरणा के केन्द्र बने थे। ऋतुओं के परिवर्तन द्वारा प्रकृति के प्रांगण में खेलने वाली सरिताएँ लहलहाते खेत, शीतल उन्मुक्त समीर, सौरभमय पुष्प, हरित लतिकाएँ, सर, निर्झर एक अपूर्व आकर्षण एवं मादकता का संचार कर देते हैं। ये मादकता, उत्साह एवं आनन्द कायिक अङ्ग-परिचालन के रूप में प्रकट होते हैं। अन्य वृत्तियों के अतिरिक्त प्रणय-वृत्ति विशेष रूप से अभिनय, गान, नृत्य इत्यादि का कारण बनी।

भारतीय अभिनयों की उत्पत्ति धार्मिक समारोहों तथा पर्वों पर विशेष रूप से हुई। हमारे प्रारम्भिक अभिनय धार्मिक थे क्योंकि अभिनय के प्रयोग से

× जे. डब्लू-मेरियट "वन एक्ट प्लेज ऑफ टुडे" पृ० २६२

धार्मिक आख्यान प्रभावोत्पादक बन जाते थे + धार्मिक-सांस्कृतिक प्रेरणाओं से अद्भूत लोक-नाट्य का लोकप्रिय और सार्वजनिक रूप शनैः-शनैः शास्त्रीय नाट्यों में विकसित हुआ। नृत्य संगीत और अभिनय तीनों तत्व विलग न होकर एक सामूहिक इकाई के रूप में हमारे सम्मुख आये। जिनके उदाहरण आज भी हमें अनेक प्राचीन लोक-नाट्यों में मिलते हैं।* मानव-हृदय की निगूढतम अनुभूतियाँ-काम, क्षुधा, आनन्दातिरेक, उत्साह, भय तथा धर्मभावना नृत्यों के रूप में आदि ज्ञान-प्रभात से आज तक भावनाओं के प्रत्यक्षीकरण माध्यम बनकर हमारे समक्ष आती रही हैं। नृत्य मानव की एक प्रबल उद्दाम प्रेरणा की कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। नृत्यों का उपयोग देवों की पूजा तथा प्राचीन धार्मिक पौराणिक उपाख्यानों की अभिव्यक्ति के लिये हुआ। आदि नर्त्तक के मूक अभिनय विविध हाव-भाव, कायिक वाचिक क्रियाएँ, मुख-मुद्राएँ, स्वर-संधान प्रारम्भिक अभिनयों के आदि रूप हैं।

भारतीय लोक-नाट्य के प्रकार

खुले रंगमंच पर लघु अभिनयों का प्रारम्भिक स्वरूप धार्मिक लीलाएँ हैं। एक धार्मिक कथानक को अभिव्यक्त करने के लिये एक के स्थान पर अनेक नर्तक-नर्तकियों का समावेश किया गया। भारतीय नृत्य नाट्यों की परम्पराजन्य कथावस्तु पौराणिक है। रामायण तथा महाभारत आदि धर्मग्रन्थों से सहायता लेकर नाना कथानक लोकनाट्य का विषय बने हैं। नर्तक स्वतः अपने को नाना देवी-देवता, भक्त, सन्त, अप्सरा, असुर इत्यादि विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करते थे।

भारतीयों का परम्परानुगत विश्वास है कि ब्रह्मा ने वेदों से सार लेकर नाटकों की सृष्टि की थी वेदों और विशेषतः ऋग्वेद में ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं जिनमें इन्द्र, सूर्य, अग्नि, मरुत आदि देवी-देवताओं से प्रार्थना की गई है। साथ ही ऋग्वेद में विश्वामित्र, वशिष्ठ, सुदास आदि अनेक ऋषियों तथा नृपतियों का यशोगान भी है। सरिमा तथा पणिस, यम और यमी पुरूरवा और उर्वशी आदि के गीतों में कुछ कथोपकथन या संवाद हैं। इनमें अभिनय के तत्व विद्यमान हैं। इसी आधार पर मेकडानल और कीथ आदि विद्वानों ने यह

+ वही

* श्री देवीलाल सामर एम० ए० "राजस्थानी लोक-नाट्य" नया समाज (मार्च १९५२) पृष्ठ २१९

स्थिर किया है कि ससार में सर्व प्रथम रूपकों या लघु अभिनयों का प्रारम्भ भारत में हुआ था। मेक्समूलर, पिशल, लेवी आदि का भी यही मत है।

रामलीला

भारतीय लोक-नाट्य का प्रथम प्रकार रामलीला है। प्रायः सम्पूर्ण भारत में (विशेषतः उत्तर भारत में) रामलीला दशहरे के अवसर पर लोकप्रिय अभिनय का केन्द्र रही है। आधुनिक काल में जिसका स्वरूप परिष्कृत हो गय है किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में यह अपरिपक्व अभिनय, सगीत एवं कथोपकथन द्वारा सभी वर्ग एव समुदाय के व्यक्तियों का मनोरजन करती थी। दो खुले रंगमच निर्मित किये जाते थे, जिनमें एक पर राम लक्ष्मण तथा दूसरे पर रावण कुम्भकर्ण इत्यादि के वर्ग के व्यक्ति बैठते थे। परिधान चटकीला रहता था। कहीं कहीं राम तथा रावण इत्यादि पात्र चौपाइयों मे वर्णित संकेतों के अनुसार साधारण अभिनय भी करते थे। भारत की पौराणिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक परम्पराओं की रामलीला द्वारा सुरक्षा होती थी। रामलीला के प्रभाव से जिस अभिनय-कला का विकास हुआ, उसमें सवाद मात्र हुआ करता था, सो भी काव्य में। यह परिपाटी बहुत दिनों तक हिन्दी नाटकों में चलती रही है।+

यात्रा

बगाल मे कृष्ण के उपासक विशेष उत्सवों पर रामचरित की भाँति कृष्ण-चरित्र का अभिनय किया करते थे। उपासक गण विशेष उत्सवों पर अपने आराध्य की विभिन्न लीलाओं के संगीत नृत्य प्रधान-अभिनय करते हुए, नृत्य संगीत से विभोर गलियों में होते हुए मन्दिर के आँगन में पहुँचा करते थे। कालक्रम से धार्मिक तत्वों का ह्रास होकर शृंगार प्रधान तत्वों की विशेष प्रधानता हो गई। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कृष्णकमल गोस्वामी ने ह्रासोन्मुख यात्रा मे पुनः परिष्कार किया। प्रारम्भिक यात्रा का स्वरूप बहुत कुछ संगीतात्मक एव भावों को जाग्रत करने वाला था। यत्र-तत्र सक्षिप्त कथोपकथन का भी विधान था। उसकी अभिव्यञ्जना अर्द्ध नाटकीय हुआ करती थी; आशुकवित्व या अचिन्तित कथनों का प्राचुर्य रहता था। नियन्त्रण एव निर्देशन के अतिरिक्त यात्रा वाले सदैव सामने बैठे रहते थे और आवश्यकतानुसार

+गोपालप्रसाद का 'जिहादत" तथा शुकदेव मुनि का "रभा शुक सवाद" का कथोपकथन छन्द शैली का है।

विवरणात्मक गद्यांशों द्वारा सूत्रों का निबन्धन किया करते थे। प्रारम्भिक यात्रा में गीतात्मकता इस मर्यादा तक विद्यमान थी कि कथोपकथन तथा समस्त कार्यकलाप गीतों के माध्यम से ही प्रस्तुत किये जाते थे। आधुनिक यात्रा में आधुनिक रंगमंच के अनुकूल नाटकीय पृष्ठभूमि का भी निर्माण किया जाता है, फिर भी इसका आदि रूप काव्यात्मक, संगीतात्मक एवं धार्मिक ही है। ×

रास

भारतीय लोकनाट्य का एक लोकप्रिय प्रकार व्रज में प्रचलित रास है। रास आधुनिक एकांकी के कई तत्वों से परिपूर्ण है। यह खुले रंगमंच का एक लघु अभिनय है, जिसमें व्रज संस्कृति, साहित्य संगीत और नृत्य का समन्वय था। मथुरा में रास का प्रथम अभिनय सम्वत् १५५०–१६०० विक्रमी में हुआ था। व्रज में भागवत का प्रचार श्री वल्लभाचार्य ने, जो सम्वत् १५४८ विक्रमी में पधारे थे, किया। इस किंवदन्ती के अनुसार "रास" का यह स्वरूप ४०० वर्ष से अधिक प्राचीन ठहरता है। व्रज में जो सर्व साधारण की भाषा थी, वही "रास" का माध्यम बन गई। भागवत से मूल प्रेरणा, अष्टछाप से गान, नृत्यकारों से नृत्य तथा कलाकारों से अभिनय और नटनागर कृष्ण के जीवन का रस लेकर "रामलीला" ने रंगमंच का निर्माण किया। "रास" का रंगमंच सरल आडम्बरहीन था। एक आयताकार छोटा-सा मंच जिस पर राधाकृष्ण का एक छोटा-सा सिंहासन तथा पार्श्व में गोपिकाओं के लिये चौकियाँ लगी होती हैं। आगे एक पर्दा तथा पीछे एक "पिछवई" (Back Curtain) यही पर्याप्त होता है। मंच के सामने नट आदि के नृत्यों के लिये स्थान होता है। "रास" एक प्रकार का ओपेरा होता है, जिसमें संगीत और वाद्य का भी महत्त्व रहता है। "रास" में कथोपकथन काव्यमय होते हैं, गद्य का प्रयोग केवल कविता के अर्थों के रूप में ही रहता है। कभी-कभी संस्कृत श्लोकों में जयदेव की कोमल कान्त पदावली भी सुनने को मिलती है। "रास" में विभिन्न मुद्राओं, मुखाकृतियों द्वारा शरीर का अंग परिचालित अभिनयपूर्ण हो जाता है। रास में अभिनय के सभी अंगों की पूर्ति के साथ सहज ही रस की निष्पत्ति हो जाती है। खेद है कि हिन्दी नाट्य समाज ने इस रंगमंच की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। ❀

× डा० हं, श्री रामेश्वर शर्मा एम० ए० "खुला रंगमंच"

❀ श्री० रामनारायण अग्रवाल—"रामलीलाएँ"

ललित

ललित महाराष्ट्र का सर्वाधिक प्रचलित मध्य युगीन रंगमंच है, जहाँ साधारणतः दशावतार को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जिस पर तेजोरी नाटकों का यथेष्ट प्रभाव है। यह केवल दो यवनिकाओं की सहायता से विशेषतः मन्दिरों के कक्षों या सरायों में ही अभिनय किया जाता है। जिसका एक सूत्रधार रहता है तथा एक विदूषक भी जो इच्छानुसार भीतर-बाहर आता-जाता रहता है। अभिनय का प्रारम्भ नान्दी से होता है तदुपरान्त गणपति का प्रवेश होता है। सूत्रधार प्रशस्ति में गीता का गीत गाता है तथा आशीर्वाद प्राप्त करता है। कथोपकथन नहीं के बराबर रहता है। सम्पूर्ण कथानक की अभिव्यक्ति कायिक वाचिक हाव भाव द्वारा की जाती है। मंच पर युद्ध भी प्रदर्शित किया जाता है जिसमें मराठे अत्यधिक रुचि लेते हैं। युग की प्रगति से ललित में भी धार्मिक प्रेरणाओं का ह्रास होता गया। अब उसके स्थान पर यथार्थ जीवन तथा व्यंग्य ने लेली है। ब्राह्मण जो प्रारम्भ में उसके कर्णधार थे अब भी रुचि लेते हैं।*

भवाई

गुजरात प्रदेश में लोक-नाट्य का एक और प्रकार प्रचलित है, जिसे भवाई कहते हैं। यद्यपि प्रारम्भ में गणपति का आगमन अनिवार्य है, तथापि अभिनय अन्त तक धर्मनिरपेक्ष होता है। नगर ब्राह्मण गणपति और देवी अम्बा का गुणगान करते हैं तब अभिनय प्रारम्भ होता है। यह प्रहसन के ढंग का अभिनय है जिसका अभिनय सड़कों या मन्दिरों के आँगन के खुले स्थान पर हुआ करता है। कोई विशेष प्रकार का रंगमंच आवश्यक नहीं समझा जाता। न कोई विशेष कथानक रहता है, न घटनाओं का क्रमिक नियोजन। कतिपय साधारण घटनाएँ, जैसे बेमेल दम्पती का झगड़ा, भ्रष्ट-साधु, सास पताहू इत्यादि के झगड़े आदि अभिनय का विषय बनते हैं।

नौटंकी और साँग

उत्तर भारत, पंजाब तथा राजस्थान में लोक नाट्य का यह आडम्बर-विहीन रूप पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। उनका कथानक जनता में प्रचलित मध्य-युगीन रोमांचकारी कहानियों पर आधारित रहता है। भक्तपूरन, वीर हकी-

---

* श्री० कामेश्वर शर्मा "मंचहीन रंगमंच"

कतराय, राजा गोपीचन्द भरथरी इत्यादि के स्वांग पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त करते रहे हैं।

आधुनिक युग के प्रारम्भ में मध्ययुग की हास परिहासमय अभिनयकला के अवशिष्ट चिह्न रासलीला, रामलीला, स्वाग, नौटकी आदि का प्रचलन था, जिनमें चारों ओर से खुले रगमच पर, जिसके चारों ओर दर्शक बैठे रहते थे और जिस पर वाद्य यन्त्र भी रहते थे, भड़कीले वस्त्र धारण किये हुए तथा खड़िया और लाली मुँह पर पोते हुए, एव मुकुट कुंडल धारण किये अभिनेता पद्यात्मक संवाद के साथ नृत्यमिश्रित अभिनय किया करते थे। उनका यह अभिनय हाथ पैर चलाने, मटकाने, रोने हँसने, धड़ाम से गिर पड़ने और सभी व्यापारों की इतनी अतिरजना कर देने में था, जिससे उपहास उत्पन्न होकर मनोरजन हो सके।*

राजस्थान, यू० पी० तथा अन्य प्रान्तों के ग्रामों में अभी तक लोक-नाट्य के ये स्वरूप असंख्य भीड़ को आकृष्ट करते रहते हैं। "राजा गोपीचन्द भरथरी" का स्वाग राजस्थान में आज तक प्रसिद्ध है। इसका रंगमच साधारण होता है। प्रायः दो पात्र सगीतमय कथोपकथन में कथासूत्र को आगे बढ़ाकर सगीत से परिपाक्क वातावरण में रसवृष्टि करते हैं। यद्यपि अभिनय ग्रामीण होता है, तथापि इसके द्वारा हमें नाटक की आज भी पायी जानेवाली लोकप्रियता का ज्ञान हो जाता है। आधुनिक सिनेमा के प्रचार का विष जहाँ जहाँ अभी नहीं पहुँच पाया, वहाँ नौटकी तथा साग जनता को स्वस्थ मनोरजन प्रदान कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि लोक-रगमच के इस स्वरूप को प्रयत्न द्वारा परिष्कृत किया जाय। यदि इसमें कुछ पर्दों का उपयोग हो सके, या रगमच ही आधुनिक ढग का बन सके, तो साग हमारे यहाँ रगमच का नव-निर्माण कर सकता है।+

पुत्तलिका-नृत्य और छायानाटक

लोक नाट्य का एक प्रकार पुत्तलिका नृत्य (कठपुतली का नाच) है। डा० पिशले के अनुसार "एकाकी नाटक की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य से ही हुई है।" पुत्तलिका नृत्य सर्वप्रथम भारत में प्रारम्भ हुआ। "सूत्रधार" शब्द की व्युत्पत्ति से सिद्ध होता है कि जिस प्रकार पुत्तलिका नृत्य में सूत्र किसी सचालक के हाथ में रहता, जिससे वह कठपुतलियों द्वारा अभिनय कराता है, उसी प्रकार नाटक

* ड्रेमटिक डान्सेज़ आफ दी युरोपियन रेसेज़"

\+ होने लगा है। स०

में सूत्रधार नाटक तथा अभिनय का संचालन करता है। कठपुतली के नाटकों में कथानक का चुनाव रामायण, महाभारत, पुराण या इतिहास की कोई घटना रहती है। डा० रिज़वे का मत है, "नाट्य-कला की उत्पत्ति वीर पूजा से सम्बन्धित है। नाटक-प्रणयन की प्रवृत्ति वीर पुरुषों के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करने के लिए हुई।" लोकनाट्य तथा लोकनृत्य के विकास में पुत्तलिका नृत्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत में दो प्रकार के पुत्तलिका नृत्य प्रचलित हैं। पहली प्रकार का नृत्य राजस्थान और मध्यभारत में प्रचलित है और इसी का प्रतिरूप लंका, बर्मा और चीन में मिलता है। यह सूत्र-सचालन द्वारा होता है। सूत्रधार डोरों की सहायता से विभिन्न कथानकों को प्रकट किया करता है। दूसरा रूप वह है जो दक्षिण भारत में होता है तथा जिसका प्रतिरूप जावा, बाली और सुमात्रा में मिलता है इनकी कठपुतलियाँ पहली की अपेक्षा बड़ी रहती हैं, नीचे से लम्बे बाँस जिनमें होते हैं। कठपुतलियों की छाया एक पर्दे पर उतारी जाती हैं और इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण नाटक का अभिनय होता है।

नाटक तथा छाया नाटक दोनों में विशेष साम्य है। नाटक के विकास में छाया नाटकों का निजी महत्व रहा है। सिनेमा की भाँति अविकसित रूप में ये पूर्व काल में प्रदर्शित होते थे। सस्कृत में "दूतांगद" नाटक छाया नाटक के सिद्धान्तों पर आधारित है। दक्षिण भारत के मलाबार प्रदेश में छाया नाटक को "पवाकुथु" कहा जाता है। इसमें रामायण और महाभारत की घटनाएँ अभिनीत की जाती हैं—जैसे ताड़का वध, सेतुबन्धन, लंकादहन, रामरावण-युद्ध, जयद्रथ-वध, दुर्योधन भीम-युद्ध, इत्यादि। ये छोटे-छोटे एकांकियों जैसे अभिनय हैं क्योंकि इनमें एक ही घटना नाटकीय कौशल से कौतूहल का सचय करते हुए चरम सीमा पर पहुँचती है। विषम परिस्थिति और घटनाओं का घात-प्रतिघात प्रमुख है। इनका एक ही सुनिश्चित सुकल्पित लक्ष्य है। इनकी वृत्ति धार्मिक रहती है। पवाकुथु का अधिकतर मन्दिरों में ही अभिनय किया जाता है। अभिनेताओं को वहाँ से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है।

एक छोटा-सा रंगमच बाँसों के सहारे तैयार कर लिया जाता है तथा आठ-दस फुट लम्बे दो बाँसों के सहारे प्रमुख यवनिका तनी रहती है। ३-४ फुट पीछे वाली दूसरी यवनिका से पुतलियों का सचालन होता है। पात्रों के अनुसार पुतलियों का पहनावा रहता है। दो चार धागों के सचालन द्वारा पुतली के विभिन्न अंगों का यथाविधि संचालन होता है। आधुनिक एकांकी में जो जो तत्त्व मिलते हैं, सूक्ष्म रूप में वे सभी इस अभिनय में प्राप्त हो जाते हैं। पात्रों के आगमन तथा कथानक के विकास का एक सुनिश्चित क्रम मिलता है।

उदाहरण के लिये राजपूताना तथा मध्य प्रान्त में पुत्तलिका अभिनय-क्रम इस प्रकार है—अभिनय प्रारम्भ होने से पूर्व रग मच पर एक भी कठपुतली नहीं रहती। सर्वप्रथम ढोलक बजाने वाला—अभिनय की सूचना देने वाला—आता है। तत्पश्चात् मेहतर रग मच की सफाई करता है और चोवदार आता है। चोवदार का कार्य अन्य आने वाली पुतलियों को उनका निर्दिष्ट स्थान सूचित कर बैठने का क्रम नियत करता है। क्रमानुसार एक-एक कर सीसमार खाँ, आगरे का नवाब, लखनऊ के नवाब, आसफद्दौला, वजीर, बीरबल, राजा मानसिंह, बीकानेर नरेश रामसिंह, अमरसिंह, शाहंशाह अकबर, मरोड़खाँ, नाचने वाले, आगरे वाली मुन्नाजान, चक्कर वाले पठान (ढाल तलवार का अभिनय करने वाली कठपुतली) नाच, सरदार दुलामाटी (घोड़े का नाच अभिनय करने वाली पुतली) ढोल, पीला ऊँट, दो मत्री, दिल्ली के पिलपिली साहब। (विदूषक के अभिनय के हेतु, लक्कड़नाथ और साँप (सँपेरे का खेल दिखाने वाली पुतली) तेजा बोवी और मगर का अभिनय करने वाली पुतली आती है। इन सब कठपुतलियों के आने के पश्चात् अमरसिंह का नवाबों से युद्ध होता है। सब नवाब मारे जाते हैं और शाहशाह अकबर भाग जाते हैं। अभिनय समाप्त होता है। प्रायः इसमें राजपूतों का शौर्य और छोटे-मोटे मत भेदों पर युद्ध में प्रवृत्त होने का चित्रण होता है।*

पुत्तलिका नृत्य में अक व्यक्ति सूत्र सचालन किया करता है, दूसरा ढोलक पर वातावरण एव परिस्थिति निर्माण के लिये ताल और लय से सब वीर-गाथाओं का गान करता है। मानव की स्वर लहरी सगीत कथोपकथन और वातावरण का निर्माण करती है, जब कि अभिनय का कार्य पुतलियों द्वारा होता है। सूत्र सचालन करने वाला व्यक्ति पुतलियों के हाथ-पाँव, क्रिया कलाप का सचालन करता है। मानव अभिनय के अतिरिक्त इसमें पुत्तलिका नृत्य में एकाकी के प्रायः सभी तत्त्व मिल जाते हैं। प्रसगानुसार पात्र-परिचय और कथा सूत्र का सचालन भी कुछ इस प्रकार किया जाता है—

"जयपुर नरेश राजा मानसिंह—मौज तुम्हारी मानसिंह, दर्याद पहले मेक डरे बासक डरे और घरती तरमल्ले, पोना भगवानदास का तेरी बदखड़े भाले।"

---

* श्री प्रकाशकुमार "भारतीय पुत्तलिका नृत्य"

कथोपकथन का नमूना देखिये—

अमरसिंह—"अमर की कमर में काहे की कटारी
जोधपुर गढ़वायी बीकानेर सरवायी
कतरा अमराव दुख दे गयी
अमरसिंह कटारी रग ले गयी"

बीरबल—"अटक चटक से लगी लिये हटकनहार
रंगराव हंस खेलिया गिया बीरबल साथ
गोकुल से गगा वहो पाछे खडया वजीर
सोड्यो सब दरबार की लेग्यो बीरबल वजीर।"

इन नाटकों के कथानक धार्मिक तथा ऐतिहासिक गाथाओं से सम्बन्धित होते हैं। जैसे रामायण महाभारत की कथायें, अमरसिंह चौहान की वीर गाथा, पृथ्वीराज चौहान द्वारा सयोगिना हरण, रानी पद्मावती, आल्हा-ऊदल का शौर्य। राजस्थानी गीतों, कथोपकथन, ढोलक की ताल, ताल-बद्ध संचालन इन अभिनयों को एकांकी के समीप ले आता है। पुत्तलिका-नृत्य अत्यन्त पुराना है और भारत में इसका विशेष प्रचार रहा है। एकांकी के विकास में पुत्तलिका नृत्य का विशेष हाथ है।

भारतीय लोक-नाट्य के उल्लिखित प्रचलित भेद-उपभेदों के अन्तर्गत हमें हिन्दी एकांकी के पूर्वज उपलब्ध हो सकते हैं इन सभी प्रकारों में एक साधारण से कथानक का विधान है, जो नैतिक आदर्शवादी उद्देश्य की ओर सतत गतिशील है। भारत की पौराणिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक परम्पराओं को कथोपकथन के माध्यम से प्रस्तुत करना सुरक्षा का विधान था। इन जन-नाट्यों में भाग लेना जनता अपना सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्य समझती थी और जिनके द्वारा असंख्य जनसमुदाय का ज्ञान-वर्द्धन और मनोरंजन होता था।+

+ "भारतीय जन-जीवन में ऐसे पर्व वर्ष में कई बार आते थे जिनमें राजा से लेकर रंक तक भाग लेते थे। समाज के सभी व्यवसायों के लोग जिन लोक-नाट्यों में सहयोग देते थे। राजा धन तथा अन्य अमूल्य अप्राप्य सामग्री देकर, व्यापारी रंगमंच के लिये वस्त्रादि देकर, लुहार बढई आदि रगमग का निर्माण करके, चित्रकार और शिल्पकार सजाव शृंगार द्वारा तथा धनीमानी कलाकारों को सुस्वादि भोजन खिलाकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। सम्पूर्ण रात्रि को नाट्य प्रदर्शन होते थे,...इन प्राचीन जीवनदायक मनोरंजनों के स्थान

इन लोकनाट्यों द्वारा साहित्य, सगीत, और नाट्यकला की अभिनय के रूप में, नाना प्रकार के हस्त कौशल की रगमच निर्माण के रूप में तथा वेश और मुखविन्यास की पात्रों के सजीव शृंगार के रूप में रक्षा रही है। धार्मिक या ऐतिहासिक कथानक को स्पष्ट करने के लिये इन सभी में थोड़े-बहुत कथोपकथन का प्रयोग है जो कथासूत्र को विकसित करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें एकाकी के मूल तत्त्व (सक्षिप्तता, अभिनय, रगमच और कथोपकथन) अविकसित रूप में मिल जाते हैं। यद्यपि इनके कथानक निर्माण में कोई विशेष चातुर्य नहीं, सकलन त्रय या चरित्र विकास की ओर नाटककारों का ध्यान नहीं है, किन्तु उद्देश्य के प्रति सजगता है। आज की भाँति प्राचीन नृत्य नाट्य सगीत और नृत्य से विलग एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में कभी नहीं रहा। हिन्दी में यह एकाकी का स्रोत बहुत क्षीण-सा है। इन लोक नाट्यों द्वारा जनता का मनोरजन करने वाले उन कलाकारों को यह ज्ञान न था कि आगे चलकर वे एकाकी जैसे शक्तिशाली माध्यम के विकास में सहयोग देंगे।

पर गश्ती फिल्म कम्पनियों ने भद्दे और गन्दे फिल्म दिखलाकर हमारे जन-जीवन को काफी मात्रा में भ्रष्ट किया गया है लोकनाट्य के और प्रकार आज भी बिखरे मिलते हैं। दक्षिण भारत के "कुचपुडी" "यक्षगान", "कथकली" आदि मनोरजक लोक—नाट्यों के ज्वलन्त उदाहरण हैं। उत्तर भारत में भी लोकनाट्य की अनेक शैलियाँ विद्यमान हैं।"

—श्री देवीलाल सामर एम ए "राजस्थानी लोकनाट्य"

नाटक के तत्त्व

साहित्य के उपन्यास, कहानी तथा नाटक आदि माध्यमों में न्यूनाधिक परिवर्त्तन के साथ आधारभूत रचनात्मक तत्त्व एक ही हैं—१—कथानक अथवा प्लौट २—कथोपकथन या वार्त्तालाप ३—पात्र और चरित्रचित्रण ४—शैली ५—इकाइयाँ या यूनिटी ६—उद्देश्य ७—रस आदि। उपन्यास तथा कहानी में लेखक कथानक को विशेष महत्त्व देते हैं, तो नाटक में कथोपकथन तथा अभिनय का विशेष ध्यान रखा जाता है। नाटक दृश्य काव्य है अर्थात् उसका महत्त्व रंगमंच पर अभिनीत हो सकता है। अभिनय के हेतु प्रायः नाटकों की रचना की जाती है। रंगमंच पर दो वर्गों से पात्र आते हैं और उनके पारस्परिक वार्त्तालाप तथा क्रिया-कलाप द्वारा कथावस्तु, स्थिति एवं वातावरण का ज्ञान होता है। पात्रों के संघर्ष के साथ-साथ एक कथानक का क्रमिक विकास होता है, पात्र अभिनय में विभोर हो रस सृष्टि करते हैं, जिनमें दर्शक एकाग्र हो रसानुभूति का आनन्द लेते हैं। यदि महत्त्व की दृष्टि से नाटक का तत्त्व विवेचन करें, तो विभिन्न तत्त्वों को इस क्रम से रख सकते हैं—कथानक, कथोपकथन, अभिनयशीलता, चरित्र-चित्रण, इकाइयाँ, उद्देश्य, रससृष्टि इत्यादि। मोटे रूप में नाट्य-कला के दो पक्ष हैं—भावपक्ष और कला पक्ष। भावपक्ष के अन्तर्गत हम नाट्यकार का उद्देश्य, जीवन दर्शन, सामाजिक राजनैतिक अथवा धार्मिक समस्याएँ, मूल विचारधाराएँ, वैयक्तिक धारणाएँ रख सकते हैं। द्वितीय पक्ष में अभिनेयता, कथोपकथन, संगीत, नृत्य, वातावरण सृजन इत्यादि तत्त्वों पर विचार कर सकते हैं।

नाटकों का भाव-पक्ष

(१) कथावस्तु—नाट्यकार की प्रथम आवश्यकता एक सुदृढ कथावस्तु अथवा कथानक (Plot) का निर्माण है। कथानक नाट्यकार की रुचि पर निर्भर है। इतिहास की असंख्य प्रसिद्ध घटनाएँ नाटकों का रूप धारण कर सकती हैं। अनेक शूर वीर राजा, उनके इतिहास प्रसिद्ध लोक जीवन में समा-

हत कार्य, राजनैतिक जीवन, सामन्तों राजपूतों के शौर्य से भरी हृदय में वीर रस का सचार करने वाली कहानियाँ ऐतिहासिक नाटकों में कथावस्तु प्रदान कर सकती हैं। राष्ट्रीय वीरों का जीवन-चरित, तत्सम्बन्धी घटनाएँ क्रान्तिएँ और वैयक्तिक नीति कथानक का रूप धारण कर सकती हैं। भारत में महाराणाप्रताप, शिवाजी, वीरवर दुर्गादास, दुर्गावती, चन्द्रगुप्त, अशोक बुद्ध इत्यादि ऐतिहासिक विभूतियाँ विशेष रूप से नाटकों में अमर स्थान पा गई हैं। उनके जीवन चरित्रों को आधार मान कर नाट्यकार ऐसी घटनाओं का निर्माण करता है, जो जनता को प्रभावित कर देती हैं।

ऐतिहासिक गौरव गाथाओं के अतिरिक्त धार्मिक-पौराणिक क्षेत्र, भारत की लोकगाथाएँ, प्राचीन सस्कृति के आदर्श कथानकों के निर्माण में सहायक हो सकते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज कृष्ण, देवयानी, कृष्ण सुदामा, मोरध्वज, विश्वामित्र, युधिष्ठिर अर्जुन, श्रवणकुमार आदि चरित्रों को लेकर कथानकों का निर्माण हुआ है। महाभारत रामायण आदि के अनेक प्रसग कथानकों के रूप में भारत की जनता के समक्ष आये हैं।

समाज तथा उसकी उलझी हुई अनेक समस्याएँ कथानक के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। हमारे समाज में नई पुरानी विचारधाराओं, मान्यताओं, रहन-सहन और रीति-रिवाजों में सघर्ष होता आया है। पुरानी जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं के प्रति हमारे नाट्यकारों ने क्रान्ति का बिगुल बजाया है। अतः हमारे यहाँ प्रचुर सख्या में सामाजिक समस्या नाटकों का निर्माण हुआ है।

डा० एस० पी० खत्री के शब्दों में हम कह सकते हैं, "सामाजिक विषय-चयन का मुख्य उद्देश्य समाज सुधार तथा जनता में जागरण उत्पन्न करना रहता है। नाट्यकार समाज के अन्याय पर प्रकाश डालकर जनता को चैतन्य कर सकता है। योरप के सभी देशों के नाट्यकारों ने सामाजिक कुरीतियों को आधारभूत मान कर श्रेष्ठ नाटकों की रचना की है। भारतीय नाट्यकारों ने इन सामाजिक विषयों का पूर्णरूप से उपयोग किया है। बालविवाह, बहुविवाह, शराबखोरी, जुआ, अविद्या के दुष्परिणाम, फिजूलखर्ची, पाश्चात्य देशों के सिद्धान्तों तथा उनके रीति-रिवाजों का अनुकरण, वेश्यावृत्ति तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों पर नाटक रचना हुई है।"*

कुछ नई समस्याएँ भी आज हमारे सम्मुख आ गई हैं, जैसे—वर्ग सघर्ष, साम्यवादी, समाजवादी अथवा पूंजीवादी व्यवस्थाएँ, पूंजीपति मजदूरों का

* देखिए डा० एस० पी० खत्री कृत "नाटक की परख" पृष्ठ १८७।

तनाव, ज़मींदार, किसान, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, महाजन और कर्जदार, जाति पाँति तोड़ने अथवा हड़ताल आदि की सामाजिक समस्याएँ। ये सब नाटकों का विषय बनी हैं। हमारे समाज में नए-नए विचारों आदर्शों का प्रवेश हो रहा है। फलस्वरूप वर्गों के द्वन्द्व से सम्बन्धित अनेक विषम समस्याएँ हमारे कथानकों में आ गई हैं।

मानव हृदय स्वयं समस्याओं का पिटारा है। उसके हृदय के नाना भावों जैसे—प्रेम ममता, वासना, सहानुभूति, संदेह, द्वेष घृणा, निर्दयता, क्रूरता, वीरता, कायरता, हत्या इत्यादि मानवी वृत्तियों ने कथानकों के निर्माण में सहायता दी है। "मानव हृदय एक प्रकार का समुद्र है, जिसमें जीवन की असीम शक्तियाँ मन्थन करती रहती हैं और अमृत और विष दोनों का उत्पादन करती हैं। नाट्यकार इनमें से किसी भी भावसमूह को लेकर नाटक का निर्माण कर सकता है। इन नाटकीय विषयों के चयन का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की आदि भावनाओं तथा विचारों का दिग्दर्शन कराना है। रंगमंच पर इन भावों अथवा भाव समूहों का प्रदर्शन देखकर मानव स्वयं अपने आपको पहचान सकता है। नाट्यकार अपनी कला द्वारा मनुष्य की आँखें उसके अन्तस्थल की ओर झुका कर अपने को पहचानने पर बाध्य करता है इसके प्रदर्शन द्वारा मनुष्य में सद्गुणों के प्रति आकर्षण तथा दुर्गुणों के प्रति घृणा का प्रसार होकर मानव हृदय तथा मानव चरित्र का परिमार्जन होता है।" +

आधुनिक युग में प्रचारात्मक विषयों को लेकर अनेक नाटकों की सृष्टि हो रही है। किसी मत या विचार विशेष के प्रचार के लिए कथानकों का निर्माण होता है। यद्यपि इनमें शक्ति नहीं होती, फिर भी नाट्यकार अपनी कुशलता से प्लॉट बना कर इन्हें प्रस्तुत करता है। इस वर्ग में अनेक आधुनिक रेडियो नाटकों को रखा जा सकता है। जैसे पंचवर्षीय योजना, भूदान आन्दोलन, साम्प्रदायिक एकता, यू० एन० ओ० और युनेस्को; हमारा स्वाधीनता संग्राम, सर्वोदय, नया समाज, कांग्रेस और सांस्कृतिक उन्नति, नया कानून, ज़मींदारी उन्मूलन, पंचायत राज, चोरबाज़ार, गांधी विचारधारा आदि के प्रचार के लिए अनेक कथानकों का निर्माण हुआ है। प्रचार के लिए लिखे गए नाटकों का प्रभाव उस काल और परिस्थिति में ही होता है। बाद में वे पीछे रह जाते हैं।

कथानक-निर्माण की ओर हिन्दी नाटककारों ने विशेष ध्यान नहीं [illegible]

+ वही पृष्ठ १८४।

कुछ नाट्यकारों को छोड़कर शेष ने उसमें कोई चमत्कार उत्पन्न नहीं किया है। कुछ नाट्यकारों ने इतने बड़े कथानक उठा लिए कि नाटक में जटिलता उत्पन्न हो गई और दर्शक विभिन्न कथासूत्रों को पृथक-पृथक न कर सके। जिन नाट्यकारों ने संक्षिप्त सरल कथानक लिए, वे सफल नाटकों की रचना कर सके हैं।

कथानक को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—निरूपण, अवरुन्धन, उत्कर्ष तथा अपकर्ष। निरूपण (Exposition) कथानक का प्रारम्भ होता है जो नाटक के प्रथम दो अंकों तक चलता है। इसमें नाट्यकार नाटक के मुख्य पात्रों का परिचय, नाटकीय पृष्ठभूमि तथा पात्रों का तुलनात्मक महत्त्व प्रदर्शित करता है। मुख्य पात्र (Hero) के प्रति हमारी रुचि को तीव्र कर देता है। हमें यह भी आभास होने लगता है कि नाटक का मुख्य विषय क्या है? गौण पात्र पात्रियाँ कौन-कौन हैं? उनका मुख्य पात्र से क्या सम्बन्ध है? नाटकीय स्थिति क्या है? शेक्सपीयर के नाटकों में निरूपण बहुत सफल बन पड़ा है। वह अपने दुखान्त नाटकों को एक ऐसे सजीव दृश्य से प्रस्तुत करते हैं जिसमें जीवन की सजीवता, भाग दौड़ और पर्याप्त क्रिया (Action) है। प्रायः शेक्सपीयर यह भी चित्रित कर देते हैं कि नायक को कौन सी शक्ति प्रभावित करेगी? तदनन्तर वे एक लम्बे दृश्य में अन्य आवश्यक जानकारी तथा कौतूहल उत्पन्न कर देते हैं। दो एक स्थलों पर वे एक दो ऐसे वाक्य कहलवा देते हैं, जिनसे नाटक की मूल समस्या पर भी प्रकाश पड़ जाता है। डा० एस० पी० खत्री के मतानुसार "निरूपण (Exposition) के लिए जो सब से महत्त्वपूर्ण बात है वह है निरूपण की स्वभाविकता और संक्षिप्त संकेत। नाट्यकार के नाटक के इस प्रारम्भिक भाग में ही परिस्थिति का सारा ज्ञान करा देना चाहिए".... प्रासागिक पृष्ठभूमि का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रासांगिक पृष्ठभूमि से तात्पर्य परिस्थिति से सम्बन्धित उन छिपे हुए स्थलों अथवा भावों का परिचय है जो नाटक में स्पष्ट रूप से नहीं बताये गये किन्तु जिनकी छाया सम्पूर्ण नाटक पर है। यह बताना भी आवश्यक है कि क्या हो चुका है अथवा कौन सी घटना घट चुकी होगी अथवा कौन-कौन भावों का विस्तार हो रहा होगा। इसमें नाट्यकार पहले के छिपे हुए स्थलों का संकेतात्मक परिचय देता है।"

कथानक का दूसरा भाग अवरुन्धन (Conflict) है। प्रत्येक नाटक के कथानक में दो विरोधी वर्ग होते हैं जिनमें किसी स्त्री अथवा और किसी विषय के कारण द्वन्द्व उत्पन्न होता है। इस द्वन्द्व से ही नाटक में प्राण आते हैं। यह जितना उग्र होता है, उतना ही विस्मय उत्पन्न हो उठता है। एक ओर प्रधान

नायक होता है, दूसरी ओर खल नायक (Villain) रहता है। या यों कहिये एक ओर सद्‌गुण सम्पन्न सच्चरित्र वाला वर्ग रहता है तो इनके विरोध में दूसरा वर्ग दुर्गुणों से भरा हुआ रहता है। इस प्रकार प्रत्येक नाटक सत असत् अच्छाई बुराई, प्रकाश और अन्धकार का द्वन्द्व उपस्थित करता है। प्रारम्भिक हिस्सों में नायक अधिक प्रकाशित नहीं हो पाता किन्तु इस भाग में वह अपनी महत्ता प्राप्त कर लेता है तथा दर्शकों की सहानुभूति उसकी ओर होने लगती है अन्य गौण पात्र भी अधिक स्पष्ट होकर अपनी स्थितिएँ प्रकट करने लगते हैं। नाट्यकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि नाटकीय कथासूत्र मुख्य और प्रासंगिक (Main plot and Sub plot) कथावस्तु इतनी जटिल न हो जाय कि दर्शकों को स्थिति समझने में अधिक ध्यान देना पड़े या किसी अनावश्यक प्रसग को व्यर्थ ही बीच में जोड़ने से व्यवधान उपस्थित हो जाय। यह विरोध (Conflict) कथावस्तु को आगे बढ़ाता है और भविष्य की ओर एक धुन्धला सा सकेत भी करता है। नाटक देखने वाले मन ही मन यह अनुमान करते हैं कि नाटक का अन्त अमुक प्रकार से होगा।

तृतीय भाग उत्कर्ष (Crisis) है। अर्थात् यह वह भाग है जिसमें दोनों पात्रों अथवा विरोधी वर्गों का द्वन्द्व अपनी चरम स्थिति पर—पूरी ऊँचाई पर पहुँच जाता है। समस्या से सम्बन्धित सब भावों का चरम उत्कर्ष हो जाता है। पर द्वन्द्व भी दो प्रकार का हो सकता है—वाह्य तथा आन्तरिक द्वन्द्व। वाह्य द्वन्द्व चर्म-चक्षुओं से दिखाई देने वाले विरोधी पात्रों में दृष्टिगोचर होता है। आन्तरिक द्वन्द्व दो विरोधी भावनाओं जैसे कर्त्तव्य और प्रेम; लालच और राष्ट्र प्रेम, आशा-निराशा क्रूरता और दया आदि मानवी अन्तर्द्वन्द्वों में हो सकता है। प्रायः आन्तरिक संघर्ष वाले नाटक अधिक प्रभावशाली होते हैं। डा० रामकुमार वर्मा कृत "औरंगज़ेब की आखरी रात" अन्तर्द्वन्द्व प्रधान एक सफल एकांकी नाटक है। यह हमारे सामने औरंगज़ेब के पश्चाताप की सजीव मूर्ति कारुणिक रूप में प्रस्तुत करता है। "उत्कर्ष में यह आवश्यक है कि वह स्वाभाविक हो और उसकी प्रगति निरूपण और अवरुर्धन के स्थलों से होती हुई भावों की चरम सीमा की ओर अग्रसर हो। इसमें भावों का उत्कर्ष प्रदर्शित होना चाहिए।"

अंतिम भाग अपकर्ष अर्थात् गिरावट (Denoument) है। अपने चरम उच्च स्तर पर पहुँच कर कथावस्तु धीरे धीरे गिरने लगती है। जिन कथा सूत्रों का विस्तार हो गया था, वे सिमिटने लगते हैं। द्वन्द्व में एक पक्ष हारने लगता है। दुखान्त नाटकों में प्रमुख पात्र की मृत्यु हो जाती है; तो सुखान्त नाटकों में उसे इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो जाती है; भावसमूह स्वाभाविक गति से साधारण

स्तर पर आ जाता है। गुत्थियों का तार तार अलग होकर हमारे सामने आ जाता है। जिस समस्या को लेकर नाटक चला था, वह हल हो जाती है अथवा इसकी सुलझन प्राप्त हो जाती है। यह भाग दर्शकों से ऊपर अपना एक अन्तिम प्रभाव (Final impression छोड़ जाता है। सफल नाटककार अपने नाटक में एक प्रधान रस तथा एक दो गौण रस रखते हैं।

अच्छे कथानक के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि उपरोक्त चारों भागों में परस्पर पूर्ण सामजस्य होना चाहिए। आने वाली कड़ी पहली कड़ी से शृंखलाबद्ध होनी चाहिए। दर्शकों को ऐसा प्रतीत न हो कि अलग अलग भाग जुड़े हैं। "निरूपण खण्ड में जितना विस्मय होगा; अवरुधन में जितना संशय होगा, उत्कर्ष में जितना द्वन्द्व (Conflict) होगा, अपकर्ष में जितनी स्वाभाविकता होगी, उतना ही श्रेष्ठ नाटक होगा।" संक्षेप में, सवत्र संतुलन एवं सामजस्य होना अनिवार्य है।

२. कथोपकथन

नाटक की कथावस्तु पात्रों के परस्पर वार्तालाप से विकसित होती है। दूसरे शब्दों में नाटक एक ऐसी कहानी है जो कथोपकथन के माध्यम से लिखी जाती है। कुशल नाट्यकार इस प्रकार पात्रों से बातचीत कराता है कि कथानक, स्थिति और पृष्ठभूमि का ज्ञान होता जाता है। कथोपकथन लिखना एक स्वतन्त्र कला है। पात्रों की बातचीत सहज स्वाभाविक, तर्कपूर्ण और दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली होनी चाहिए। जटिलता, कठिन शब्दों के प्रयोग, अति काव्य पूर्ण अस्पष्ट भाषा नाटक को अस्वाभाविक बना देती है। शब्दों के पीछे पात्रों का पृथक् स्वतन्त्र व्यक्तित्व बोलता है। रोमाञ्चकारी घटनाएँ, मुख्य विचार (Central idea) और नाट्यकार का जीवन-दर्शन विभिन्न पात्रों के कथोपकथन में प्रकट होना अपरिहार्य है। कुशल नाट्यकार संवादों की विशेषता द्वारा चरित्र-चित्रण में गहनता, बारीकी और विभिन्नता लाते हैं।

कथोपकथन में भाषा की सरलता और पात्रों के अनुसार विभिन्नता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक शब्द का महत्त्व है। संवाद में उपयोग करने से पूर्व खूब नाप तोल कर प्रयोग करने से कवि की विशेषताएँ प्रकट होती हैं। फलतः पात्र वैभिन्य प्रदर्शित करने में आसानी हो जाती है। संवाद मर्मस्पर्शी, भावाभिव्यञ्जक और विचारपूर्ण होना चाहिए। उसमें शक्ति हो, सजीवता हो और श्रुतिमाधुर्य हो। पाठकों तथा दर्शकों के मन में वह उन्हीं भावनाओं का उद्रेक कर सकें, जो पात्र के मन में उन परिस्थितियों में संभव हैं।

नाट्यकार ऐसी भाषा शैली का प्रयोग करे कि पात्रों से प्रेम, ममता, लालसा, स्नेह, सौहार्द्र, द्वेष, घृणा, वैर, क्रूरता, हत्या, कायरता अथवा वीरता के समस्त मानवी भाव दर्शक स्वय अपने हृदय में अनुभव करें और पात्रों से तादात्म्य कर लें, भाव समूहों के उचित प्रदर्शन से ही नाटक में रस सृष्टि होती है। वह इन्हीं के अन्तर्द्वन्द्व से नाटक में हमारी रुचि और उत्सुकता की सृष्टि करता है। अनर्गल प्रलाप के लिए नाटक में कोई स्थान नहीं है। काव्य नाटकों में काव्य का माध्यम होता है जो अस्वाभाविक है। अँग्रेजी नाटकों में इब्सन ने काव्य के माध्यम का विरोध कर प्रचलित गद्य के उपयोग की परिपाटी निकाली थी। बोलचाल की सहज स्वाभाविक भाषा ही मानव चरित्र को प्रकट करती है। उसी का उपयोग होना चाहिए। नाटकों में यथार्थवाद की रक्षा इसी से हो सकती है पात्रों के भाषण छोटे, सरल तथा पात्रों के वय, स्थिति और चरित्रों के अनुकूल हों। लम्बे भाषणों, थोथे गभीर उपदेशों अथवा व्यर्थ के वाद विवाद के लिए नाटकों में कोई स्थान नहीं है। यदि कोई मत या विचार विशेष देता ही हो, तो इस प्रकार दिया जाय कि मनोरंजन का तत्त्व नष्ट न हो जाय।

डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार, "कथोपकथन हमें पात्रों की सूक्ष्म बातें समझाने में सहायक होते हैं। पात्रों के भावों, विचारों, और प्रवृत्तियों आदि के विकास और विरोध आदि का पता हमें कथोपकथन से ही चलता है। नाटक में व्याख्या या टीका-टिप्पणी का सारा कार्य केवल कथोपकथन से ही लिया जाता है। जो नाटककार मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर ही अपने नाटकों की रचना या पात्रों का चरित्र चित्रण करते हैं, उनका मुख्य आधार प्रायः कथोपकथन ही हुआ करता है। अच्छे नाटककार इसी बात का प्रयोग करते हैं कि प्रधान पात्रों के जिन मुख्य गुणों पर कथा वस्तु आश्रित रहती है, उन गुणों का दर्शकों का जहाँ तक हो सके शीघ्र और स्पष्ट ज्ञान हो जाय... किसी पात्र का अधिकांश चरित्र-चित्रण प्रायः उसी की बातचीत से होना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए दूसरों के मुँह से भी उसके सम्बन्ध मे कुछ कहला देना चाहिए। उसमें कोई बाह्य परस्पर विरोधी नहीं होना चाहिए और सब कथनों से प्रायः एक ही अभिप्राय निकलना चाहिए।"

३. चरित्र चित्रण

नाटक मानव जीवन का सर्वाङ्गीण चित्र है। नाट्यकार मानव-जीवन का

अध्ययन कर किसी कथावस्तु को इसलिए हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है जिससे हम उसकी बारीकिएँ, रहस्य और सीमाएँ देखें तथा स्वय उन पर विचार करें। वस्तुत. नाट्यकार कुछ पात्रों को प्रस्तुत कर नई समस्याएँ उठाता तथा उनका समाधान प्रस्तुत करता है। चरित्र चित्रण का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वाह्य-द्वन्द्व से चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। हम पात्र की बातचीत, व्यवहार, ढग, वेशभूषा इत्यादि देखकर यह मालूम कर लेते हैं कि वह कौन सी वैयक्तिक अथवा वर्ग-विशेष की विशेषताएँ रखता है? स्नेह, दया, क्रूरता, प्रतिशोध वीरता लालसा हत्या आदि भावों से परिपूर्ण कथोपकथन चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। जो नाट्यकार मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी रखता है अथवा जिसका अनुभव गहन होता है, वह सजीव पात्रों की सृष्टि कर लेता है, अन्यथा पात्र अतिरजित अथवा अस्वाभाविक रह जाते हैं। कभी २ कुछ वैयक्तिक विशेषताओं को उभारने के लिए नाट्यकार को पात्र अतिरजित रूप में चित्रित करने पड़ते हैं। ऐसे स्थलों पर नाट्यकार चाहता है कि आप उसके चरित्र की उस विशेषता की ओर विशेष रूप से ध्यान दें। कुछ नाटक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवन-गाथाओं को लेकर लिखे जाते हैं। इनमें चरित्रों के चित्रण की सजीवता ही प्रमुख तत्त्व होता है।

प्रो० हरीराम तिवारी के शब्दों में, "चरित्रों के चुनाव में बड़ी सतर्कता बर्तनी होती है। एक बार यदि किसी पात्र का सृजन कर दिया गया तो अत तक उसका निर्वाह होना चाहिए। पात्र खल-नायक (Villain) अथवा साधु इसका कोई प्रश्न नहीं है। बात तो यह है कि जिस वातावरण में उसे उत्पन्न किया गया है, उसका निर्वाह कहाँ तक हुआ है, यह देखना है। यदि पात्र देवता है, तो उसे देवता बनने का और यदि वह राक्षस है, तो उसकी राक्षसी प्रवृत्ति हो जाने का पूरा प्रमाण उपस्थित होना चाहिए। वस्तुतः इसका ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य जन्म से देवता या राक्षस नहीं हुआ करते। परिस्थितियाँ उसका निर्माण करती हैं। अत. पात्रों के चरित्रों के विकास में उसका ध्यान रखना आवश्यक है।" +

४. उद्देश्य (Central idea)

प्रत्येक नाट्यकार अपने नाटक के निर्माण में एक मूल विचार देखता है। उसकी समस्त शक्ति और कला इस बात में एकाग्र हो जाती है कि वह कितनी

+ प्रो० हरीराम तिवारी "साहित्य सर्वस्व" पृष्ठ १४

अच्छी तरह उस विचार (idea) को स्पष्ट कर पाता है। कतिपय नाट्यकार तो नाटक का प्रारम ही पहले सोच विचार कर करते हैं।

सेठ गोविन्द दास इस सम्बन्ध में लिखते हैं, "नाटक में किसी विचार (idea) की आवश्यकता है। "विचार" का अर्थ यहाँ साधारण विचार न होकर जीवन की कोई समस्या है। "विचार" की उत्पत्ति के पश्चात् उस विचार के विकास के लिए सघर्ष होना अनिवार्य है वाह्य तथा आन्तरिक दोनों ही प्रकार का आवश्यक है। वाह्य संघर्ष किसी एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति का अथवा किसी एक व्यक्ति के साथ समाज या राष्ट्र का, अथवा पुरुषवर्ग के साथ स्त्रीवर्ग का हो सकता है। आन्तरिक सघर्ष एक ही व्यक्ति के हृदय का सघर्ष है। इसे वाह्य से अधिक महत्त्व है। यह सघर्ष एक भाव के साथ दूसरे भाव तक का होता है। और प्रतिक्षण इसमें परिवर्त्तन होता है। नाटक में यहीं मनोविज्ञान अपना कार्य करता है। इसी विचार और सघर्ष की सबद्धता और मनोरजकता के लिए कथा (प्लौट) की सृष्टि होती है। कथा विना पात्रों के नहीं हो सकती। अतः पात्रों का प्रादुर्भाव तथा उनका चरित्र चित्रण होता है और चूँकि नाटक की कथा लेखक द्वारा नहीं कही जा सकती इसलिए पात्रों की कृति और कथोपकथन ही उस कथा के कथन के साधन हैं। नाटक में जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र सघर्ष होगा, जितना सगठित एव मनोरजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा और जितनी स्वाभाविक कृति और कथोपकथन होंगे, वह उतना ही उत्तम तथा सफल होगा।"*

५—रस सृष्टि:—

मूल विचार की भाँति प्रत्येक सफल नाटक का मूल-भाव या रस होता है। नाटक दृश्य काव्य है। अतः उसमें रस का होना आवश्यक है। भरत मुनि ने नाटक में रस की चर्चा की है और सिद्धान्त रूप में उसका होना आवश्यक माना है। "भरत मुनि रस-सिद्धान्त के प्रवर्तक हों चाहे न हों, पर यह बात निर्विवाद है कि आगे आने वाले आचार्यों ने रस के सम्बन्ध में उन्हीं का अनुसरण किया और निरन्तर बहुत काल तक नाट्य शास्त्र के ही सम्बन्ध में रस की चर्चा होती रही। जिस काव्य में, चाहे वह दृश्य काव्य हो अथवा श्रव्य, यह आस्वाद न मिले वह सफल नहीं हो सकता। भरत मुनि के अनुसार तो कोई काव्यार्थ रसहीन होना ही नहीं चाहिये।"×

* देखिए सेठ गोविन्ददास कृत "नाट्यकला-मीमांसा" पृष्ठ १५

× "रूपक-रहस्य" पृष्ठ १८१

भरत मुनि के अनुसार नाटकों के चार प्रधान रस हैं—शृङ्गार, वीर, वीभत्स और रौद्र। शृङ्गार में हास्य का, वीर से अद्‌भुत का, वीभत्स से भयकर का और रौद्र से करुण का उदय होता है। अधिकाश नाटकों में व्यापक रूप से पाये जाने वाले शृङ्गार और वीर रस हैं। पुष्टि के लिए गौण रूप से अन्य रसोंका भी समावेश हो जाता है। कुछ कवियों ने पद्य और कविता के प्रयोग से रस-सृष्टि का प्रयत्न किया है। सगीत और नृत्य से भी वातावरण और निर्माण में प्रचुर सहायता प्राप्त होती है। सफल नाट्यकार कथानक के प्रधान भाव के अनुसार रस-सृष्टि करता है।

नाटक का कला-पक्ष (Technique)

१—अभिनयशीलता—नाटक का प्रमुख तत्त्व अभिनयशीलता अर्थात् रंगमच पर अभिनय हो सकता है। जो नाटक रगमच पर सफल नहीं होता, वह तो दृश्यों में विभाजित एक कहानी मात्र है। रगमच की दृष्टि से लिखे नाटकों का प्रभाव दीर्घकालीन होता है क्योंकि बड़ी सख्या में दर्शकगण देखकर उनसे प्रभावित रहते हैं। जो नाटक रगमच पर सफल नहीं उतरता, वह चाहे कवित्व या भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से कितना ही सफल क्यों न हो, विद्वज्जनों की मडली तक ही सीमित रह जाता है। नाटक का उद्देश्य ही यह है कि जो कुछ दृष्ट हो, उसे कार्य, अभिनय, सगीत, नृत्य, वेश-भूषा आदि द्वारा रगमच पर स्पष्ट करके दिखाया जाय।

सेठ गोविन्ददास का यह मत सर्वथा माननीय है, "यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि ऐसे नाटक भी हैं जो खेले नहीं जा सकते पर साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के और पढने के लिए उपयोगी हैं नाटक की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं, फिर भी जो नाटक पढने के योग्य होते हुए भी खेले जा सकें और साथ ही साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के हों, वे अधिक अच्छे हैं। नाटककार को लिखने की विधि के साथ-साथ ही रगमच सम्बन्धी विधि की ओर लक्ष्य रखना आवश्यक है। रगमच सम्बन्धी बातों में नाटककार को दृश्यों की व्यवस्था, पात्रों की वेशभूषा तथा पात्रों के प्रवेश, प्रस्थान आदि पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।" +

२—दृश्य-विधान—रगमच की सफलता नाटक में दृश्यसविधान पर निर्भर है। अर्थात् दृश्यों का विभाजन है। दृश्यमूलक होने के कारण नाट्यकार

+ सेठ गोविन्ददास 'नाट्यकला मीमासा' पृष्ठ २१

अपनी कथावस्तु को छोटे-बड़े अनेक दृश्यों में विभाजित कर एक विशेष प्रभाव छोड़ता है। कौन कौनसे दृश्य रखे जॉय ? किस दृश्य के पश्चात् कौनसा दृश्य रहे ? बड़े दृश्यों की तैयारी के हेतु कौनसे छोटे दृश्य रखे जॉय ? नृत्य सगीत का क्रम कैसा रहे ? आदि प्रश्न नाट्यकार को स्मरण रखने चाहिये इस सम्बन्ध में प० उदयशकर भट्ट की सम्मति देखिए—

"दृश्य संविधान पर हम दो प्रकार से विचार कर सकते हैं—(१) रंगमञ्च की परिस्थिति जन्य बनावट तथा (२) पात्रों का अवतरण। ये ही दो वस्तुएँ हैं जो नाटकों के संविधान में सहायक एवं आधारभूत मानी जा सकती हैं। जीवन के भौतिक विकास के साथ-साथ रगमच का भी विकास हुआ है। प्राचीन नाटकों में प्रायः चार-पाँच प्रकार के दृश्य पाये जाते हैं जैसे—उद्यान का दृश्य, दरबार का दृश्य तपोवन और नगर का राजपथ! "उत्तररामचरित", शकुन्तला, मालतीमाधव आदि नाटक इन्हीं दृश्यों में समाप्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं पर या प्रासादों में स्त्री पुरुष की बात-चीत व उपस्थिति दिखाना आवश्यक हो जाता है प्राचीन नाटकों की सम्पूर्ण नाट्यकला उपरोक्त दृश्यों में समाप्त हो जाती थी। प्रायः सभी नाटकों के नायक राजा व राजकुमार होते थे। साधारण गृहस्थों को न उनमें कोई स्थान ही प्राप्त था, न उनका महत्व ही था। नीचे वर्ग के व्यक्ति, युद्ध, मृत्यु तथा घोरतम शृङ्गार रंगमच के लिए वर्जित थे। रगमच के छोटा होने के कारण दो दलों का युद्ध नहीं दिखाया जा सकता था। मृत्यु का दृश्य गर्ह्य अत्यन्त भयावह होने के कारण सुकुमारी राजकन्याओं एवं रानियों को भय-विह्वल न कर दे और मनोरंजन विषाद में न वर्णित हो जाय, इसलिए वर्जित कर दिया था'''रगमच पर नग्न स्त्री या पुरुष का आना सभ्य समाज के आचरण के विरुद्ध था ! चुम्बन आलिगन भी वर्जित थे।"

"हमारे यहाँ दृश्य जो बँधे बँधाये रूप में आये हैं, उसका एक कारण यह भी है कि पात्र चार भागों में विभक्त हैं—धीरोदत्त, धीरललित, धीरोद्धत तथा धीरप्रशान्त। इन चार भागों में बँट जाने के कारण उनसे सम्बन्ध रखने वाले दृश्य भी बँट गये हैं। वैसे भी उपर्युक्त चार-पॉच प्रकार के दृश्यों में नाटक का निर्वाह हो जाता था। दृश्य सविधान में भिन्नता का आरम्भ जन-साधारण के पात्रों के प्रवेश के साथ हो गया है।"

आधुनिक नाटक में सरलता एव यथार्थवाद का विशेष प्रभाव है। व्यर्थ का अस्वाभाविक आडम्बर रखना उचित नहीं समझा जाता। दैनिक-जीवन से सम्बन्धित होने के कारण दृश्य भी सीधे साधे घर, कमरे, बैठक या उद्यान

में दृश्य रखे जाते हैं। पुराने नाटक पाँच अकों के होते थे, किन्तु आधुनिक नाटककार केवल तीन अकों में (एकाकी नाटकों में केवल एक ही अक में) ही कथावस्तु प्रकट कर देते हैं। ये अक एव विस्तृत दृश्य जैसे ही होते हैं अँग्रेजी में इब्सन तथा हिन्दी में प० लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा भुवनेश्वर ने योरोपीय यथार्थवादी दृश्य सविधान के लाने में विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जहाँ पहले राजा, महाराजा आदि उच्चतम वर्ग के पात्र थे, और उन्हीं जैसे राज-प्रसाद, राज-उद्यान, राजदरबार आदि स्थान थे, आधुनिक नाटक के दृश्य साधारणतः दूकानों, मुसाफिर खानों, निर्धन बस्तियों और जनता के मध्य रखे जाते हैं। वातावरण निर्माण का पूरा-पूरा प्रयत्न रहता है।

साधारणतः नियम यह है कि एक अंक में एक ही घटना का चित्रण होना चाहिए। पुनः पुनः दृश्य परिवर्तन से शृङ्खला टूट जाती है। अनेक पात्रों के प्रवेश प्रस्थान आदि के सभाषणों से कथानक स्पष्ट नहीं हो पाता। नाटककार को चाहिये कि एक बड़े दृश्य की सजावट के लिए पहले एक छोटा सा दृश्य रख दे, जिससे उसके अन्दर दूसरे बड़े दृश्य की तैयारी हो सके और दृश्य परिवर्त्तन में निर्देशक को कोई कठिनाई उपस्थित न हो। यदि किसी अंक में दृश्य हों तो उन्हें छोटा रखना चाहिये पर सख्या इतनी न बढ़ जाय कि उन्हें स्टेज पर दिखाया ही न जा सके अथवा प्रबन्ध ही न हो सके।

सेठ गोविन्ददास जी ने दृश्यों के निर्माण के ये उपाय बताये हैं—

"नाटकों में दृश्य तीन प्रकार के होते हैं—(१) जो लकड़ी के तख्तों आदि ऐसी वस्तुओं पर चित्रित रहते हैं अर्थात् जो पर्दे की भाँति उठाये या गिराये जा सकते हैं—क़िला, महल, सभा भवन, बैठकखाना, भोजनालय, उद्यान आदि (२) कपड़े पर चित्रित दृश्य जो उठाये या गिराये जा सकते हैं या फटकर अलग हो जाते हैं—मकान, बाहरी दालान, मार्ग इत्यादि (३) वे दृश्य लकड़ी के तख्तों आदि के दोनों ओर चित्रित रहते हैं तथा जिनके एक दम से परिवर्तित करने की व्यवस्था होती है। दोनों बगलों में बगली पर्दे (Wings) और ऊपर झालर (Pliers) का प्रबन्ध तीनों प्रकार के दृश्यों में आवश्यक होता है। जब तक हमारे यहाँ कलों द्वारा दृश्य परिवर्तन की व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक यह ध्यान रखने की बात है कि पहले प्रकार के दो दृश्य एक के पश्चात् दूसरा न आवे। इस प्रकार के दो दृश्यों के बीच में या तो दूसरे प्रकार के दृश्य आवश्यक होते हैं, या यवनिका पतन।"*

* सेठ गोविन्ददास "नाट्यकला मीमासा" पृष्ठ ३३

३—तीन इकाइयाँ (Three Unities)—नाटक मानव-जीवन का यथार्थवादी स्वभाविक चित्र है। स्वभाविकता की रक्षा के हेतु यूनानी नाट्याचार्यों के अनुसार संकलनत्रय (Three Unities) का पालन अति आवश्यक है। इन्हें समय, वस्तु तथा स्थान (Unities fo Time, plase and Action) कहते हैं। सम्पूर्ण नाटक में एक ही कथानक रहें; एक ही स्थान और एक ही युग का चित्रण हो। व्यर्थ के गौण कथानक न रहें; स्थान तथा देश न बदले और घटना एक ही समय तक सीमित रहे। ऐसा करने से नाटक जीवन के अधिक समीप आ जाता है तथा स्वभाविकता बनी रहती है।

कुछ आलोचकों ने यह माना है कि "साधारणतः नाटकों में दो चार वर्ष की घटनाएँ खप सकती हैं, पर इससे अधिक समय की घटनाएँ एक ही नाटक में दिखाने के लिए रचना सम्बन्धी कौशल और चातुर्य की आवश्यकता है। यह कौशल इसी बात में है कि बीच में बीतने वाले समय पर दर्शकों का कभी ध्यान ही न जाने पाये और न उनको यह बतलाने की आवश्यकता ही पड़े कि बीच में कितना समय बीता है।" वास्तव में यह मत भी ठीक नहीं है क्योंकि दो चार वर्ष का समय भी अस्वभाविकता और कृत्रिमता उत्पन्न करने में समर्थ है। सेठ गोविन्ददास का मत ठीक है क्योंकि वे लिखते हैं, "यदि एक ही नाटक में एक घटना के पश्चात् की दूसरी घटना यथेष्ट समय के पश्चात् आरम्भ होती है, तो उस घटना के आरम्भ में ही दर्शकों को नाटक के पात्रों द्वारा ही यह बात मालूम हो जानी चाहिए कि इतने समय पश्चात् से नाटक का आरम्भ होता है, साथ ही यह बात इस कौशल से बतायी जानी चाहिए कि दर्शकों को यह भी न जान पड़े कि यह पात्र, यह भाषण इसलिए कर रहा है कि दर्शकों को यह भी मालूम हो जाय कि नाटक की घटनाएँ अब इतने समय के पश्चात् आरम्भ होती हैं।"

४—स्वगत-कथन—नाटकों में "स्वगत" "आप ही आप" आदि कृत्रिम नाटकीय उपायों द्वारा नाटककार पात्रों के मन में होने वाली विचारधारा, संघर्ष, भावनाओं और रहस्यों का उद्घाटन करते हैं। पात्र स्टेज पर आकर बातचीत करता है, किन्तु "स्वगत" में अपने हृदय की निगूढतम वृत्तियों को भी प्रकट कर देता है। स्वगत की परिपाटी का पुराने नाटकों में प्रचुर प्रयोग हुआ है, किन्तु आधुनिक नाट्यकार प्रायः इसका बहिष्कार कर रहे हैं। कारण, स्वगत कृत्रिम साधन है। यह कैसे संभव है कि दूर बैठी हुई जनता पात्र के मन की बातें सुन लें, तथा रंगमंच पर उसके सामने खड़ा हुआ पात्र उसे न सुन सके ? अतः या तो वे "स्वगत" की स्थिति ही नहीं आने देते, अथवा पात्रों से

परस्पर बातचीत में ही उन भावनाओं अथवा संघर्षों को प्रकट करते हैं। स्वगत भाषणों को हटाने के लिए कुछ ऐसे पात्र जोड़ दिये जाते हैं जो मुख्य पात्रों से बातचीत कर उनका चरित्र, भाव, अन्तःसंघर्ष प्रकट करते हैं। टेलीफोन अथवा किसी तोते, कुत्ते, बिल्ली आदि से अपने मन की बातें कह डालते हैं। ये साधन स्वभाविकता की रक्षा करते हैं।

५—गीत, नृत्य, पृष्ठभूमि संगीत—गीत, नृत्य तथा स्टेज के भीतर से आने वाला संगीत नाटक के वातावरण निर्माण में अतीव सहायक होते हैं। प्राचीन नाटकों में गीत और पद्यों की भरमार रहती थी, रस-सृष्टि हो जाती थी। नाटकों में अनेक मधुर गीत बिखरे पड़े हैं, जिनसे उनका साहित्यिक मूल्य काफी बढ गया है। अनेक पात्र पद्यों में वार्त्तालाप करते हैं। पृष्ठभूमि से मूल-भावना के अनुसार वाद्य-ध्वनि आती रहती है। कभी कभी नृत्य की भी योजना रहती है। काव्य और रससृष्टि की दृष्टि से भले ही ये साधन सुन्दर हों, किन्तु हैं अस्वाभाविक और कृत्रिम। अतः इनका भी बहिष्कार किया गया है। योरप में इब्सन सदा इनका विरोधी रहा। कविता और पद्य हट गये। इस सम्बन्ध में सेठ गोविन्ददास ने नाटक में कविता की आवश्यकता बतलाते हुए लिखा है—

"मेरे मत मे योरप के नाट्यकारों सदृश गायन, नृत्य, कविता का नाटक से सर्वथा बहिष्कार करने की आवश्यकता नहीं है। संसार में गाने से कई व्यक्तियों को प्रेम होता है। अतः नाटक में कुछ पात्र गा सकते हैं। गायन अधिकतर प्राकृतिक सौंदर्य आदि ऐसे विषयों पर हो, जिससे यह भावना उठे कि पात्र गद्य में बोलते-बोलते तत्काल उन्हीं भावों का पद्य बना कर गाने लगा है। पात्र ऐसे स्वभाविक अवसरों पर गावें जो स्वभाविक जान पड़ें। कोई कवि पात्र जिस विषय पर कथोपकथन करता है, उसी विषय पर तत्काल गा भी सकता है, पर सब पात्र नहीं। अकेला पात्र भी रंगभूमि में गा सकता है क्योंकि अकेले प्रायः मनुष्य गाने लगता है। कविता भी उद्धरण आदि के रूप में बोली जा सकती है और नृत्य भी सभाओं, प्रीतिभोज आदि के अवसर पर हो सकता है।"

६—वेशभूषा—पात्रों की वेशभूषा, मेक अप, आदि की ओर ध्यान रखना चाहिए। नारी पार्ट या नारियों को ही दिये जाँय, अथवा उसी आयु के सुन्दर लड़कों को दिये जायँ। जिस युग वय, स्थिति और विचारधारा के पात्र हों, वैसा ही उनका मेक-अप, वस्त्र, दाढी मूछें शरीर आदि हों। संक्षेप में, बाहर से देखकर भी पात्रों के देशकाल और स्थिति का ज्ञान हो जाना चाहिये।

उपर्युक्त तत्वों से युक्त नाटक मानव समाज को प्रभावित करता है और जिस समस्या को उठाता है, उस पर सोचने के लिए विवश करता है। नाटक

यथार्थवादी होना चाहिए और उसे स्वभाविकता की रक्षा करते हुए उपदेश के साथ मनोरंजन भी करना चाहिए। इसलिए नाटक में हास्य रस और विदूषक आवश्यक हैं।

नाटक के भेद

आचार्यों के मत से हमारे यहाँ नाटक के रूप पर पर्याप्त विचार एवं प्रयोग हुए हैं। नाटक को दो भागों में विभाजित किया गया है। १—रूपक अर्थात् पाँच अंकों के विस्तृत नाटक २—उपरूपक अर्थात् ३—से एक अक तक विभिन्न प्रकार के छोटे छोटे नाटक। रूपकों के दो भेद किए गए हैं, वे वस्तु, नायक और रस पर आधारित हैं। कुछ में आकार ही मूल भेद का कारण हैं। रूपक के दस भेद इस प्रकार हैं :—

१—नाटक (२) प्रकरण (३) भाण (४) व्यायोग (५) समवकार (६) डिम (७) इहामृग (८) अक (९) वीथी (१०) प्रहसन। डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

१—"नाटक—सब भेदों में मुख्य है। इसमें पाँच सधियाँ, चार वृत्तियाँ, चौसठ संध्यग, छत्तीस लक्षण, और तेतीस अलकार होने चाहिए। पाँच से दस तक अंक हों, नायक धीरोदत्त, कुलीन, प्रतापी, और दिव्य और अदिव्य होना चाहिए, शृंगार वीर और करुण रस की प्रधानता हो और सधि में अद्भुत रस आना चाहिए।

२—प्रकरण—इसमें सब तत्त्व नाटक के से होते हैं। अन्तर केवल यही है कि इसकी कथा बहुत उन्नत नहीं होती। इसका विषय कल्पित होता है। किसी पुराण आदि से नहीं लिया जाता। इसमें शृंगार रस प्रधान होता है।

३—भाण—इसमें धूर्तों का चरित्र रहता है और इससे सभी दर्शकों को खूब हँसाया जाता है। मुख्य पात्र अपने अथवा दूसरे के अनुभव की बातें आकाश की ओर मुँह उठाकर कहता और उनका उत्तर भी देता चलता है।

४—व्यायोग—वीर रस प्रधान होता है जिसमे स्त्रियाँ बिल्कुल नहीं होंगी अथवा बहुत कम होती हैं। एक अक होता है और आदि से अन्त तक एक ही कार्य या उद्देश्य से सब क्रियाएँ होती हैं। एक ही दिन की कथा का वर्णन होता है।

५—समवकार—इसमें ३ अक और १२ तक मुख्य पात्र होते हैं। सब पात्रों की क्रियाओं का फल पृथक् पृथक् होता है। वीर रस की प्रधानता होती है।

६—डिम—यह समवकार की अपेक्षा अधिक भयानक होता है, इसमें चार अंक और १६ तक नायक होते हैं जो प्रायः दैत्य, राक्षस, गंधर्व भूत-प्रेत आदि होते हैं। अद्भुत और रौद्र रसों की प्रधानता होती है।

७—ईहामृग—एक धीरोदत्त नायक और उसका प्रतिपक्षी एक प्रति नायक होता है। दोनों में परस्पर संघर्ष होता है। नायिका के लिए परस्पर युद्ध होता है। नायक को नायिका तो नहीं मिलती पर वह मरने से बच जाता है।

८—अंक—करुण रस प्रधान स्त्रियों के शोक के वर्णन से परिपूर्ण रहता है। अंक एक ही रहता है

९—वीथी—यह भाषा से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है और इसमें एक ही अंक तथा एक ही नाटक होता है। शृंगार रस तथा विनोद और आश्चर्य-जनक बातों की प्रधानता रहती है।

१०—प्रहसन—भाषा की तरह का होता है। इसमें कल्पित निंद्य लोगों का चरित्र दिखाया जाता है।

उपरूपक के १८ भेद इस प्रकार हैं १—नाटिका २—त्रोटक ३—गोष्ठी ४—सट्टक ५—नाट्यरासक ६—प्रस्थान ७—उल्लाप्य ८—काव्य ९—प्रेंखण १०—रासक ११—संलापक १२—श्रीगदित १३—शिल्पक (१४) विलासिका (१५) दुर्मल्लिका (१६) प्रकरणिका (१७) हल्लीश और (१८) भाणिका। आजकल इन उपभेदों के लक्षणों को न मान कर स्वतन्त्र प्रयोग चल रहे हैं।

प्राचीन और आधुनिक नाटक में अन्तर

प्राचीन हिन्दी नाटक—प्राचीन तथा आधुनिक नाटकों के विचार तथा टेक्नीक में यथेष्ट अन्तर है। प्राचीन हिन्दी नाटक सस्कृत एव पारसी प्रणालियों पर विरचित हैं। उनमें कोई उद्देश्य या आदर्श निहित होता था। कुछ नाटककार नाटक रचना के लिए प्रारम्भ में ही कुछ उद्देश्य खोज कर तदनुकूल वातावरण और कथानक की सृष्टि करते थे। प्रारम्भ में मंगलाचरण, सूत्रधार द्वारा पूर्व परिचय, कविता, शेर, दोहे, काव्यमय सवाद, भरतवाक्य स्वगत-भाषण आदि तत्व प्रधान रूप से पाये जाते हैं। कुछ नाटककारों ने अपने नाटकों की रचना में संस्कृत नाट्यशास्त्र के धनेजयकृत "दशरूपक" तथा विश्वनाथ कृत "साहित्य दर्पण" के अनुसार कथावस्तु, पात्र और रस को प्रमुखता प्रदान की है। भारतेन्दु जी ने स्वयं अपने "नाटक" शीर्षक निबन्ध में अपने काल के नाटकों के तीन उद्देश्य बतलाते हुए लिखा है कि "उनमें १—शृङ्गार २—हास्य ३—कौतुक ४—समाज संस्कार ५—देशवत्सलता" आदि में से कोई होना चाहिए स्वय उन्होंने समाजसुधार तथा राष्ट्रीय नवनिर्माण की दृष्टि से नाटक लिखे थे। उनके वर्ग के अन्य नाट्यकारों ने भी समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने का उपाय किया था। हास्य, व्यंग्य, विनोद-प्रधान प्रहसन भारतेन्दु युग की विशेष देन है। सस्कृत परम्परा के अनुसार पुराने नाटक सुखान्त थे; नायक धर्म और नीति का प्रतीक, समाज के सामने आदर्श उपस्थित करने वाला धीरोद्धत, धीर प्रशान्त और धीर ललित प्रकार का होता था। न्याय, सत्य और धर्म की विजय दिखाई जाती थी। रस-सृष्टि का विशेष ध्यान रखा जाता था। नाटककार कवि भी होते थे और नाटक कविता का अविभाज्य अंग समझा जाता था।

प्राचीन नाटकों के पात्र उच्चवर्ग के होते थे जैसे राजा, राजकुमार, सेनापति। साधारण गृहस्थों, गरीब मजदूर या निम्न वर्गों को उसमें कोई स्थान न था। युद्ध, मृत्यु, तथा घोरतम शृङ्गार के दृश्य वर्जित थे। युद्ध तो रंगमंच पर दिखाना

ही कठिन है, पर मृत्यु क्यों वर्जित रही ? इसका एक उत्तर प० उदयशकर भट्ट के शब्दों में देखिए—

"मृत्यु का दृश्य गर्ह्य, अत्यन्त भयावह होने के कारण सुकुमारी राजकन्याओं एव रानियों को भयविह्वल न कर दे और मनोरजन विषाद में न परिणत हो जाय, इसलिए वर्जित कर दिया गया था। एक भावना इसके विरुद्ध यह भी दिखाई देती है कि नाटक के मूल में लोक कल्याण एव मनोरजन की प्रवृत्ति काम करती रही है। मृत्यु जीवन के परिवर्तन का अत्यन्त भयावह व्यापार है। स्वभाविक होते हुए भी रगमञ्च पर उसको न दिखाने का सिद्धान्त बनाना इसीलिए उपादेय भी है। यही कारण है कि दुःखान्त नाटकों का प्रचार हमारे यहाँ नहीं हुआ है। हमारी सस्कृति में रगमच पर मृत्यु न दिखाने का एक और कारण भी स्पष्ट है, वह है जीवन के चित्र द्वारा गुणों का उत्थान और अवगुणों का नाश, जीवन में यौवन जन्य उचित शृङ्गारिकता का पोषण अथवा आध्यात्म द्वारा मुक्ति। मुक्ति के लिए नाटकों की रचना कभी नहीं हुई। इसलिए वीर, हास्य और शृङ्गार द्वारा जीवन को स्वस्थ बनाने की चेष्टा सफल मानी गई। शृंङ्गार और वीर रस मुख्य माने गये हैं।"

प्राचीन नाटकों में कल्पना, भावुकता और अतिरजित परिस्थितियों का प्रचुर समावेश है। स्वभाविकता की अपेक्षा आदर्शवाद की प्रवृत्ति अधिक है। रगमच की व्यवस्था का सकेत मात्र है। स्थान-स्थान पर गानों, शेर, दोहे, स्वगत आदि के प्रयोग से एक प्रकार की कृत्रिमता दिखाई देती है। सघर्ष नाटक का प्राण है। इनमें वाह्य सघर्ष है।

आधुनिक हिन्दी नाटक—आधुनिक नाटक यथार्थवादी हैं। आज के नाटककार मानव जीवन का स्वभाविकता से चित्रण करना पसन्द करते हैं। वे अपने नाटक में वे ही दृश्य रखते हैं, जो गमच पर स्वभाविकता से चित्रित किए जा सकें। हमारे आज के नायक में किन्हीं विशिष्ट गुणों की आवश्यकता नहीं है। मजदूर, किसान, क्लर्क, दूकानदार, नौकर आदि कोई भी व्यक्ति नाटक का मुख्य पात्र बन सकता है। घर, दूकान, पार्क, खलियान अथवा सड़क पर ही दृश्य रखे जाते हैं साधारण दूकानें, मुसाफिर खाने, सराय, हरिजन-चमारों की वस्तियाँ सब हमारे नाटकों में हैं। यथार्थवाद की इस प्रेरणा ने हमारे दृश्य विधान को सरल से सरलतर बना दिया है।

आजकल नाटकों में रस की अपेक्षा मनोविज्ञान की प्रधानता है। डा० रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रभाकर माचवे, विष्णु, उपेन्द्रनाथ

"अश्क" आदि नाटककारों ने पात्रों के अन्तसंघर्ष प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की ऊँचाई ग्रहण की है। वातावरण निर्माण के लिए अन्धकार, बिजली का प्रकाश, नाना प्रकार के पर्दे, सेटिंग, पात्रों का मेकअप, तथा पात्रों के मनोभावों (Moods) के अनुसार सजावट आज के निर्देशक की अभिरुचि प्रकट करते हैं। अपने नाटकों द्वारा वे एक विशेष प्रभाव (Fine empression) डालना चाहते हैं।

आज का नाटककार कथा में अन्त तक संघर्ष रखता है। अन्त में चरम सीमा (Climax) व्यवस्थित रूप से रहती है। वह अन्ध रूढियों जीर्णशीर्ण परम्पराओं पर प्रहार कर नई समाजवादी विचारधारा का प्रतिपादन करता है। चरित्र (Character) का विश्लेषण प्रमुख है। यथार्थवाद ही अन्त का निष्कर्ष है। सब प्रकार की घटनाएँ दिखाई जा सकती हैं। जीवन की परिस्थिति के अनुसार नाटक सुखान्त और दुखान्त दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। आधुनिक नाटककार बर्हिमुखी की अपेक्षा अन्तर्मुखी होता जा रहा है। मनोविज्ञान की सहायता से वह जीवन के निगूढ सत्यों, मनःविश्लेषण (Psycho-Analysis) में व्यस्त है। दोहे, शेर, पद्य, स्वगत आदि कृत्रिम नाटकीय रूढियों का अन्त कर दिया गया है। भावुकता के स्थान पर कठोर यथार्थ का चित्रण जनता पसन्द करती है। अंकों में प्रायः एक लम्बा दृश्य ही रख कर समग्र कथावस्तु उसी में प्रकट कर दी जाती है। एकांकी नाटक आज की एक विशेष देन है।

नाटक और एकांकी—साधारण नाटक और एकांकी नाटक में पर्याप्त अन्तर है। जहाँ बड़े नाटक में जीवन की विविधता, सर्वाङ्गीणता है, अनेक पात्र कथा का विस्तार है, वहाँ एकांकी में जीवन की एकरूपता, परिमित पात्र, और कथा में अनावश्यक अंग या गौण कथा की उपेक्षा है। केवल एक अंक में सम्पूर्ण एकांकी पूर्ण होकर अपना प्रभाव छोड़ जाता है। बड़े नाटकों में जहाँ चरित्र-चित्रण की विविधता है, वहाँ एकांकी में संक्षिप्त और तीव्र रूपरेखा है। अनावश्यक वाक्य अथवा विस्तार के लिए कोई स्थान नहीं है। बड़े नाटक में वर्णनात्मकता की अधिकता, चरमसीमा का विस्तार, कथानक के विकास में मन्दगति है, वहाँ एकांकी में व्यंजनात्मकता की अधिकता और प्रभावशीलता है चरमसीमा का बिन्दु में केन्द्रीकरण, कथानक की गतिक्षिप्र है। अभिनय का विशेष ध्यान रखा जाता है।

आज का नाटक हमारे सामाजिक जीवन का एक प्रमुख अग है। हमारे नाटककार आज के जटिल जीवन की अनेक झाँकिया प्रस्तुत कर रहे हैं। न केवल रगमच पर रेडियो से प्रसारित होने के कारण नाटक तीव्रता से लोकप्रिय बनते चले जा रहे हैं। ग्रैनविल बार्कर के ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं—

"अब नाटककार नाटक को केवल क्षणिक मनोरजन न समझे परन्तु एक ऐसी कला समझें जो कि अन्य ललित कलाओं के समकक्ष लाई जा सके और उन्हीं के समक्ष अधिक गम्भीर अर्थ वाली बने।"

हिन्दी नाटक का विकास

प्रथम उत्थान

भारतेन्दु-युग जहाँ नए-नए विचारों तथा भावनाओं का युग है, वहाँ साहित्यिक जगत में नए प्रयोगों का युग भी है। भारतेन्दु जी से पूर्व हमें नाटकों का अभाव-सा मिलता है। जो थोड़े से गिने चुने नाटक उपलब्ध हैं, वे बाह्य दृष्टि से नाटक भले ही कह दिये जायँ, वास्तव में नाटकीय कविता मात्र हैं। हिन्दी नाटक के अभाव के तीन कारण थे (१) जिस काल में हिन्दी का उदय हुआ, रगमंच की स्थापना न हो सकी (२) मूर्ति पूजा के विरोधी होने के कारण मुसलमानी राज्य काल में नाटक के लिए कोई स्थान न था (३) हिन्दी गद्य का कोई रूप निश्चित न हो पाया था (४) जन-जीवन में कोई उत्साह न था (५) पारसी नाटक कम्पनियाँ उर्दू नाटकों को अधिक पसन्द करती थीं। हिन्दी नाटकों के लिए उनके हृदय में कोई स्थान न था। राष्ट्रीय चेतना के विकास से धीरे-धीरे हिन्दी नाटकों का विकास हुआ।

डा० सोमनाथ गुप्त ने हिन्दी नाटकों में खोज के पश्चात निश्चित किया हैं कि हिन्दी का प्रथम नाटक "प्रबोध चन्द्रोदय (१६४३) संस्कृत का अनुवाद है दूसरा नाटक रीवा नरेश महाराज विश्वसिंह जू कृत "आनन्द-रघुनन्दन" है। इन्हीं का लिखा हुआ एक नाटक "गीता रघुनन्दन" भी है। दो धाराओं में हिन्दी नाटक का विकास हुआ अनुवादित और मौलिक। राजा लक्ष्मणसिंह का अनुवादित "शकुन्तला" (१८६१) तथा गोपालचन्द कृत "नहुप" इन धाराओं के प्रतिनिधि रूप कहे जा सकते हैं।* इन दोनों में नाटकत्व अविकसित है। इसी प्रकार के अन्य नाटकों—"हनुमन्नाटक", समयसार; "करुणाभरत"; शकुन्तला-उपाख्यान "सभासार" आदि नाटकों में नाट्यकला अपने प्रारम्भिक रूप में पाई जाती है। इन्हें नाटकीय कविता (Dramatic Poetry) कहना अधिक उचित है। इनमें दृश्य विधान अंक विभाजन संस्कृत

---

* देखिए डा० सोमनाथ कृत "हिन्दी नाटक का इति०" पृष्ठ ६

परिपाटी के अनुसार हुआ है। इस वर्ग के विपरीत रगमचीय नाटक का विकास शीघ्रता से हुआ है। इस वर्ग में मुशी अमानत खाँ का "इन्दर सभा" का गीतिनाट्य उल्लेखनीय रचना है। इसका पर्याप्त स्वागत हुआ और इस शैली के अनुकरण पर कई नाटक बने जैसे "मुछन्दर सभा", "बन्दर सभा" इत्यादि। पारसी थियटरों का युग आया और रगमच का विकास हुआ। पारसी कम्पनियाँ अपना-अपना नाटककार रखती और नाटक लिखवाती थीं। ये रगमच की दृष्टि से नाटक लिखते थे। इनमें "रौनक बनारसी", विनायक प्रसाद नलिब, अहसान लखनवी बहुत प्रसिद्ध हैं। "रौनक" का गुलबकावली" और "इन्साफे महमूद" प्रसिद्ध हैं। अनुवाद की दिशा में भी कार्य हुआ। राजा लक्ष्मणसिंह की "शकुन्तला" के पश्चात स्वय भारतेन्दु हरिचन्द्र ने अनुवाद भी किये और कई मौलिक नाटक भी तैयार किये। श्रीनिवास दास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, तोताराम, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास, बदरीनारायण चौधरी और रामदेवीप्रसाद पूर्ण ने हरिश्चन्द्र की परम्परा पर नाटकों की सृष्टि की।+

भारतेन्दुजी के नाटक—भारतेन्दुजी के नाटक पारसी थियेटरों के असाहित्यिक नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखे गये थे। उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी के रिक्त साहित्य के लिए आदश उपस्थित करना तथा साहित्यकारों को साहित्य सृजन के लिए प्रोत्साहित करना था। हिन्दी में नाट्य साहित्य की कमी की ओर उनकी दृष्टि गई। उन्होंने जहाँ प्राचीन प्रचलित सस्कृत नाट्यशास्त्र की प्रणाली के अनुसार एकाकी रचना की है, वहाँ "विद्यासुन्दर" का बगला और "मर्चेन्ट आफ वेनिस" का अग्रेजी से अनुवाद भी प्रस्तुत किया। वे अपनी मौलिकता का प्रयोग करना चाहते थे। अनुवादों में मौलिकता के प्रदर्शन के लिए अवसर न था। अत. उन्होंने अनेक प्रकार के १४ नाटक लिखे जिनमें एकाकी और प्रहसन भी हैं। इनमें "सत्य हरिश्चन्द्र", "मुद्राराक्षस", "नीलदेवी", 'भारत दुर्दशा", "अन्धेर नगरी", "चन्द्रावली" आदि प्रमुख हैं। ये नाटक रगमच पर भी सफलता पूर्वक खेले गये और इनकी परिपाटी पर अनेक नाट्यकारों ने रचनाएँ की हैं। इनके अतिरिक्त 'वैदिकी हिंसा न भवति' "प्रेमयोगिनी"; "नीलदेवी", विषस्यविषमौषधम्, "भारतदुर्दशा", "भारत जननी", "सतीप्रणय", कार्पूर मजरी आदि लघु नाटक भी प्रस्तुत किये।*

+ डा० श्रीकृष्णलाल "आ० हिन्दी साहित्य" पृष्ठ २०४

* इनके विस्तृत विवेचन के लिए देखिए प्रो०-रामचरण महेन्द्र कृत "हिन्दी एकाकी और एकाकीकार"

कलात्मक दृष्टि से भारतेन्दु के "वैदिकी हिंसा" और "अन्धेर नगरी" सफल हैं। इनमें शिष्ट हास्य, तीखा व्यंग्य और चुटीली भाषा का प्रयोग है। "विषस्य विषमौषधम्" भाण का अच्छा उदाहरण है।

उनका विशेष योगदान—डा० सोमनाथ के शब्दों में "भारतेन्दु ने संस्कृत नाट्यशास्त्र की निर्धारित परम्परा में सब से बड़ा परिवर्त्तन किया। नाटक के विषय को उन्होंने इतना विस्तृत और अनेक रूपी बना दिया कि लेखक के सामने कोई कठिनाई नहीं रही। ऐसा करने से नाटक में जीवन प्रदर्शन की विशालता का समावेश हो गया और लेखक की विचारधारा सीमित न रह कर अनेक नवीन आख्यानों में लग गई। पात्रों के चुनाव और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी परिधि को और अधिक विस्तृत कर दिया; सब प्रकार के पात्र लिए हैं और सब का चरित्र प्रत्येक पात्र के अनुकूल है, उपदेश प्रद और यथार्थ भी। रस पर वैसा ध्यान नहीं दिया जैसा संस्कृत के नाटक लेखकों ने.... भारतेन्दु में सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनमें साहित्य भी है और अभिनीत होने की क्षमता भी......लेखक अपने पात्रों को सजीव और यथार्थ रखना चाहता है। अपने नाट्यविधान में वे संस्कृत के पूर्ण पक्षपाती नहीं रहे उनमें अपनी मौलिकता भी है। एक अमूल्य देन उनके गीत हैं.......उन्होंने अनुवाद और मौलिक दोनों नाटकीय परम्पराओं को जीवित रखा और नवीन परम्पराओं का श्रीगणेश भी किया, एकांकी नाटकों की परम्परा उन्हीं से चली प्रहसन की परम्परा के जन्मदाता भारतेन्दु हैं ही......उन्होंने अभिनय सम्बन्धी भी सुधार किये। +

भारतेन्दु नाटक कई धाराओं में विकसित हुआ जैसे १—ऐतिहासिक २—राष्ट्रीय ३—समस्या प्रधान ४—प्रेमप्रधान ५—हास्य-व्यंग्य-प्रधान प्रहसन ६—पौराणिक और धार्मिक। पौराणिक धार्मिक धारा में शीतलप्रसाद त्रिपाठी कृत "रामचरितावली"; देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत "सीताहरण"; रामलीला; दामोदर सप्रेम कृत "रामलीला" ७—काण्ड; ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत "सीतावनवास"; प्रेमघन कृत "प्रयाग-राम-वनगमन" मुख्य हैं। कृष्णचरित सम्बन्धी नाटकों में देवकीनन्दन त्रिपाठी का "रुक्मणीहरण", "कंसवध"; "नन्दोत्सव"; खड्गबहादुरमल कृत "महारास"; चन्द्र शर्मा का "उषाहरण" अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत "प्रद्युम्न विजय" तथा "रुक्मणी परिणय" प्रमुख नाटक हैं।

+ देखिए डा० सोमनाथ गुप्त कृत "हिन्दी नाटक सा० का इति०" पृ० ८१

ऐतिहासिक धारा में भारतेन्दुजी कृत 'नीलदेवी' एक सुन्दर रचना है। इस धारा के अन्तर्गत राधाकृष्णदास कृत 'पद्मावती', और महाराणा प्रताप; काशीनाथ खत्री कृत 'तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक', वैकुंठनाथ दुग्गल कृत 'श्रीहर्ष', श्रीनिवासदास कृत 'सयोगिता स्वयवर (१८८५), गोपालराम कृत 'यौवन-योगिनी', राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर', बलदेव-प्रसाद कृत "मीरावाई", सैयद शेर अली कृत "कत्ल हकीकतराय" और गंगा-प्रसाद गुप्त कृत "वीर जयमल" आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

देशप्रेम की राष्ट्रीय धारा भी तीव्रगति से बहती रही। स्वयं भारतेन्दुजी भारत की दुर्दशा देखकर तिलमिला उठे थे। उन्होंने अपने "भारतदुर्दशा" नाटक में देशप्रेम का प्रमाण दिया और नवस्फूर्ति का मन्त्र फूँका था। इसी वर्ग में शरतकुमार मुकर्जी का "भारतोद्धार", खड्गबहादुर मल्ल कृत "भारत आरत", अम्बिकादत्त व्यास कृत "भारत सौभाग्य", बद्रीनारायण "प्रेमघन" का "भारत सौभाग्य", गोपालराम गहमरी कृत "देशदशा", प्रतापनरायण मिश्र कृत "भारतदुर्दशा" आदि राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत नाटक लिखे गए।

भारतेन्दुकालीन प्रहसन—भारतेन्दु ने प्रहसन का श्रीगणेश कर दिया था। प्रहसनों में तत्कालीन सामाजिक धार्मिक त्रुटियों पर प्रकाश डाला गया। भारत की विपन्नता, आर्थिक शोषण, नित्य नए लगने वाले कर और टैक्स, पुलिस का आन्तक और अत्याचार, अदालतों के भ्रष्टाचार, काले-गोरे का भेद-भाव, विजेताओं की कुरीतियाँ ग्रहण करने की दुष्प्रवृत्ति, पश्चिमी आचार-विचारों के प्रति मानसिक दासता, निज प्राचीन गौरव का विस्मरण, राष्ट्रीय विचारों की उपेक्षा, वर्गों में ऐक्य एव सगठन का अभाव, सम्पूर्ण देश की भाषा के प्रति विमुखता, निर्धनता, ऋणग्रस्तता, बेकारी, धार्मिक सकुचितता और कट्टरता आदि के दुष्परिणाम इन प्रहसनों में चित्रित किए गये हैं।

इन प्रहसनों में नाटककारों की सुधारवृत्ति स्पष्ट है। योरप की तरह इस युग में भारत में भी समाजसुधार आन्दोलन जोरों पर था। समाजसुधार का यह कार्य भारतेन्दुजी ने किया और श्रीदेवकीनन्दन त्रिपाठी ने आगे बढ़ाया। सामाजिक जीवन के रोगों (जैसे बहु और बालविवाह, अन्धविश्वास, पाखण्ड, पडागिरी, स्त्रियों की हीन-दशा, व्यर्थ का कर्म-काण्ड, फैशन परस्ती, अपव्यय, वेश्यागमन, पश्चिम का अन्धानुकरण आदि) को दूर करने के लिए समाज में आवाज़ उठाई गई। इस वर्ग की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

प० जी० एल० उपाध्याय कृत "कलिकाल रहस्य" और "वैदिकी मिथ्या मिथ्यान भवति"; बाबू माधोप्रसाद कृत 'वैसाखनन्दन"; रत्नचन्द का "हिन्दी उर्दू नाटक"; ब्लाकटानन्द कृत "वल्लभकुलदम्भ दर्पण"; दुर्गाप्रसाद कृत "प्रभास-मिलन"; कमलाचरण मिश्र कृत "अद्भुत नाटक"; श्री जगन्नाथ का "वर्ण व्यवस्था" (१८८७); घनश्यामदास का "वृद्धावस्था विवाह नाटक" और "अकबर गोरक्षा न्याय नाटक"; प० अम्बिकादत्त व्यास के "गो संकट" (१८८६) मन की उमग (१८८६); हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ कृत "अपनी टेक निबाही"; देवकीनन्दन त्रिपाठी के "एक में दस दस" (१८८६) कलियुगी जनेऊ, कलियुगी विवाह, रक्षाबन्धन, एक में तीन तीन, स्त्री चरित, वेश्या विलास, बैल छै टके को, जयनारसिंह की (१८८८) बालविवाह नाटक, गोवध निषेध, प्रचण्ड गोरक्षण, श्रीबालकृष्ण कृत "शिक्षादान" या जैसा काम वैसा परिणाम ला० खड्गबहादुर मल्ल का "भारत आरत" (१८८५) श्री राधाचरणगोस्वामी कृत "भग तरंग" "बूढे मुँह मुँहासे", किशोरीलाल गोस्वामी कृत "चौपट चपेट" (१८९१) चौधरी नवलसिंह कृत "वेश्या नाटक" (१८९३) विजयानन्द त्रिपाठी कृत "महाअन्धेर नगरी", देवदत्त शर्मा कृत "अति अन्धेर नगरी" आदि इस युग के उल्लेखनीय सुधारवादी प्रहसन हैं। इनमें तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक जीवन की कटु आलोचना भी है।

भारतेन्दु के समकालीन नाट्यकार

इस युग के प्रमुख नाटककारों में निम्नलिखित लेखक विशेष उल्लेखनीय हैं :...

१—बालकृष्ण भट्ट (१८४४–१९१४) :—आपके लिखे छः नाटक प्रसिद्ध हैं १—कलिराज की सभा २—रेल का विकट खेल ३—बाल विवाह ४—पद्मावती ५—शर्मिष्ठा देवयानी और ६—चन्द्रलेखा। एकांकी नाटकों में आपके "शिक्षादान" और "जैसा काम वैसा परिणाम" प्रमुख हैं। उपदेश प्रधान आदर्शवादी विचारधारा की प्रमुखता है। कथावस्तु के विकास में कोई विशेषता नहीं है; पात्रों के वार्तालाप लम्बे हो गए हैं। भट्ट जी की भाषा में प्रौढता और परिपक्वता है।

२—लाला श्रीनिवासदास (१८५१–१८८७) :—आपके "प्रह्लाद चरित्र"; "रणधीर और प्रेममोहिनी"; "तप्ता संवरण" और "संयोगिता स्वयंवर" आदि चार नाटक प्रसिद्ध हैं। संस्कृत की प्राचीन परम्परा का अनुक-

रण किया है। "स्वगत" का प्रचुर प्रयोग है। लाला जी की मुख्य देन दुखान्त नाटक हैं।

३—राधाचरण गोस्वामी (१८५८–१९२५) :—आपको "सती चन्द्रावली" अमरसिंह राठौढ; श्रीदान; पूरे नाटक तथा "बूढे मुँह मु हासे"; तन मन धन गोसाईं जी के अर्पण"; "भग तरग", और "यमलोक यात्रा" आदि प्रहसन प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं,"विचारों की उग्रता और प्रगतिशीलता में यह अपने युग के अन्य सभी लेखकों से सभवतः आगे थे। व्यग्य के छींटे इधर-उधर अपनी रचनाओं में बहुत लेखक दे सकते हैं, परन्तु उनका व्यग्य ऐसा है जो शिथिल न हो और हास्य में परिणत हो जाय। इनके नाटकों में हमें उस नाटक की परम्परा का पूर्ण विकास मिलता है, जिसमें व्यग्य और हास्य के साथ साथ कथावस्तु द्वारा समाज सुधार की चेष्टा की गई है। यह स्वय गोस्वामी थे, परन्तु पानी में रहकर मगर से वैर "की चेतावनी से भय न करके इन्होंने गोसाइयों के विरुद्ध अपना प्रहसन लिखा था। 'बूढे मुँह मुहासे" में इन्होंने किसान और जमीदार के सघर्ष को अपनी कथावस्तु बनाया है और उसमें भी मुसलमान और हिन्दू किसानों की एकता दिखाकर गाँवों के वर्ग-युद्ध और हिन्दू मुसलिम समस्याओं पर प्रकाश डाला है।"×

४—राधाकृष्णदास (१८६४–१९०७) :—आपके "दुःखनीबाला" (१८८०) महारानी पद्मावती (१८८२) धर्मालप (१८८५) महाराणा प्रतापसिंह (१८९७) सती प्रताप आदि नाटक प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणों की हठधर्मी, समाज में फैलने वाली कुरीतियाँ, अनमेल विवाहों से हानियाँ और विधवा विवाह के पक्ष में पर्याप्त लिखा है। "धर्मालाप" विभिन्न मत वाले धर्मावलम्बियों का वार्त्तालाप है। ऐतिहासिक नाटकों में भारत के अतीत गौरव की प्रतिष्ठा है। "आपकी नाट्यकला में एक प्रसिद्ध विकास दिखाई देता है ..अपका साहस सस्कृत परम्परा तोड़ने का तो न हुआ परन्तु अन्य नाटकीय तत्वों में उन्होंने बिल्कुल वर्त्तमान प्रणाली को अपनाया है। चरित्र चित्रण तत्व का निर्वाह भली भाँति किया है। एतिहासिक पात्रों का चरित्र अच्छा, स्वाभाविक और स्पष्ट है। भाषा साधारणतः अच्छी है। मुसलमान पात्र उर्दू बोलते हैं। भारतेन्दु काल के नाटककारों में राधाकृष्णदास का प्रमुख स्थान है और उनका "महाराणा प्रतापसिंह" नाटक अपने समय की एक उच्चकोटि की रचना है।"+

× देखिए डा० रामविलास शर्मा कृत "भारतेन्दु युग" पृष्ठ ८०
+ डा० सोमनाथ गुप्त

५—किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२):—आपके १—मयंक मंजरी २—नाट्य संभव रूपक ३—चौपट चपेट (प्रहसन) प्रसिद्ध हैं। "मयंक मजरी" में कथावस्तु का कलात्मक विकास क्रम है, काव्य का प्रयोग अधिक। "नाट्य-भव-रूपक" में नाटक की उत्पत्ति को लेकर एक कथानक निर्माण किया गया है। "चौपट चपेट" (प्रहसन) में लम्पटों की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। गोस्वामी जी को "अक" तथा "दृश्य" शब्दों के प्रयोग में कोई सूक्ष्म भेद नहीं करते थे। "मयक मजरी" में केवल अङ्कों में ही विभाजन है, "नाट्यसभवरूपक" सात दृश्यों में विभाजित कर दिया गया है। आप अपने नाटकों का उद्देश्य प्रायः नाटक के मुख पृष्ठ पर अङ्कित कर देते थे। उदाहरण के लिए "चौपट चपेट" के मुख पृष्ठ पर अङ्कित "नीति-माता" का यह श्लोक दिया गया है :—

संतो जयन्ति भुवनेषु यथा खलाश्च
तद्वेज्जये युरिति में मतुते मनीषा।
तदृष्ठितः कविगिरोहि भवन्ति शुद्धा
स्तस्मान्नते खलु भवन्ति कदापि निंदाः। (नीति माला)

मध्य में विभिन्न रागों जैसे झझोटी, जैतश्री, विरहनी, हमीर, विहागा, कवित्त, दोहों सस्कृत के श्लोकों का प्रयोग किया गया है। भारतेन्दु युग की सुधारवादी प्रवृत्ति, कविता का प्रयोग, 'स्वगत" का प्रयोग इन्हें संस्कृत प्रणाली से सयुक्त करता है पर इनके संवादों में प्रौढता के दर्शन हो जाते हैं। इन्होंने तत्कालीन गिरी हुई सामाजिक दशा चित्रित कर समाज-सुधार का प्रयत्न किया था।

६—श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी—त्रिपाठी जी ने लघु नाटकों के क्षेत्र में प्रचुर कार्य किया है। इस दिशा में आपके १—रुकमणीहरण २—रामलीला नाटक ३—कस-वध ४—लक्ष्मी-सरस्वती-मिलन ५—प्रचण्ड गोरक्षण ६—वाल विवाह ७—गोवध निषेध ८—कलियुगी जनेऊ ९—कलियुगी विवाह १०—रक्षा वन्धन ११—एक एक में तीन तीन १२—स्त्री चरित्र १३—वेश्या विलास १४—वैल छै टके का तथा १५—जयनारसिंह की आदि एकांकी नाटक प्रसिद्ध हैं। त्रिपाठी जी सुधार वादी परम्परा के एकांकीकार थे। समाज की त्रुटियाँ दूर करने में प्रयत्नशील थे। मानवता की नवीन रूप में प्रतिष्ठा करना चाहते थे। कथावस्तु का निर्माण अपने उद्देश्य को दृष्टि में रख कर करते थे। इस काल के नाट्य-कारों में जो उपदेश की वृत्ति दिखाई देती है, वह इनके नाटकों में स्पष्ट है। प्रहसन निर्माण में आप विशेष सफल रहे हैं।

सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस युग के नाटक सस्कृत परिपाटी पर निर्मित हुए हैं। ये पारसी थियेटरों की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखे गए थे। इनमें उर्दू और हिन्दी मिश्रित भाषा पद्य की भरमार तथा पारसी शैली का प्रयोग मिलता है। समाज सुधार तथा नव निर्माण उनके प्रमुख उद्देश्य थे। कुछ नाटक केवल रचमग के लिए लिखे गए। "अक" तथा "दृश्य" के सम्बन्ध में कोई विशेष अन्तर न था। आगे चलकर नाटकों में रोमांचकारी और चमत्कार पूर्ण दृश्यों की अधिकता होने लगी।

द्वितीय उत्थान (द्विवेदी युग)

प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य सवर्द्धन का कार्य तेजी से किया। इस युग में नाट्य साहित्य की धारा मद सी रही। नाट्यकला के ह्रास के कई कारण थे। प्रथम तो हमारे यहाँ रगमच का अभाव रहा है। अभिनयकला का प्रचार कम था। शिक्षित और सुसस्कृत समाज अभिनय को उच्च दृष्टि से न देखता था। अभिनय एव नाटक के प्रति यह उपेक्षा-वृत्ति नाट्यकला के लिए हानिकर सिद्ध हुई। बगाल में द्विजेन्द्रलालराय और रविन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों का अच्छा प्रचार चल रहा था। सस्कृत प्रणाली छूट कर पाश्चात्य नाटकीय विधानों का प्रयोग प्रारभ हुआ।

द्विवेदी युग के प्रमुख नाट्यकारों में दो मुख्य धाराएँ हैं १—रगमचीय नाटककार तथा २—साहित्यिक नाटककार। जिस रगमच पर हिन्दी नाटकों का प्रारभ हुआ था, वह पारमी तथा पश्चिमी रगमचों का समन्वय था। इसका विकास पहिले बगाल में हुआ था। पारसी नाटक मडलियों पर पाश्चात्य प्रभाव आ रहा था। पारसी नाटक मडलियाँ उर्दू मिश्रित भाषा में नाटक लिखवाती थीं। नाटककार भी मुख्यतः मुसलमान ही थे। विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी, अल्फेड थियेट्रिकल कम्पनी, न्यू अल्फेड कम्पनी आदि की प्रेरणाओं से अनेक नाटककारों ने रगमचीय नाटक लिखे जिनमें प० नारायणप्रसाद बेताब, मेहदी हसन अहसान, आगा मोहम्मद हश्र काश्मीरी, प० राधेश्याम कथावाचक आदि प्रसिद्ध हैं। ये नाटक मडलियाँ चुनाव में जनता में नाटक की लोकप्रियता का ही मुख्य ध्यान रखती थीं। चमत्कार पूर्ण दृश्य, सगीत, दोहे, शेर तथा कविता आदि के प्रयोग से जनता का मनोरजन करती थीं। रगमच की सजावट, अभिनेताओं की वेशभूषा, वातावरण निर्माण आदि की सुन्दरता नाटकों को रोचक बना देती थीं। पारसी नाटक मडलियों के अतिरिक्त "सूर विजय" और

"व्याकुल भारत" नाम की दो नाटक मंडलियों ने नाटक लिखवा कर हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है।

साहित्यिक नाटककारों में प० माधव शुक्ल; आनन्दप्रसाद खत्री, हरिदास माणिक, प० माखनलाल चतुर्वेदी, बदरीनाथ भट्ट बी० ए०; जमुनादास मेहरा; दुर्गाप्रसाद गुप्त, शिवरामदास गुप्त; और बाबू बलदेव प्रसाद खरे प्रसिद्ध हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने प्रहसन के निर्माण की दिशा में प्रशसनीय कार्य किया है।

प० माखनलाल चतुर्वेदी के "कृष्णार्जुन युद्ध" काव्य की दृष्टि से सशक्त सुन्दर साहित्यिक नाटक है। प० राधेश्याम कथावाचक ने धार्मिक पौराणिक धारा को विकसित किया और रगमच के अनुकूल पारसी प्रणाली के लोकप्रिय नाटक लिखे। इनमें "श्रीकृष्ण अवतार", "रुक्मणी मगल", "वीर अभिमन्यु"; "मशरिकी-हूर"; "श्रवणकुमार"; "ईश्वर भक्ति"; भक्त प्रहलाद; "द्रौपदी स्वयवर" आदि रगमचीय नाटक 'न्यू अल्फ्रेड' नाटक मडली के लिए लिखित नाटक विशेष लोकप्रिय हुए हैं। "ऊषा अनिरुद्ध श्रीसूर विजय कम्पनी के लिए लिखा गया था। कथावाचक जी ने आदर्श की प्रतिष्ठा, भारतीय सस्कृति की रक्षा और सुरुचि का सदैव ध्यान रखा है।

तृतीय उत्थान

("प्रसाद" तथा उनके समकालीन नाटककार १६१५-३३)

'प्रसाद' की देन :—हिन्दी नाटक साहित्य में श्री जयशकर प्रसाद के नाटकों से एक नया उत्थान माना जा सकता है। देश में राष्ट्रीय चेतना प्रबलता से प्रकट हो रही थी। १६२० से स्वराज्य युग का प्रारभ हुआ और १६२८ तक तीव्रता से चलता रहा। प्राचीन शैलियों विचार धाराओं के प्रति समाज और साहित्य में एक प्रतिक्रिया दिखाई देने लगी। "प्रसाद" जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा राष्ट्रीय जागृति, नए आदर्श, भारतीय-सस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा प्रस्तुत की। यों तो कविता, कहानी, उपन्यास आदि सभी क्षेत्रों में "प्रसाद" जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, किन्तु वे मुख्यतः ऐतिहासिक नाटककार थे; उनके नाटक से भारतीय संस्कृति के प्रति असीम अनुराग टपकता है। वे अत्यन्त कुशल और साथ २ सफल नाटककार रहे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाँति उन्होंने अनेक साहित्यिक माध्यमों के नए आदर्श उपस्थित किए थे। उनका इतिहास तथा भारतीय सस्कृति का लाना अगाध था, अनुपम-कल्पना, काव्य-सम्पदा और भाव-प्रकाशन शैली थी जो अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

उनकी नाट्यकला के विकास की दृष्टि से हम उन्हें निम्न तीन कालों में रख सकते हैं—१—प्रयोगकाल (१६१५ तथा उससे पूर्व) १—सज्जन (१६१०) २—करुणालय (१६१२) ३—प्रायश्चित (१६१४) ४—राज्यश्री (१६१८) २—मध्यकाल (१६१६ से १६२७ तक) इसमें विशाख (१६२१) "अजातशत्रु" (१६२२) जन्मेजय का नागयज्ञ (१६२३) और कामना (१६२६) सम्मिलित हैं। ३—उत्तरकाल (१६२७ से १६३३ तक) इसमें स्कन्ध गुप्त (१६२८) चन्द्रगुप्त (१६२८) एक घूँट (१६२८) तथा ध्रुवस्वामिनी (१६३३) सम्मिलित हैं। इनमें चार एकाकी नाटक हैं—सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित और एक घूँट। कला की दृष्टि से ये साधारण रचनाएँ हैं।

"प्रसाद" के नाटकों की मुख्य विशेषताएँ उनकी ऐतिहासिक गवेषणा की शक्ति, बौद्धकालीन भारत का सच्चा चित्रण, भारतीय सस्कृति का चित्रण, आदर्श और यथार्थ का समन्वय, मनोवैज्ञानिकता, नाटकीय विधान में पश्चिमी सिद्धान्तों का समावेश भावुकतापूर्ण सवाद, उत्तम वातावरण सृष्टि, मीठे गीत और सुन्दर भाषा हैं। उनके नाटकों में पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व और चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिकता दर्शनीय है। वे साधारण पाठक के लिए न होकर साहित्यिक रुचि के पाठक अथवा दर्शक के लिए हैं। साधारण रगमच पर उनका अभिनय सभव नहीं है। पाश्चात्य शैली के दुखान्त नाटकों में दार्शनिकता की भावना भर कर उन्होंने सन्तोष और शान्ति का मार्ग दिखाया है। साहित्यिक दृष्टि से प्रसाद के नाटक अद्वितीय हैं। कला और शिल्प की दृष्टि से भी इनके नाटक एक ऐसी ऊँचाई पर हैं कि जिस तक पहुँचने के लिए भावी पीढ़ी को श्रम करना पड़ेगा। सक्षेप में ऐतिहासिकता, दार्शिनिकता और कवित्व प्रसाद की तीन विशेषताएँ हैं।

"प्रसाद" के समकालीन नाटककार

"प्रसाद" के समकालीन नाटककारों में सर्वश्री जगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द", पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, हरिकृष्ण "प्रेमी", वेचन शर्मा उग्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', मिश्रबन्धु, सुदर्शन, आदि प्रसिद्ध हैं। "मिलिन्द" जी का "प्रताप प्रतिज्ञा" बड़ा सजीव राष्ट्रीय नाटक है, जिसकी देश प्रेम की भावना मन को स्पर्श ही नहीं करती, उसमें एक आलोड़न भी उत्पन्न करती है। इनके अतिरिक्त आपने "गौतमनन्द" और "समर्पण" नाटकों की सृष्टि की है। नाटककार "मिलिन्द" की गणना निसदेह आधुनिक नाटक साहित्य के उन प्रतिनिधियों में की जा सकती है, जिन्होंने नए युग की नई चेतना को प्रभावित किया है और

जिनकी कृतियाँ देश को नई दिशा में मोड़ने में सफल हुई है। उन्होंने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा और विचार प्रवणता से युग का साथ दिया है। उनकी नाटकीय-साधना ने देश के जगजीवन को स्पर्श किया है। उनकी अनुभूति मानवता की सच्ची अनुभूति है।

प० गोविन्दवल्लभ पन्त कृत "वरमाला" (१६२५) ऐतिहासिक आख्यान पर आधारित "प्रसाद" की भावुक शैली में लिखा सुन्दर रोमांटिक नाटक है। "मिश्रबन्धुओं" का "पूर्वभारत" महाभारत की आदि पर्व से उत्तरा विवाह तक की कथा प्रस्तुत करता है। सुदर्शन कृत "अंजना" पतिव्रता अंजना की प्रेम कथा पर आधारित सब दृष्टियों से सफल नाटक हैं। आपका "आनरेरी मजिस्ट्रेट" एक सफल प्रहसन है। ऐतिहासिक नाटक बड़ी सख्या में लिखे गये हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय सुदर्शन कृत "दयानन्द", वेचन शर्मा 'उग्र' कृत "महात्मा ईसा", "चन्द्रराज भडारी कृत" "सिद्धार्थकुमार" और सम्राट् अशोक, प्रेमचन्द का "कर्बला", बद्रीनाथ भट्ट का "दुर्गावती", लक्ष्मीधर वाजपेयी का "राजकुमार कुन्तल", मिलिन्द जी का "प्रतापप्रतिज्ञा", वियोगी हरि का "प्रबुद्ध यामुन" आदि नाटक हैं। इनमें राष्ट्र की जागृति का स्वर तथा नई आशाएँ निहित हैं।

आधुनिक युग (१६३३-५५)

नवीन युग में सर्वाधिक कार्य करने वाले नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, प० उदयशंकर भट्ट; लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण "प्रेमी" उपेन्द्रनाथ 'अश्क', वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा सद्गुरुशरण अवस्थी, रामनरेश त्रिपाठी और रामवृक्ष बेनीपुरी हैं। एकांकी नाटक भी बड़ी सख्या में लिखे जा रहे हैं। एकांकी के क्षेत्र में डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सेठ गोविन्ददास, उदयशकर भट्ट, विष्णुप्रभाकर, भुवनेश्वरप्रसाद, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, धर्मवीर भारती, प्रेमनारायण टंडन, जयनाथ नलिन, प्रभाकर माचवे, आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

नए नाटककार; उनकी कृतियाँ तथा विशेषताएँ

१—सेठ गोविन्ददास—सेठ गोविन्ददास के "हर्ष" (१६३५) प्रकाश (१६३५); कर्त्तव्य (१६३५) सेवापथ (१६४०) कुलीनता (१६४०) विकास (१६४१) शशिगुप्त (१६४२) दुःख क्यों? (१६४६) कर्ण (१६४६) महत्त्व किसे (१६४७) बड़ा पापी कौन (१६४८) दलितकुसुम, पतितसुमन, हिंसा अहिंसा, संतोष कहाँ, पाकिस्तान, त्याग या ग्रहण, (१६४८) नवरस (१६४८)

सिद्धान्त स्वातत्र्य आदि नाटक तथा "पचभूत" "सप्तरश्मि", अष्टदल, एकादशी, चतुष्पथ आदि एकाकी नाटकों के सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें सभी प्रकार की रचनाएँ हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक। सेठ जी ने नवीन समस्याओं को उठा कर उनका भी निदान प्रस्तुत किया है। उनके पात्र सभी कालों तथा समाज के सभी वर्गों से चुने गए हैं। "कर्ण" पौराणिक नाटक है तो "हर्ष" शशिगुप्त ऐतिहासिक दृष्टि से उत्तम रचनाएँ हैं। "दुःख क्यों ?"; "महत्त्व किसे", बड़ा पापी कौन ? आदि में सामाजिक समस्याओं को उठा कर भारतीय इतिहास, वर्तमान जीवन और समाज के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं "महत्त्व किसे" में देश सेवा के मार्ग को दिखाया गया है। "कुलीनता" में सामाजिक समस्या को प्रस्तुत किया गया है। सेठ जी ने अपनी प्रतिभा काल्पनिक, सामाजिक, ऐतिहासिक सभी क्षेत्रों में दिखाई है।

प्रो० जयनाथ नलिन के शब्दों में, "सेठ जी ने अपने नाटकों में समाज और व्यक्ति की अनेक समस्याएँ ली हैं, पर वे बहुत हल्की हैं···· राम, कृष्ण और कर्ण के चरित्रों में मानव की भावनाएँ ही अधिक भरी हैं " आदर्शवाद कूट-कूट कर भरा है। इनके चित्रण में रसानुभूति और साधारणीकरण वाला भारतीय रस शास्त्र का सिद्धान्त काम करता पाया जाता है। सामाजिक और राष्ट्रीय नाटकों के सभी पात्र आधुनिक जीवन के साधारणतया पाये जाने वाले पात्र हैं " नारी चरित्रों में भी अनेक प्रकार के चरित्र मिलेंगे "शशिगुप्त" में चाणक्य और शशिगुप्त में देश-प्रेम की भावना सर्वोपरि है··· उन्होंने चाहे बहुत गहराई, रगीनी, घुटन, व्यक्ति वैचित्र्य उलझन और रहस्यमय कौतूहल अपने चरित्रों में न भरे हों, पर उनके चरित्रों में जान अवश्य है—लेखक नाटकों का आरम्भ बहुत ही शानदार ढग से करता है। वातावरण उपस्थित करने के लिए अभिनय, वेशभूषा, कमरे, महल या स्थान की सजावट आदि के लिए बहुत विस्तृत रंग सकेत दिये हैं सवाद छोटे पर भाषा चलती नाटकीय प्रचलित भाषा न लिख कर लिखी जाने वाली भाषा की ओर झुकाव अधिक है।"*

२—नाटककार उदयशकर भट्ट—प० उदयशकर भट्ट के "विक्रमादित्य" (१६३३) दाहर अथवा सिंध पतन (१६३४) अम्बा (१६३५) सगर विजय (१६३७) मत्स्यगधा (१६३७) विश्वामित्र (१६३८) कमला (१६३६) राधा (१६४१) अन्तहीन अन्त (१६४२) मुक्ति पथ (१६४४) शक विजय (१६४६)

---

* देखिए प्रो० जयनाथनलिन कृत "हिन्दी नाटककार" पृष्ठ २११।

कालीदास (१९५०) मेघदूत (१९५०) और विक्रमोर्वशी (१९५०) आदि पूरे नाटक तथा अनेक एकांकी नाटकों के सग्रह प्रदान किये हैं। भट्टजी की मुख्य देन ऐतिहासिक नाटक है। "विक्रमादित्य", 'दाहर', 'मुक्ति पथ' और 'शक विजय' सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से सुन्दर रचनाएँ हैं। इतिहास का अध्ययन गम्भीर है। पात्रों में कल्पना द्वारा प्रसून कम हैं। "धार्मिकता, कट्टरता, साम्प्रदायिक जनून, मजहबी पागलपन का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह प्रशसनीय है आपने अपने नाटकों में समाज के उस खोखलेपन पाखण्ड, आडम्बर और दुरभिमान का चित्र खींचा है, जिसके कारण भारतीय राष्ट्र सामाजिक रूप में जर्जर बन रहा है। वे एक ओर तो सस्कृत नाटकों से प्रभावित हैं, और दूसरी ओर "प्रसाद" से—विशेष कर काव्यमय रगीन भाषा लिखने के प्रयास और चरित्र चित्रण में भाषा की उलझन भरी, अलकार प्रधान शैली, स्वगत की भरमार और पद्यों का अरुचिकर समावेश संस्कृत नाटकों की ही अस्वास्थ्यकर देन है। स्वगतों की अस्वभाविक भरमार और लम्बी वक्तृताओं से नाटक भरे पड़े हैं।" + 'क्रान्तिकारी' भट्ट जी का नवीनतम अभिनेय नाटक हैं।

३—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र—प० लक्ष्मीनारायण मिश्र नई शैली नई विचारधारा के समस्या नाटकों के प्रवर्त्तक हैं। आपने कल्पना, भावुकता और अतिरजना का वहिष्कार कर मनोवैज्ञानिक समस्या नाटकों की सृष्टि की है। आपके "समाज के स्तम्भ (अनुवाद); सन्यासी (१९३१) राक्षस का मन्दिर (१९३१) मुक्ति का रहस्य (१९३२) राजयोग (१९३४) सिंदूर की होली (१९३४) आधीरात (१९३७) अशोक (१९३९) गरुड़ध्वज (१९४०) नारद की वीणा (१९४१) गुड़िया का घर (अनुवाद) वत्सराज (१९५०) आदि बुद्धि प्रधान, तर्क पूर्ण समस्या नाटक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने समाज तथा व्यक्ति की विशेषतः सेक्स, समस्याओं को सुलझा कर एक नवीन दिशा की ओर मार्ग दर्शन किया उनका निजी व्यक्तित्व है। स्वगत, अर्धस्वगत, अश्राक, आदि कृत्रिम नाटकीय तत्वों का अथवा भावुकता प्रधान भाषा, कविता आदि का कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। कथोपकथन स्वभाविक जीवन से सम्बन्धित है। केवल २ अकों में ही आप सम्पूर्ण कथानक को संक्षिप्त कर देते हैं। अभिनय तत्व प्रचुरता से पाया जाता है। अपने नवीनतम ऐतिहासिक नाटक "वितस्ता की लहरें" में पुरु-सिकन्दर सग्राम के कथानक को लेकर पुरु के चरित्र का चित्रण अत्यन्त चतुरता से किया है। कथोपकथन में स्वभाविकता एव अद्भुत शक्ति है।

+ वही।

४—श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क"—श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने नाटक तथा एकाकी दोनों ही क्षेत्रों में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है। "जय पराजय" (१९३७) स्वर्ग की झलक (१९३९) कैद (१९४५) उड़ान (१९४५) छठा बेटा (१९४९) आदि मार्ग (१९५०) तथा पैंतरे (१९५४) आदि नाटक तथा "देवताओं की छाया में" "तूफान से पहिले", "चरवाहे" आदि एकांकी नाटकों के संग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं। "जय पराजय" प्राचीन परम्परा का सुन्दर ऐतिहासिक नाटक है, शेष सब नए सामाजिक नाटक हैं। उन्होंने अपने कथानकों तथा स्थितियों को जीवन की यथार्थता एवं विविधता से चुना है और यथार्थवाद उनका मूल स्वर है। देशकाल और अभिनय का ध्यान, सम्वादों की चुस्ती और रंगमच की अनुकूलता आपकी विशेषताएँ हैं। राजपूतों का स्वाभिमान, अपने ही हाथों अपने पाँवों में कुल्हाड़ी मार लेने को गूढ़ता, वंश की मर्यादा के लिए होम कर देने की प्रवृत्ति, महलों में षड्यन्त्र और उसमें दबा घुटा मानव प्रेम—सबका चित्रण "जयपराजय" में कुशलता से हुआ है। "स्वर्ग की झलक" एक सामाजिक व्यंग्य है, जिसमें मध्यवर्गीय परिवार में विवाह की समस्या को सुलझाया गया है। इसमें उन स्त्रियों पर व्यंग्य है जो अंग्रेजी पढ़ लिख कर आधुनिक जीवन के रंग बिरंगे सपने बनाती हैं साथ ही उन युवकों का भी खाका खींचा गया है जो आधुनिका को चुन कर स्वर्ग सुख चाहते हैं। "छठा बेटा" अभिनेय ही नहीं, सुपाठ्य भी है। "आदिमार्ग" में प्रेम और विद्रोह के दो मार्गों पर चलती हुई दो नवीन विचार धाराओं की युवतियों के चित्र हैं। नाटककार 'अश्क' ने समाज की रूढ़ियों की चक्की में पिसते और विद्रोह करते हुए अपने पात्रों के जीवन की पूरी झलक दी है। "अंजोदीदी" हास्यरस का नाटक है, जिसमें अति सस्कृत सभ्य और घर को टिपटाप रखने वाली बहिन तथा उसके फक्कड़ भाई के परस्पर विरोधी चित्र उपस्थित किए गए हैं। "भंवर" मनोवैज्ञानिक नाटक है जो एक नवीन रोशनी की युवती की घुटन, उदासी, और उच्च-वर्ग के खोखले जीवन को प्रकट करता है। "कैद और उड़ान" के सम्बन्ध में एक आलोचक ने सत्य ही लिखा है—'कैद और उड़ान" पढ़ कर हमें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे एकाएक हिन्दी की नाट्यकला इन नाटकों में अपने उच्च शिखर पर पहुँच गई है, जैसे हिन्दी नाटक अब सदा के लिए द्विजेन्द्रलाल राय की कृत्रिमता से निकल कर समाज के जीते जागते पात्रों तक आ पहुँचा है, जिंदा होकर हमारी आत्माओं को झँझोड़ने लगा है, जीवन की ऊँचाइयों और नीचाइयों को नापने लगा है। "अश्क" जी के एकाकी नाटक मानव जीवन, समाज, विवाह, आधुनिक शिक्षा, के चुभते चोखते चित्र हैं, जिनमें हास्य व्यंग्य

प्रचुरता से है। एकांकियों में संकलन त्रय का बहुत अच्छा निर्वाह हुआ है और रंगमंच तथा रेडियो पर सफलता पूर्वक अभिनय किये जा चुके हैं। चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का प्रदर्शन है। गतिशीलता एव आकस्मिकता पर उन्हें पूर्ण अधिकार है। सभी नाटकों का अन्त प्रभावपूर्ण है। "चरवाहे" के एकांकियों में सकेतात्मकता का गुण विशेष उल्लेखनीय है।

५—श्रीहरिकृष्ण प्रेमी—कविवर श्री हरिकृष्ण "प्रेमी" के 'स्वर्णविहान" (पद्य नाटिका) पाताल विजय; रक्षाबन्धन (१६३४) शिवसाधना (१६३७) प्रतिशोध (१६३७) आहुति (१६४६) स्वप्नभग (१६४०) छाया (१६४१) बन्धन (१६४१) मंदिर (१६४२) मित्र (१६४५) विषपान (११४५) उद्धार (१६४६) शपथ (१६५१) आदि चौदह मौलिक ऐतिहासिक-सामाजिक नाटक प्रदर्शित हो चुके हैं। गांधी युग के राष्ट्रीय आन्दोलन को आपने अप्रत्यक्ष रूप से अपने ऐतिहासिक नाटकों में व्यक्त किए हैं, राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता का परिचय दिया है। इनके नाटकों की पृष्ठभूमि मुगल साम्राज्य है। "स्वर्णविहान" में व्यक्त राष्ट्रीय आन्दोलन को विचारधारा के कारण सरकार द्वारा जब्त हुई थी। इतिहास और कल्पना का मजुल सहयोग प्रदान कर उन्होंने देश प्रेम का गौरव पूर्ण स्तर ऊँचा किया है। उनके नाटकों में एक ओर समस्त राष्ट्र की बेबसी की झाँकी है, तो दूसरी ओर गुलामी हटाने के लिए प्रयत्न और भारतीय राष्ट्र की एकता। 'शिवा साधना' में प्रेमी जी ने राष्ट्रीय उदबोधन का कार्य जीजाबाई और शिवाजी द्वारा कराया है। ऐतिहासिक पात्रों में उन्होंने जो रग भरा है उससे वे सजीव और सुन्दर हो उठे हैं। प्रेमी जी के नाटक ओजपूर्ण, चरित्र चित्रण गभीर, और विचार नए हैं। उच्चकोटि के राष्ट्रीय विचारों के साहित्य और अभिनेयता के गुण इनमें सर्वत्र पाये जाते हैं।

आपके "छाया" और "बन्धन" सामाजिक समस्या प्रधान, समाज और मानव चरित्रों का उद्घाटन करने वाले नवीनतम नाटक हैं। ये हमारे जीवन के जीते जागते यथार्थवादी चित्र हैं प्रो० नलिन के शब्दों में, "प्रेमी ने "छाया" में एक प्रसिद्ध कवि की समाज और राष्ट्र द्वारा उपेक्षित स्थिति का मर्म भेदी चित्र उपस्थित किया है। समाज और व्यक्ति के जीवन-विकास के घुनशोषण-का इसमें नंगा रूप है। व्यक्ति के अन्तर की बेबसी, जीवन के अभाव और बाहरी पाखड एव कृत्रिम रूप का इसमें हाहाकार करता हुआ चित्र है। छाया मानव के आर्थिक और सामाजिक दोनों प्रकार के जीवन के उत्थान की चेष्टा है। छाया में आर्थिक शोषण और विषमता का जो घातक स्वरूप व्यक्ति के जीवन का रक्त

चूसते हुए दिखाया गया है, "बन्धन" में वह और भी व्यापक बन कर आया है, यह सामाजिक अभिशाप बनकर उपस्थित हुआ है। मिल मालिक और मजदूर का संघर्ष इस नाटक की कथावस्तु है। समस्या का हल गांधीवाद से किया गया है।"

"प्रेमी" जी की दृष्टि व्यापक है। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ आधुनिक युग के बड़े सुन्दर चित्र आप प्रस्तुत कर सके हैं।

६—आचार्य चतुरसेन शास्त्री:—श्री चतुरसेन शास्त्री का "उत्सर्ग", "अमर सिंह", "अजीतसिंह", "गान्धारी" "छत्रसाल", "पगध्वनि", 'राजसिंह"; "श्रीराम" आदि बड़े और "पाँच एकाकी" संग्रह प्रकाशित हुए हैं। शास्त्री जी ने राजपूती जीवन संघर्षों तथा विध्वंस के सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। भावव्यक्त करने के लिए आपके पास बड़ी सशक्त भाषा और भारतीय इतिहास का प्रथम श्रेणी का ज्ञान है। "अजीतसिंह" में जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र अजीतसिंह के बालिग होने के समय को नाटक का आरंभ स्थल बनाया है। औरंगजेब के पुत्र अकबर की पुत्री रज़िया से, जो दुर्गादास के संरक्षण में अजीतसिंह का प्रेम हो जाता है जो नाटक की आधारशिला है। अजीत में प्रेम और कर्त्तव्य, प्रेम और जातीयता का उत्तम संघर्ष उपस्थित किया है। उसमें प्रेम की सबलता है पर वह कर्त्तव्य और जातीयता को भी नहीं त्याग सकता। इसी प्रकार अन्य नाटक विशेषतः "उत्सर्ग" अभिनेय और ओजस्वी हैं।

७—श्री वृन्दावनलाल वर्मा:—श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने उपन्यास के साथ नाटक-साहित्य के श्रीवर्द्धन में प्रचुर कार्य किया है। सन् १६४३ से ५५ तक १६-१७ नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें "राखी की लाज" (१६४३) फूलों की बोली (१६४७) बाँस की फाँस (१६४७) काश्मीर का काँटा (१६४८) झाँसी की रानी (१६४८) हंस मयूर (१६४६) पायल (१६४६) मंगलसूत्र (१६४६) खिलौने की खोज (१६५०) पूर्व की ओर (१६५०) बीरबल (१६५०) सगुन (एकाकी) जहाँदारशाह (१६५०) लो भाई पंचो लो (१६४८) पीले हाथ (१६१८) आदि विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनमें ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार की सफल रचनाएँ हैं। "पूर्व की ओर" अपनी ऐतिहासिकता की दृष्टि से अत्यन्त सफल नाटक है। "दृश्य विधान सरल और सीधा है। भाषा की उपयुक्तता और गतिशीलता, संवादों की संक्षिप्तता और औचित्य, तथा अभिनयशीलता इनकी विशेषताएँ हैं।"

८—श्री पृथ्वीनाथ शर्मा:—श्री पृथ्वीनाथ शर्मा ने एकाकियों के अतिरिक्त "अपराधी", "दुविधा", "उर्मिला" आदि कई नाटक लिखे हैं। प्रथम नाटकों

में समाज की समस्याएँ ली गई हैं। पौराणिक नाटक "उर्मिला" रामायण के चरित्रों पर चित्रित हैं। प्रायः तीन तीन अंकों में ही आप समस्त कथावस्तु सजा देते हैं नई टेकनीक का प्रयोग "अपराधी" में किया गया था। इसलिए नाटक के इतिहास में उसका विशेष महत्व है। चरित्र-चित्रण और टेकनीक की दृष्टि से शर्मा जी विशेष सफल रहे हैं।

९—श्री जगदीशचन्द्र माथुर :—श्री जगदीशचन्द्र माथुर के "भोर का तारा" और "कोणार्क" प्रसिद्ध हैं। "भोरका तारा" पाँच अभिनय योग्य एकांकी नाटकों का संग्रह है। "कोणार्क" में रंगमंच निर्देश सचित्र के हैं, परिशिष्ट में निर्देशक और अभिनेताओं के लिए संकेत हैं तथा उपक्रम एवं उपसंहार का प्रयोग है, जिसमें हम संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना और पाश्चात्य नाटकों के प्रोलौग और एपिलौग एवं कोरस की झलक पाते हैं। डा० सत्येन्द्र के शब्दों में, "इस नाटक की करुण तथा विजय कथा में एक ओर सौन्दर्य और प्रेम की प्रेरणा का प्रवाह है, दूसरी ओर वात्सल्य का संचार, तीसरी ओर शिल्प और सौन्दर्य का अभिनिवेश, कला और पुरुषार्थ का संयोग तथा जनशक्ति की राज-नीति का प्रदर्शन। धर्मपद ने चालुक्य सेना को इतने समय तक रोका कि प्रजा-वत्सल राजा नरसिंह देश का शत्रु चालुक्य उसके नीचे स्वयं दब कर नष्ट हो गया। कलाकारों ने कला भी प्रस्तुत की और प्रजावत्सल राजा को निष्कंटक भी किया। उनकी कला ही महान् नहीं थी, उनका बलिदान भी महान् था। इस समस्त वस्तु को ओजस्वी ढंग से नाट्यकार ने प्रस्तुत किया है। यह नाटक सर्वथा अभिनेय और अभिनन्दनीय है। एक भी स्त्री पात्र न होने पर भी उसमें नारी की महत्ता, उसके प्रेम और मातृत्व का महान् प्रतिपादन भी उसमें विद्य-मान है।"

१०—श्री रामवृक्ष वेनीपुरी :—सर्वतोप्रतिभा के धनी श्री रामवृक्षवेनीपुरी अपनी सजीव भाषा शैली के लिए गद्यकार के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। नाट्यकार के रूप में भी आपने पर्याप्त योगदान दिया है। वेनी-पुरी जी के १—"अम्बपाली" २—"शकुन्तला" ३—"अमर ज्योति" ४—खून की याद ५—"गाँव का देवता" ६—"तथागत" ७—"नया समाज", ८—विजेता ९—"सीता की माँ"—आदि सुन्दर नाटक प्रकाशित हुए हैं। नये विचार, सशक्त भाषा शैली और रंगमंच पर अभिनय हो सकने के सब गुण इनमें मौजूद हैं।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के "रेखा" और "अशोक" प्रसाद जी की भाव प्रधान शैली से प्रभावित नाटक हैं। यद्यपि इनकी कथावस्तु सांस्कृतिक

गम्भीरता से परिपूर्ण है, किन्तु उनमें कोई गहन जीवन विश्लेषण प्राप्त नहीं होता।

११—प० रामनरेश त्रिपाठी—प० रामनरेश त्रिपाठी ने मौलिक नाटकों की कमी देखकर नाटक क्षेत्र की श्रीवृद्धि के लिए कदम बढाया था। १९३४ में आपका "जयन्त" नामक राष्ट्रीय नवनिर्माण सम्बन्धी रंगमंचीय नाटक प्रकाशित हुआ। उसकी पर्य्याप्त सराहना भी हुई। तत्पश्चात् "प्रेमलोक" (१९३५), बफाती चाचा; (१९५४) अजनबी, तथा "पैसा परमेश्वर (१९५४) नामक नवीन शैली के सामाजिक समस्या नाटक लिखे हैं। बच्चों के लिए छोटे छोटे उपदेश प्रधान नैतिक नाटकों का एक संग्रह "पेखन" पर्य्याप्त लोकप्रिय हुआ है। "बा और बापू" (१९५२) आपकी नवीनतम कृति है। ऐतिहासिक पुरुषों को, विशेषकर जिन पर हमारे समाज की धार्मिक श्रद्धा है, नाटक का विषय बनाना और उस पर कल्पना की रंगीनी लगाना, त्रिपाठी जी को कभी प्रिय नहीं रहा। उन्होंने सदा वर्त्तमान को सदा आधुनिक समस्याओं को अपने नाटकों का आधार बनाया और सदा नया विषय चुना है। खण्ड काव्यों की कथायें भी सब नव-कल्पित हैं। "पेखन" के पश्चात् उससे भी छोटी आयु के लिए कुछ नैतिक एकांकी लिखे हैं। नाटकों में उनका उद्देश्य सदा भारतीय संस्कृति के प्रदर्शन का रहा है "बा और बापू" के एकांकी नाटकों में "नानी नानी" एवं "कुणाल" को छोड़कर शेष "सीज़न डल है" (प्रहसन) "समानाधिकार"; "बा और बापू" आदि नाटक वर्तमान काल के ही हैं। प्रत्येक शैली और प्रत्येक रस के भाव प्रदर्शन में त्रिपाठी जी को सफलता प्राप्त हुई है। "पैसा परमेश्वर" हमारे आर्थिक मूल्यों पर प्रहार करता है। इसमें पैसे से उत्पन्न बुराइयों का बड़े ही व्यंग्यात्मक रूप में भंडा-फोड़ किया गया है। पैसे का भारतीय संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, उसका सफल दिग्दर्शन कराया गया है। विषय नाटक रूप में सर्वथा नवीन है। यह व्यंग्यात्मक शैली का नाटक है और अधिकांश संवादात्मक है। "बफाती चाचा" देहाती जीवन से सम्बन्धित प्राचीन और नवीन विचार धाराओं के संघर्ष से परिपूर्ण नाटक है। गाँव के समाज में मन्द गति से प्रवेश करती हुई क्रान्ति का आभास उससे मिलता है। उसमें गाँवों के हिन्दू-मुसलमानों के उस समय के जीवन का चित्र मिलता है, जब हमारे सामने हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रश्न ही नहीं था। उनका यह जीवन आधुनिक जीवन की अपेक्षा सुखी था। इस नाटक में गान बहुत कम आने पाये हैं। त्रिपाठी जी नाटक में गाने देने के पक्ष में नहीं हैं। जहाँ गाने देना अनिवार्य हो, जैसे विवाह, कथा, भजन पूजन और साहित्य-समारोह के अवसरों पर गाने दिये

हैं भाषा मुख्यतः हिन्दुस्तानी है। कठिन भाषा से जो कृत्रिमता उत्पन्न होती है, त्रिपाठी जी के नाटक उससे मुक्त हैं। "कन्या का तपोवन" नाटक में स्वसुराल जाकर कन्या किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकती है, इसका दिग्दर्शन है। भारतीय सस्कृति से प्रदर्शन में त्रिपाठी जी सफल रहे हैं।

१२—डा० सत्येन्द्र :—प्रसिद्ध आलोचक डा० सत्येन्द्र ने एकांकियों के अतिरिक्त "मुक्तियज्ञ" और "कुणाल" आदि बड़े नाटक लिखे हैं। "मुक्तियज्ञ" छत्रसाल कालीन ऐतिहासिक नाटक हैं, वातावरण निर्माण इसकी विशेषता है। भाषा ओजस्वी एव प्रभावपूर्ण हैं। सगीत सुन्दर है। अनेक स्थलों पर नाट्यकार ने अपने गभीर विचार भी रखे हैं। नाटक अभिनय के योग्य साहित्यिक हैं।

१३—पांडेय वेचनशर्मा "उग्र":—पाँडेय वेचनशर्मा "उग्र" का "महात्मा ईषा" (१६२२) चरित्र प्रधान नाटक है जो साहित्यिक और रगमचीय दोनों ही दृष्टियों से सफल है। इसमें साम्प्रदायिक एकता प्रधान-धारा है। "चुम्बन" में गरीबी और अमीरी की समस्याएँ उठाई गई हैं। मैना नायक एक किसान की पत्नी रुपये के लालच में दौलत महाजन के साथ भागती है और समझती है उसे प्यार मिला। थोड़े दिन पश्चात् वह उसे घर से निकाल देता है मैना मर जाती है। कथानक अनेक सम्भावनाओं से परिपूर्ण है। अमीरों के ऐश्वर्य एव शोषण का चित्रण बड़ी कटुता से हुआ है। "इन्द्रधनुष" की प्रत्येक रचना गद्यकाव्य, नाटक, प्रहसन और सजीवता से परिपूर्ण हैं।

१४—प्रेमचन्द :—उपन्यासकार प्रेमचन्द जी के तीन नाटक मिलते हैं "संग्राम", "कर्वला", और "प्रेम की वेदी"। "संग्राम" में ग्रामीण तथा सभ्यसमाज का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उसमें जमीदारों की लोलुपता, सज्ज-नता का वाह्य-प्रदर्शन निरकुशता, पुलिस का भ्रष्टाचार, थानेदारों का निस्टेबिलों, सिपाहियों के अत्याचार, लूट खसोट, घूस वेगार, लात और घूँसे; किसानों की वेबसी, घोर निर्धनता, गुलामी, अन्याय दुःख और पीड़ा, साधुओं का मायाचार पाखण्ड, धूर्तता और आचरण हीनता; स्त्रियों में फैली हुई कुत्सिलता और धीरे २ ग्रामों में आती हुई जागृति, राष्ट्रीय भावना, अधिकारों की भावना, प्राचीन आदर्शों की रक्षा आदि को प्रकट किया है। "प्रेम की वेदी" (एकांकी) में विवाह समस्या का विवेचन है। साथ ही ईसाई तथा हिन्दू धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन, नारी की दयनीय स्थिति, पुरुषों की मत्सरावृत्ति, दाम्पत्य जीवन की

विषमताएँ, धर्म और समाज आदि का विवेचन है। "कर्बला" (१९२४) में मुसलमानों की संस्कृति एवं धार्मिक युद्धों को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वीर, भक्ति, और करुण रसों, मर्यादा और बलिदान, इस्लामी इतिहास का मर्मस्पर्शी चित्रण है।

१५—पं० रूपनारायण पाण्डेय:—सुधा सम्पादक पं० रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के कुछ नाटकों का अनुवाद कर नए आदर्श प्रस्तुत किये हैं। "बुद्ध-चरित", "पतिव्रता", "आहुति अथवा जयपाल", "कृष्णाकुमारी" आदि बंगला के साहित्य से अनुवादित सफल नाटक हैं। अनुवाद इतने सफल हुए हैं कि समाज, भाषा, शैली सब पर हिन्दीपन और स्वाभाविक की छाप लगी हुई है। "बुद्ध चरित" में आत्मचिन्तन और वैराग्य, शिक्षा और उपदेश, पवित्रता और शान्ति का संदेश है "पतिव्रता" बंगला के गिरीशचन्द्र घोष के सामाजिक नाटक का अनुवाद है जिसमें भले आदमी का पथभ्रष्ट होना, पतिव्रता स्त्री के प्रभाव से सन्मार्ग पर आना बड़ी खूबी से चित्रित किया गया है। "कृष्णा-कुमारी" माइकेल मधुसूदनदत्त के सर्वोत्तम नाटक का उत्तम अनुवाद है। इसके अतिरिक्त आपने "खाजहाँ, "पद्मनी", "प्रायश्चित", "मूर्खमण्डली"- और "सम्राट अशोक" आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं जो पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। पाण्डेय जी ने द्विजेन्द्रलालराय के "अहल्या", उसपार, दुर्गादास, नूरजहाँ; भारतरमणी, भीष्म, शाहजहाँ, सीता; और "सूम के घर धूम" के सफल अनु-वाद किये हैं।

१६—सुदर्शन:—सुदर्शन जी "अंजना" लिख कर पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। आपका "अनरेरी मजिस्ट्रेट" सुन्दर प्रहसन है। कुछ नए नाटक लेकर आपने नाटक के क्षेत्र में अपनी रुचि प्रदर्शित की है। ये हैं दयानन्द "धूप छाँह" भाग्यचक्र और "सिकन्दर"। "भाग्यचक्र" में मानवों में व्याप्त पुत्र-प्रेम का आश्रय लिया गया है। सिनेमा के डाइरेक्शन और संवाद लेखन में संलग्न होने के कारण सुदर्शन जी के कथोपकथन बड़े सजीव होते हैं। "धूप छाँह" (१९४०) की फिल्म बन चुकी है। इनमें साहित्य, चरित्र की गंभीरता और अभिनय-शीलता का अच्छा सामंजस्य रहता है।

१७—पं० सद्‌गुरुशरण अवस्थी:—पं० सद्‌गुरुशरण अवस्थी ने "नाटक और नायक (६ भाग) तथा "मझली महारानी","मुद्रिका" इत्यादि नाटक प्रका-शित हुए हैं। इनमें एकांकी नाटकों की संख्या अधिक है, जिनमें प्रायः पौराणिक चरित्रों को नवीन विचारधारा एवं आधुनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

"मंझली माहरानी" में अवस्थी जी ने कैकेयी का चरित्र चित्रण सर्वथा नवीन ढग से किया है। उसमें दिखाया गया है कि कैकेयी ने जो कुछ भी किया, वह केवल कि उसे आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता थी, व्यक्तिगत सुख से वह परे थी। '-नाटक और नायक" के एकांकियों में वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को लेकर आधुनिक युग के विचार, तर्क और मान्यताओं पर नई दृष्टि से देखने का सफल प्रयत्न किया गया है। अवस्थी जी के विचारक और तत्त्वचिन्तक का रूप अधिक और रगमञ्च का कम ध्यान है। भाषा में दुरूहता है।

१८—श्री सीताराम चतुर्वेदी :—श्री सीताराम चतुर्वेदी नाटक जगत् में नए होकर भी चिरपरिचित से हो गए हैं। सुन्दर वक्ता होने के अतिरिक्त आपने "अजन्ता"; "अनारकली"; "देवता"; "शवरी"; "सिद्धार्थ"; और "सेनापति पुष्यमित्र" नामक सफल रगमंचीय ऐतिहासिक नाटकों की सृष्टि की है। चतुर्वेदी जी का प्रिय विषय नाटक है और आपकी विशेष रुचि संगीत और अभिनय कला की ओर है। आपने '-अभिनय नाट्यशास्त्र" की रचना की है। "गौतमबुद्ध (नृत्य नाट्य) आपकी एक उत्कृष्ट रचना है।

१६—पं० गोविन्दवल्लभ पंत :—प० गोविन्दवल्लभ पत का नाटक निर्माण कार्य द्रुतगति से चल रहा है। १—"अगूर की बेटी" १—'अन्तःपुर का छिद्र' के पश्चात् आपके और कई सुन्दर नाटक प्रकाशित हुए हैं जैसे ३—'ययाति" ४—"राजमुकुट" ५—"सुहाग विन्दी" इत्यादि।

श्री मोहनलाल महतो वियोगी कृत नये नाटक "अफज़लवध", "कसाई"; "दांडी यात्रा" और "वे दिन" उल्लेखनीय हैं। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का "ज्योत्सना" (नाट्यरूपक) कल्पना प्रधान काव्य मय नाटक है। श्री मैथिलीशरण गुप्त के "चन्द्रहास" और "तिलोत्तमा" में भी कवि का जीवन-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है।

देशी विदेशी नाटकों के अनुवाद

इस क्षेत्र में द्रुतगति से कार्य होता रहा है। संस्कृत, बंगला, उर्दू, अंग्रेज़ी सभी भाषाओं से नाटकों के अनुवाद हुए हैं। श्री रूपनारायण पाण्डेय, श्री सूर्य नारायण दीक्षित श्री रामचन्द्रवर्मा, श्री हरदयालुसिंह, सीताराम चतुर्वेदी, धन्य कुमार जैन, लाला सीताराम, जैनेन्द्रकुमार, रामनाथ 'सुमन' प्रेमचन्द, श्री ललिता

प्रसाद शुक्ल, मगलदेव शास्त्री आदि अनुवादकों ने अनेक नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये हैं।

लाला सीताराम ने शेक्सपीयर के नाटकों को हिन्दी में प्रस्तुत कर बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। आपके अनुवादों में "अपनी अपनी रुचि", औथेलो, जगल में मगल, "जूलियस सीज़र", डेनमार्क का राजकुमार, प्रेम कसौटी"; बगुलाभगत", भूल भुलय्या, मनमोहन का जाल", मैकवैथ", राजा लियर"; "राजा रिचर्ड द्वितीय", राजा हेनरी पचम", स्म्बेलीन", आदि विशेष उल्लेखनीय अनुवाद हैं। आपकी प्राचीन नाटक "मणिमाला" में भवभूति के "महावीर चरित्र", "उत्तर रामचरित्र", और "मालती माधव" के अनुवाद हैं। कालीदास के "मालविकाग्निमित्र" शूद्रक के "मृच्छकटिक और श्री हर्षदेव के "नागानद" नाटकों का सुन्दर गद्य पद्यमय अनुवाद है। ऐसे युग में जब हिन्दी उत्तरोत्तर विकसित हो रही थी, अंग्रेज़ी के उच्चकोटि के नाटकों का अनुवाद हिन्दी भाषा में न होना बड़ी लज्जा की बात थी। अतः उन्होंने हिन्दी और सस्कृत दोनों से अनुवाद कर हिन्दी भाषा भाषी पाठकों का ज्ञानवर्द्धन किया। बाबू गुलाबराय के शब्दों में हम कह सकते हैं, "इन अनुवादों में भाषा मूल भावों की रक्षा करती हुई दुरूह नहीं होने पाई है। वह साधारण जनता के हृदय तक पहुँचने की क्षमता रखती है। लालाजी की भाषा प्रसाद गुण मडित व्रज भाषा है। उसमें यथा स्थान माधुर्य और ओज दोनों ही गुण मिलते हैं 'हम यह नहीं कहते कि इन अनुवादों में शिथिल अङ्ग नहीं हैं और न यही कहते हैं कि ये अनुवाद सब अच्छे हैं, किन्तु ये बड़े सरल और सुन्दर अनुवाद हैं।"

प्रो० रामकृष्ण "शिलिमुख" ने औलिवरगोल्ड स्मिथ She Stoops to Conquer का अनुवाद "ह. हः ह." प्रस्तुत किया है। श्री जैनेन्द्रकुमार ने टालसटाय के कई नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए हैं जैसे "पाप और प्रकाश" श्री रामनाथ सुमन ने टालसटाय के एक नाटक का अनुवाद "बालकों का विवेक" नाम से किया है। गल्सवर्दी के कई नाटक हिन्दी में आ गये हैं जैसे— प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल कृत "घोखाघड़ी", प्रेमचन्द द्वारा अनुवादित "हड़ताल" (Strike) लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा इब्सन के Dolls House का अनुवाद "गुड़िया का घर", डा० मगलदेव शास्त्री का लेसिंग के "मिना" और "नातन", आस्कर वाइल्ड का "प्रेम की पराकाष्ठा" उल्लेखनीय अनुवाद हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने मौलियर के अनेक नाटकों को हिन्दी में लाने का सराहनीय कार्य किया है। जैसे—"मार मार कर हकीम", "आँखों में धूल";

"नाक में दम"; "साहब बहादुर" और "लाल बुझक्कड़" आदि। मूल नाट्यकार की भावनाओं को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर सके हैं।

गुजराती से कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के कई नाटकों के अनुवाद हिन्दी में आ चुके हैं। जैसे "दो फक्कड़" (अनुवादक श्री अमृतलाल नागर); ध्रुवस्वामिनी देही; ब्रह्मचर्य आश्रम; शम्बर कन्या आदि। श्रीकृष्णलाल श्रीधरणी का "बरगद" सुन्दर रचनाएँ हैं। राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित कालीदास के "शकुन्तला" नाटक का भी उल्लेख आवश्यक है। रूपनारायण पाण्डेय ने द्विजेन्द्रलाल राय के बंगला नाटकों के जो अनुवाद किये हैं, उनका उल्लेख हो चुका है। द्विजेन्द्र के कुछ नाटकों को हिन्दी में लाने में श्री सूर्यनारायण दीक्षित और श्री रामचन्द्र वर्मा ने भी यथेष्ट कार्य किया है। वर्मा जी ने "महाराणा प्रताप" और "मेवाड़ पतन" के अनुवाद किये। गिरीशचन्द्र घोष के "शिवाजी"; जितेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के "परिचय"; भट्टनारायण के "वेणी संहार"; इम्तियाज़अली के "अनारकली" के भी अनुवाद हुए हैं। श्री हरदयालुसिंह के भास के "भास के तीन नाटक"; "भास ग्रन्थावली"; "प्रतिज्ञा यौगन्धरायण"; "मध्यम व्यायोग"; "स्वप्नवासवदत्ता" आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर के कई नाटकों के अनुवाद हिन्दी में आये हैं। श्री धन्यकुमार जैन ने "तपती और स्वर्गीय प्रहसन"; "चित्रांगदा और लक्ष्मी की परीक्षा"; "विसर्जन" तथा श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला ने "नटी की पूजा" के नाम से अनुवाद किये हैं। रविबाबू के अन्य हिन्दी अनुवादित नाटक इस प्रकार हैं—"अचलायतन"; "डाकघर"; बाँसुरी, काल की यात्रा, और "कर्ण-कुन्ती संवाद"; मालिनी; "राजरानी" आदि।

श्री गंगाधर इन्दूर कर ने हर्ष के "दमयन्ती स्वयंवर"; "नागानन्द"; "प्रियदर्शिका"; "रत्नावली" आदि नाटक प्रस्तुत किये हैं। माइकेल मधुसूदन-दत्त के "कृष्णाकुमारी", लालचन्द विस्मिल का "आहुति"; लीलावती मुंशी का "कुमारदेव" वालीबोस का "सेवक"; वेंकटेश्वर राव का "रानी रुद्रमा"; धन्य-कुमार जैन के शरतचन्द्र के "रमा"; "षोड़सी" और शौकतथानवी का "सुनी सुनाई" हिन्दी में आ चुके हैं। हेनरिक इब्सन के "खिलौना घर"; "देश भर का दुश्मन"; "भूतों की छाया" भी उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटक साहित्य अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों द्वारा समृद्ध हो रहा है किन्तु राष्ट्रभाषा होने के नाते अनुवाद का यह कार्य कम है। आव-

श्यकता है कि अंग्रेजी के अन्य प्रख्यात नाटककार जैसे बरनार्डशा, बेरी, सिंज, वाइल्ड, माघम, और गाल्सवर्दी के अन्य नाटकों को हिन्दी में लाया जाय। प्रान्तीय भाषाओं से भी नई चीजें आनी चाहिए। उर्दू में इस्मत चगताई और राजिन्दरसिंह वेदी के कुछ नाटक बड़े प्रभावशाली हैं। कृष्णचन्द का "सराय के बाहर" हिन्दी में आ चुका है। उर्दू से हमें और नाटक लेकर हिन्दी नाट्य-साहित्य की श्रीवृद्धि करनी चाहिए।

हिन्दी एकांकी नाटक का विकास

आधुनिक युग में अवकाश की न्यूनता, मानव-जीवन के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए द्वन्द्व, निरन्तर व्यस्तता, तीव्रता, अशान्ति, कार्य-बाहुल्य के कारण एकांकी नाटकों का जन्म हुआ है। प्रथम महायुद्ध के कारण जनता में तन्मयता का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हुआ। गंभीर तथा लम्बे नाटकों, बड़े-बड़े उपन्यासों तथा बारह सर्गों के महाकाव्यों से कुछ अरुचि हुई। ऐसे छोटे-छोटे साहित्यिक माध्यमों का जन्म हुआ जो थोड़े से समय में व्यस्त और थके हुए मानव को मनोरंजन दे सके। अतः क्रियाशील मस्तिष्कों ने लघु कथा (Short Story) खण्डकाव्य तथा एकांकियों को जन्म दिया। एकांकियों के अनेक प्रकारों का जन्म हुआ, जिनमें रेडियो प्ले, फीचर, झाँकियाँ, इत्यादि भी सम्मिलित हैं। नई चीज के प्रति स्वभावतः जनता में विशेष अभिरुचि होती है। अतः कुछ आवश्यकता, कुछ अनुकरण तथा नवीन साहित्यिक माध्यम के आकर्षण के कारण एकांकी साहित्य हिन्दी में द्रुतगति से उन्नत होता गया। जनता तथा स्कूलों और विश्वविद्यालयों का इसे विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। स्कूल और कालेजों में अभिनय-योग्य एकांकियों की निरन्तर माँग आने लगी। एकांकी सभ्य-शिक्षित वर्ग के सांस्कृतिक मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया। हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि रेडियो के प्रचार ने एकांकियों को विशेष प्रोत्साहन दिया है।

यों तो संस्कृत साहित्य में आधुनिक एकांकी की तरह के अनेक रूपक उपलब्ध हैं, किन्तु हिन्दी एकांकी अंग्रेजी एकांकी के अनुकरण पर प्रचलित और परिष्कृत हुआ है। हिन्दी एकांकी की टेकनीक पर अंग्रेजी टेकनीक का प्रत्यक्ष प्रभाव है। सिंज, बर्नार्ड शा, ओनील, गाल्सवर्दी तथा इब्सन आदि पाश्चात्य एकांकीकारों का प्रभाव हिन्दी एकांकी साहित्य पर स्पष्ट है। हिन्दी एकांकीकारों में कुछ तो ऐसे हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध पाश्चात्य एकांकीकारों से है। कुछ ऐसे हैं, जिन्होंने भाव और शैली मात्र में अंग्रेजी का अनुकरण किया है। कुछ हिन्दी एकांकीकारों ने अंग्रेजी टेकनीक का बड़ी सफलता पूर्वक निर्वाह किया है हमारे जिन एकांकीकार पर सीधा पाश्चात्य प्रभाव पड़ा है, वे श्री भुवनेश्वर

प्रसाद हैं। भुवनेश्वर का "कारवाँ" हिन्दी में एक नये मार्ग का द्योतक था। इनकी शैली तथा विचार-पद्धति पर बर्नार्ड शा का प्रभाव है। उन्हीं की भाँति आपने समस्या नाटक लिखे हैं। इनमें समाज की पुरानी रूढ़ियों तथा जीर्णशीर्ण पद्धति की तीखी आलोचना है। "समस्या" शब्द का अर्थ भुवनेश्वर ने बड़ा व्यापक लिया है।

हिन्दी एकांकी की विकास-अवस्थाएँ

प्रयोगकालीन अवस्था—इसका प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है। जैसा अन्य क्षेत्रों में, भारतेन्दुजी ने हिन्दी एकांकी का सूत्रपात किया था। भारतेन्दु ने पारसी स्टेज से प्रभावित सस्ते मानसिक हीनता और पतन करने वाले नाटकों को हटाकर जन-रुचि का परिष्कार प्रारम्भ किया था वे सस्कृत के आदर्श लेकर मौलिक प्रतिभा के स्पर्श से साहित्यिक एकांकियों की रचना कर सके थे। जहाँ उन्होंने कई संस्कृत और बंगला नाटकों के अनुवाद किये, वहाँ एकांकी के क्षेत्र में प्रहसन, ओपरा, व्यंग्य, गीतिरूपक, नाट्यरासक, भाण इत्यादि प्रकारों के उदाहरण उपस्थित किये। अनुवादित एकांकियों में आपका "भारत जननी" (ओपेरा), "धनंजय-विजय", "पाखण्ड-विडम्बना", मौलिक एकांकियों में "प्रेमयोगिनी", "भारत-दुर्दशा", "नीलदेवी" और "माधुरी" तथा प्रहसनों में "अन्धेर नगरी", "विषस्यविषमौषधम्", "वैदिकी हिंसा" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना शैली में संस्कृत नाट्यशास्त्रों के सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है। इस काल के अन्य एकांकीकारों में पं० बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, पं० प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्री निवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी, राधाकृष्णदास, देवकीनन्दन त्रिपाठी, बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन", शालिग्राम वैश्य, विद्धीलाल मिश्र, कार्त्तिकप्रसाद, श्रीशरण, जैनेन्द्रकिशोर, बलदेव, दामोदर शास्त्री, अनन्तराम पाण्डे, खगबहादुर मल्ल, श्री गोविन्द इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इनसे हिन्दी एकांकी नाटकों की एक परम्परा मिल जाती है।

द्विवेदी युग

इस युग में समाज सुधार की प्रवृत्ति प्रमुख रही। इस युग के कुछ एकांकीकारों ने समाज की त्रुटियों को तीखे व्यंग्य से एकांकियों में प्रस्तुत किया। पुरानी रूढियों के विरुद्ध एक प्रकार की बौद्धिक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई और एक व्यावहारिक आदर्शवाद जनता के सम्मुख उपस्थित किया गया। जिन सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण इन एकांकियों में हुआ, उनमें बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह अछूतोद्धार, जाति-बिरादरी की सकुचितता, बेमेल विवाह तथा तलाक, मालिक

और नौकर के झगड़े; शराबखोरी, जुआ, असंगत प्रेम, वेश्यावृत्ति, छल तथा कपटपूर्ण व्यवहार, ऊँच-नीच का भेद, रूढिवादी संस्थाओं की आलोचना, धार्मिक पाखण्ड, पाश्चात्य अन्धानुकरण आदि हैं। इस सामाजिक आलोचना का मूल तात्पर्य रूढिवादी समाज को जागृत करना था। एकांकीकारों ने समाज के त्रुटिपूर्ण और जर्जरित अंगों पर प्रकाश डाल कर बौद्धिक दृष्टिकोण से उन रूढ़ियों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया, जो समाज की पुरानी शृंखलाओं में बँधी हुई थीं। सुधारक एकांकियों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया। इनमें हास्य-व्यंग्य का पर्याप्त सम्मिश्रण था। इस युग के नाटकों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (१) राष्ट्रीय नैतिक चेतना (२) साहित्यिक चेतना (३) पौराणिक आदर्शवाद। टेकनीक में पारसी प्रणाली का उपयोग हुआ इस युग के एकांकीकारों में ० राधेश्याम कथा वाचक, तुलसीदत्त शैदा, मगल-प्रसाद विश्वकर्मा, जयदेव शर्मा, सियारामशरण गुप्त, आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, ब्रिजलाल शास्त्री, रामसिह वर्मा, बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, हरिशकर शर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव, रूपनारायण पाण्डेय, प्रेमचन्द, उग्र, सुदर्शन, रामनरेश त्रिपाठी, जयशकरप्रसाद प्रमुख हैं।

तृतीय-विकास अवस्था (१६२५-१६३८)

पाश्चात्य विचार-धारा से प्रभावित होकर हिन्दी में अंग्रेजी के अनुकरण पर एकांकी नाटकों का विकास हुआ। पुराने एकांकी साधारणतः सस्कृत की प्रणाली पर लिखे गये हैं। इब्सन, पिनरो और शा इत्यादि में पुरानी पद्धति, कृत्रिम भावुकता, जीवन का अतिरजित स्वरूप, स्वगत, काव्य के प्रयोग, दृश्यों की अधिकता, संकलन त्रय की अवहेलना तथा अन्य अस्वाभाविकताओं के विरुद्ध जो यथार्थवादी क्रान्ति थी, वह एकांकी में दृष्टिगोचर होने लगी। हिन्दी एकांकीकारों ने भी पश्चिम की टेकनिक के अनुसार नये एकांकियों का निर्माण प्रारम्भ किया। अब तक हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्यों का सम्बन्ध इतना निकट हो गया था कि हिन्दी एकांकी ने अंग्रेजी के रग में अपने को रंग डाला। स्वय कुछ नये प्रयोगवादी एकांकीकारों जैसे—डा० रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द-दास, भुवनेश्वर, अश्क इत्यादि ने अपनी प्रेरणा के सम्बन्ध में स्वीकार किया है कि उन्हें अंग्रेजी से लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। प्रयोगकालीन एकांकीकारों की तीन श्रेणियाँ हैं। प्रथम तो वे एकांकीकार हैं, जिन पर बगाली या अंग्रेजी का प्रभाव अभी तक नहीं पड़ा था। इनके कथानक ऐतिहासिक हैं और टेक-निक का कोई नया प्रयत्न नहीं है। ये एकांकीकार बड़े नाटक लिखते थे; उन्हीं

के अन्तर्गत छोटे एकाकी लिखने लगे थे। इस वर्ग में सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, गोविन्दवल्लभ पन्त, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, डा० सत्येन्द्र, प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी आदि आते हैं।

दूसरे वर्ग में वे एकांकीकार आते हैं जिन्होंने टेकनिक विषय तथा विचार-धारा, समस्याएँ इत्यादि सब कुछ पाश्चात्य एकांकियों या समाज से ग्रहण की हैं, जिनका जीवन-दर्शन पाश्चात्य मापदण्डों से इतना प्रभावित है कि वे हर एक प्रकार से पाश्चात्यमय हो उठे हैं। इस वर्ग के प्रतिनिधि श्री भुवनेश्वर प्रसाद, धर्मप्रकाश आनन्द, गणेशप्रसाद द्विवेदी आदि हैं।

तृतीय-वर्ग में वे एकांकीकार आते हैं, जिन्होंने पाश्चात्य टेकनिक को भली-भाँति पचाया और भारतीय-जीवन और समाज को एक नये ढंग से प्रस्तुत किया। इनके एकांकियों की टेकनीक पाश्चात्य होते हुए भी उनमें विचार, दर्शन, तर्क और बुद्धिवाद सब मौलिक है। इनकी शैली पर पाश्चात्य प्रभाव है पर उसे अपनी मौलिक कथावस्तु के लिए पोशाक की भाँति काम में लिया। इस वर्ग के नेता डा० रामकुमार वर्मा हैं। अन्य एकांकीकार जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, श्री उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर, भगवतीचरण वर्मा इसी वर्ग में रखे जा सकते हैं। पाश्चात्य प्रभाव पहले पहल डा० रामकुमार वर्मा के 'बादल की मृत्यु' (१६३०) में प्रकट हुआ था। यह मेटरलिंक की शैली पर पाश्चात्य ढंग का एक रूपक है। इसमें केवल कल्पना है और इसके निर्माण में नाटककार और कवि में समझौता हुआ है।

आधुनिक अवस्था (१६३८-१६५३)

इस काल के एकांकियों का मूल-स्वर यथातथ्यवाद है। समाज तथा उसकी नाना आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, समस्याओं को स्वाभाविक यथार्थवादी स्वरूप में चित्रित किया गया है। झूठी कल्पना, अस्वाभाविक भावावेश या अतिरंजना का बहिष्कार कर यथातथ्यवादियों ने समाज को जैसा देखा, वैसा ही चित्रित कर दिया है। इन एकांकीकारों का विश्वास है कि युगों की रूढ़ियों तथा बन्धनों में बँधे रहने के कारण कृत्रिम भावुकता और मार्मिकता में पड़ कर तथा केवल सौंदर्य-पूजा में निमग्न रह कर मानव-प्रकृति, समाज तथा संस्कारों का वास्तविक रूप सभ्यता के आवरण में आवृत्त हो गया है। यही वास्तविक रूप अब उनके यथार्थवादी साहित्य में अनुप्राणित हो रहा है। ये एकांकीकार वर्तमान संघर्ष एवं उत्पीड़न में कल्पना या आदर्शवाद को आवश्यक नहीं समझते। कथानक के सम्बन्ध में पुरानी मान्यताएँ नष्ट हो चुकी हैं। आधुनिक

एकांकीकारों का विचार है कि सफल एकांकी छोटा होते हुए भी पूर्ण हो, प्रभावशाली हो और समाप्ति के पश्चात् पाठक या दर्शक के मन पर कुछ शेष न रह जाय। वे यथासंभव कम पात्रों को स्टेज पर लाते हैं। कुछ ऐसे एकांकियों की रचना कर रहे हैं जिनमें स्त्री-पात्र हैं ही नहीं। इनका सविधान रंगमंचीय है। बिना किसी असाधारण परिवर्तन के इनका सरलता से अभिनय हो सकता है। पात्रों का परिचय भी एकांकीकारों द्वारा नहीं दिया गया है वरन् पात्र स्वयं अपनी बातचीत में एक दूसरे के द्वारा पाठकों या दर्शकों को देते हैं। इनका मूलाधार विकास है, नाटकीय कथावस्तु का क्रमिक विकास होता है, नायक एव प्रतिद्वन्द्वी में सघर्ष चलता है और यह सघर्ष चरम-सीमा (Climax) पर पहुँच कर समाप्त हो जाता है साथ ही एकांकी भी समाप्ति पा लेना है। आधुनिक एकांकियों की भाषा सरल, स्वाभाविक दैनिक जीवन जैसी, गतिशील और प्रवाहमयी है। 'स्वगत कथन' का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया जाता। रग-मंच निर्देश अत्यधिक व्यापक और विस्तृत होते हैं। इनकी सहायता से रंगमंच की व्यवस्था, परिस्थिति एव पात्रों की रूप-कल्पना स्पष्ट कर दी जाती है।

नये युग के नेता सर्वश्री—विष्णु प्रभाकर एव सत्येन्द्र शरत् हैं। इनके अतिरिक्त सर्वश्री प्रेमनारायण टण्डन, प्रभाकर माचवे, जयनाथ नलिन, विश्वम्भर मानव, प्रो० वोरगाँवकर, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, आरसीप्रसादसिंह, देवीलाल सामर, हरिश्चन्द्र खन्ना, डा० सुधीन्द्र, प्रो० इन्दुशेखर, मधुकर खेर, विमला लूथरा, हसकुमार तिवारी, अनिलकुमार, प्रो० बृहस्पति, चिरंजीत, हीरादेवी चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण टडन द्वारा उत्तरोत्तर हिन्दी एकांकी समृद्ध हो रहा है।

हिन्दी नाटक के गत दस वर्ष

विगत दस वर्षों के हिन्दी नाट्य साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि हमारे यहाँ अन्य साहित्यिक माध्यमों की अपेक्षा नाटकों का निर्माण कम हुआ है। मुख्य रूप से पाँच या छे ऐसे नाटककार हैं, जो निरन्तर इस क्षेत्र में निष्ठा से कार्य कर रहे हैं। संख्या परिमाण और कोटि की दृष्टि से इन नाटककारों में सर्वश्री सेठ गोविन्ददास, प० उदयशकर भट्ट, गोविन्दवल्लभ पन्त, लक्ष्मीनारा-मिश्र और हरीकृष्ण प्रेमी हैं। इस कमी का कारण यह है कि अभी हिन्दी में रगमच का अभाव है। सिनेमा के प्रचार ने नाटक को समाप्त-सा कर दिया है।

एक आलोचक लिखते हैं, "हिन्दी साहित्य में व्यापकता की दृष्टि से बड़े नाटकों की अल्प सख्या न केवल नगण्य है अपितु चिन्तनीय भी है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी में रगमंच के अभाव के कारण बड़े नाटकों का स्वागत नहीं हुआ और दो एक जगह जो बड़े नाटक खेले गए, उनकी महत्ता बहुत साधारण रही। इसके अतिरिक्त इन प्रकाशित नाटकों में जनता ने जीवन के अपेक्षित तत्व भी नहीं पाये। एक युग था जब लोग प्राचीनता का आधार लेकर लिखे गये नाटकों को पसन्द करते थे, किन्तु युद्ध के पश्चात जनता की अपनी समस्याओं के विषय और उग्र हो जाने के कारण उसकी चेतना में यथार्थता और दृष्टि में क्षिप्रता आ गई 'कुछ नाटककारों ने बड़े नाटकों की अपेक्षा एकाकी नाटक को अपना क्षेत्र बनाया और युद्धोत्तर काल में इस क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति भी हुई' " 'एकाकी नाटक उभरे और बड़े नाटकों का युग दब सा गया।"*

यह बात सत्य है कि एकाकी ने बड़े नाटकों को दबा-सा लिया है, किन्तु फिर भी बड़े नाटक प्रकाशित होते रहे हैं। इनमें से अधिकाश सुपाठ्य हैं, रग-मच के अनुकूल नहीं हैं। सेठ गोविन्ददास प्रथम बड़े नाट्यकार हैं, जो अब भी निरन्तर कुछ न कुछ लिख रहे हैं। सेठजी के नवीनतम नाटक "बड़ा पापी

---

* प० उदयशकर भट्ट।

कौन" (१९४८) गरीबी और अमीरी (१९४९) "दलित कुसुम"; "पतित सुमन" हिंसा अहिंसा; "पाकिस्तान"; और "भूदान यज्ञ" आदि देश की राजनैतिक एवं आर्थिक उथल पुथल का अच्छा परिचय देते हैं। "गरीबी तथा अमीरी" में आपने बड़ी सुचारुता से श्रम तथा उत्तराधिकार की समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया है। अपने नवीन तम नाटक "भूदान यज्ञ" में भूदान की सामयिक समस्या को स्पष्ट करना, विभिन्न प्रान्तों में भूमिदान-वीरों के दान का विवरण, हृदय-परिवर्तन का प्रभाव, तेलगना के साम्यवादियों की सशस्त्र क्रान्ति की असफलता दिखाकर क्रान्तिकारी साम्यवादियों पर भी हृदयपरिवर्त्तनवाद व अहिंसावाद की विजय दिखाना है। पात्र कुछ जीवित, तो कुछ दिवगत भी हैं। अनेक स्थानों की घटनाएँ तथा १९५०-१९६० तक का समय, भविष्य की सम्भावनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। पात्रानुकूल भाषा, सरल शैली और विषद कथोपकथन हैं।

आलोचक विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जी ने इस नाटक के विषय में लिखा है—"यह ठीक है कि लेखक ने नाटक को रंगमच के अनुकूल बनाने का बड़ा प्रयत्न किया है और मोम के चेहरों से जैसा अमेरिका में होता है, प्रधानमत्री, राष्ट्रपति, तथा जयप्रकाश आदि का अभिनय भी हो सकता है परन्तु सबसे बड़ी बात है नाटक में वास्तविकता; वह इस नाटक में नहीं है। लेखक ने तेलगाना विद्रोह को गलत ढग से रख कर भूदान की सफलता यहाँ तक सिद्ध कर दी है कि कम्युनिस्ट सन्त विनोबा के चरणों पर गिरकर अहिंसा की शपथ लेते हुए गये हैं और सो भी बड़ा शीघ्रता के साथ। स्पष्ट है कि ऐसा नहीं है। धर्मव्रत जैसे कम्यूनिस्टों के हृदय में जो अन्तर्द्वन्द्व दिखाया गया है उसमें घोर अतिरजना और रुद्रदत्त के तर्कों में लेखक का ही एकांगी दृष्टिकोण तथा भूदान के सम्बन्ध में अविश्वास प्रकट होता है। फिर भी सामयिक विचारधारा मार्मिक रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से नाटक उत्तम है।"+

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र बड़े नाटक और एकांकियों के क्षेत्र में उत्साह से कार्य कर रहे हैं। गत वर्षों में आपके 'वितस्ता की लहरें"; "वत्सराज"; "गरुड़ध्वज" और प्रलय के पथ पर, मनु तथा अन्य एकाकी अशोक वन (एकांकी सग्रह १९२०) आदि प्रकाशित हो चुके हैं। "वत्सराज" में उदयन के कथानक द्वारा भारतीय सस्कृति की व्याख्या करने की चेष्टा की है। गांधीवादी विचारधारा के मौलिक विरोध का प्रयत्न बौद्धधर्म के आधार पर किया गया है। मिश्रजी अपने नाटकों में यथार्थवाद के उपासक हैं, भारतीय समाज की

+ श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय।

समस्याएँ उठा कर उनका निदान प्रस्तुत करते हैं, टेकनीक यथार्थ और स्वभाविक है, सकलनत्रय का बड़ा सुन्दर निर्वाह है। तीन अंकों, जिसमें केवल एक दृश्य होता है, में ही नाटकों को समाप्त कर देते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, एक यथातथ्यवादिना, जीवन जैसा है वैसा ही आभास देना मिश्रजी की कला का लक्ष्य है। उनकी कला यथार्थोन्मुख है लेकिन विचारों में वे भावनावादी, आदर्शवादी तथा परम्परावादी हैं। शैली के यथार्थ के साथ वस्तु का आदर्श उनका गुण है। मिश्रजी ने अपने नाटकों में मनोविज्ञान की स्थापना का दावा किया है। शैली एव नाट्यविधान में आपने एक नवीनता स्थापित की है।

"वितस्ता की लहरें" नामक नवीनतम कृति में मिश्रजी ने पुरु सिकन्दर संग्राम को प्रस्तुत किया है। पुरु के व्यक्तित्व का अत्यन्त चतुरता से चित्रण है। "चक्रव्यूह' नामक नए नाटक में वीर और रौद्र का परिपाक अभिमन्यु के रण कौशल में हुआ है। लक्ष्मण के साथ उसके समर में करुण रस आरम्भ होकर उस समय व्यापक हो उठता है, जब सुयोधन अपने एक मात्र पुत्र लक्ष्मण के निधन के बाद भी अभिमन्यु की प्राण-रक्षा में दौड़ पड़ता है और अन्त में अभिमन्यु का शीश अपनी गोद में लेकर क्रोध और वैर से छूट कर तन्मय हो जाता है। प्रारम्भ में धर्मराज और द्रौपदी का अभिमन्यु क प्रति अनुराग, सुभद्रा का पुत्र प्रेम, उत्तरा का पत्नी धर्म और भीष्म की मृत्यु करुणरस प्रधान हैं। यह एक सफल मनोवैज्ञानिक नाटक है।

प० उदयशकर भट्ट के "शकविजय", "मुक्तिपथ" (१९४५), मनु और मानव (१९४४) "क्रान्तिकारी", "नया समाज" आदि बड़े नाटक (१९४४) तथा "विश्वामित्र और दो भावनाट्य धूमशिखा", "समस्या का अन्त" (एकाकी) "पर्दे के पीछे" (एकाकी) "जीवन और सघर्ष", "अन्धकार और प्रकाश" प्रकाशित हुए हैं। अपने नवीनतम एकाकी "क्रान्तिकारी" में भट्ट जी ने राजनैतिक समस्याओं को उठाया है। इसकी पृष्ठभूमि सामूहिक राष्ट्रीय जागरण से बनी है, जो सन् १९४२ में भारत भर में फैल गई थी। यह भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास की एक मार्मिक झाँकी है। आजादी लाने में जो वैयक्तिक प्रयत्न, बलिदान और त्याग चले हैं, उन क्रान्तिकारियों की धारा इस राजनीतिक नाटक में मिलती है। यत्र तत्र सामाजिक जीवन, नेताओं, पुलिस, देशभक्ति के खोखलेपन पर भट्ट जी ने बड़े मार्मिक व्यग्य बाण फेंके हैं जैसे—"देशभक्ति एक पेशा है जो प्लेट फार्म से पैदा होकर बैंक बैलेन्स में समाप्त हो जाता है", वकील उस हलवाई की तरह है जो अकल की मिठाई बेचता है।

झूठ को सच और सच को झूठ बनाना बाजारू औरत की तरह चालाकी का सौदा करने वाला आदि। अभिनय की दृष्टि से भी नाटक उत्तम बन पड़ा है।

"समस्या का अन्त" के ६ और "धूमशिखा" के ६ एकांकी भट्ट जी के अन्य नाटकों की अपेक्षा बड़े और आज के जीवन और समाज के अधिक निकट हैं। इनमें संघर्ष की प्रेरणा के मूल तत्वों की प्रगति का सहज प्रयास है। "पर्दे के पीछे" के आठ एकांकी भट्ट जी की एकांकी कला के सर्वोत्कृष्ट रूप हैं। "मायोपिया" और "बार्गेन" आधुनिक शिक्षित युवक-युवतियों के नए सम्बन्धों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। आज दोनों ही अप्राकृतिक स्थितियों में भटक रहे हैं। "स्वतन्त्रा का युग" में दिखाया गया है कि आजादी की कैसी गलत धारणा उनके मन में प्रविष्ट हो गई है और सद्‌गृहस्थ के लिए यह कैसी हानिकर है। "पर्दे के पीछे" में दिखाया गया है कि हमारे आदर्शवाद त्याग तपस्या के पीछे कितनी प्रवचना है। "नई बात" वर्तमान नए सामाजिक मूल्यों पर कटु प्रहार है। "बाबूजी" में हमारा पारिवारिक जीवन व्यंग्य का निशाना बना है। भट्ट जी ने व्यापक दृष्टि से नए जीवन के हर अंग, स्वच्छन्दता शिक्षा-उच्छृङ्खल, और सामाजिक मूल्यों को देखा तथा उनके खोखलेपन को प्रकट किया है। उनका अभिप्राय यह है कि हम नए पुराने मूल्यों (Values) को ध्यान से देखें और फिर चुनाव करें।

श्री हरिकृष्ण "प्रेमी" की "विषपान", "उद्धार"; "शपथ"; "छाया"; आदि नवीन नाटक हैं। "शपथ" ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तम है। इसकी सामयिक और समाज नीति दोनों ही उपयोगी हैं। श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का नवीनतम पौराणिक नाटक "उर्मिला" वाल्मीकि की रामायण के चित्रण के अनुकूल उपेक्षिता उर्मिला के कारुणिक जीवन की तीन झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। रामवनवास के समय, लक्ष्मण मिलन तथा अन्त में मिलने के पश्चात् त्याग की। नाटक सरल और सयत है।

सन्त गोकुलचन्द का "मीरा" में मार्मिकता से मीरा का चरित्र चित्रण किया है। साथ ही राजकीय षडयंत्र और चाटुकारों की मलिनबुद्धि के कुचक्र का स्पष्ट किया है। श्री गणेशचन्द जोशी का "सर्प दर्शन" मेवाड़ के वीर तेजसिंह के जीवन को स्पष्ट करता है। वीरता, सत्यता के साथ प्रेम, विरह आदि कोमल भावों को दर्शाया गया है। इसमें साहित्यिक गुण भी विद्यमान हैं।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का "अम्बपाली" और "नेत्रदान" नवीनतम ऐतिहासिक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। विचार नए हैं। छोटे-छोटे सजीव वाक्यों में

बेनीपुरी ने नाट्यकला में उच्चस्तर प्राप्त किया है। भाषा की रंगीनी और शक्ति इन्हें प्रथम श्रेणी की कृतियाँ बनाता है। मनोभावों को स्पष्ट करने की इतनी क्षमता अन्य नाट्यकारों में नहीं है। "अम्बपाली" अभिनेय हिन्दी नाट्यसाहित्य को एक महत्वपूर्ण देन है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का "कोणार्क" (१९५२) और "ओ मेरे सपने" एकांकी संग्रह (१९५३) नवीनतम रंगमंचीय रचनाएँ हैं। "कोणार्क" के उपक्रम में नाटक की पूर्वकथा का स्पष्टीकरण करते हुए कोणार्क के सूर्य मन्दिर को शिल्पी विशु ने बना दिया है सूर्य प्रतिमा उसमें अधर स्थापित है केवल शिखर बनना शेष है—इस प्रारम्भिक स्थिति से नाटक शुरू होता है। प्रथम अंक में कोणार्क के शिखर का निर्माण नरसिंहदेव के महामात्य का शिल्पियों पर अत्याचार और नरसिंहदेव के विरुद्ध षडयन्त्र का प्रारम्भ है। दूसरे में महामात्य के विद्रोह और आक्रमण की सूचना, मन्दिर दुर्ग में परिणत तथा शिल्पियों द्वारा महामात्य के विद्रोह का सामना करने की घोषणा है। तृतीय अंक में विशु द्वारा चुम्बक तोड़ कर सूर्य की मूर्ति को गिराना और मन्दिर का गिरना चित्रित किया गया है। इसमें सौंदर्य, प्रेम, शिल्प, कला और पुरुषार्थ के संयोग तथा जनशक्ति का अच्छा प्रदर्शन किया गया है। विशु मन्दिर को ऐसे अवसर पर नष्ट करता है कि उसके राजा का शत्रु दब कर नष्ट हो जाता है। यह नाटक अभिनय की दृष्टि से लिखा गया है।

"ओ मेरे सपने" में हास्य व्यंग्य मिश्रित शैली के पाँच रंगमंचीय प्रहसन हैं। इनमें नाटककार आधुनिक सभ्य समाज की विद्रूपताओं, मिथ्याप्रदर्शन, कृत्रिम व्यवहारों और कमजोरियों का खाका खींचता है। इन नाटकों में लेखक अपने पात्रों के साथ कुछ छेड़छाड़, कुछ चुहल, कुछ शरारत करता है, उनको सफेद या स्याह रंग से नहीं रंगता। पात्रों के अतिरंजित स्वरूप को पेश कर वह उनके बेडौलपन से अवगत करा देता है। "घोंसले" में परिवार नियोजन की प्रतिक्रिया दिखाने का बड़ा स्वभाविक चित्र उपस्थित किया गया है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने बड़ी तीव्र गति से नाटकों का निर्माण किया है इनमें "बांस की फाँस", "राखी की लाज", फूलों की बोली, काश्मीर का काँटा, झाँसी की रानी, हंस मयूर, "लो भाई पंचों लो", "मंगलसूत्र", "खिलौने की खोज", पूर्व की ओर, और "बीरबल" आदि बड़े नाटक तथा "सगुन"; "जहाँदारशाह"; "पीले हाथ" आदि एकांकी संग्रह प्रदान किये हैं, इनमें इतिहास के माध्यम से समाज की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। "मंगलसूत्र" में नर

नारी के निगूढतम रहस्यों का उद्घाटन किया गया है और मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्वों का अच्छा चित्रण है।

यशस्वी नाट्यकार जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के दो नवीन नाटक "समर्पण" और "गौतमानद" बहुत ही हृदयस्पर्शी हैं। विचार और कला दोनों का सौष्ठव "समर्पण" और "गौतमनन्द" नाटकों में फलीभूत हुआ है। ऐतिहासिक कथानक के रूप में पात्रों के कथोपकथन द्वारा वर्तमान युग की प्रगतिशील विचारधारा यत्र तत्र जिस सुन्दर रूप में "मिलिन्द" जी द्वारा व्यक्त की गई है, वह लेखक की असाधारण प्रतिभा की द्योतक है। "गौतमानन्द" में नन्द के त्याग और बलिदान को उचित महत्व देकर इतिहास के एक उपेक्षित अंग के साथ न्याय किया है। इनके नाटकों से एक नवीन दिशा की ओर पथ-प्रदर्शन हुआ है।

श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" एकाकी के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। आपके बड़े नाटकों में "पैंतरे", "आदि मार्ग" और एकांकी नाटकों में "चरवाहे", "तूफान से पहले", "पक्का गाना", "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" आदि सामाजिक व्यंग्य प्रधान नाटक प्रकाशित हुए हैं। "भंग" चरित्र चित्रण प्रधान गंभीर मनोवैज्ञानिक नाटक है जिसमें नई रोशनी की लड़की उर्म्मि की उदासी, घुटन और उच्च वर्ग के खोखलापन को स्पष्ट किया गया। "आदि मार्ग" प्रेम और विद्रोह की समस्याओं को लेकर दो युवतियों के चरित्रों का विश्लेषण करता है। "अजो दीदी" दो परस्पर विरोधी चरित्रों पर आधारित हैं। "पर्दा उठाओ" में सात प्रहसनों का संग्रह जो हास्य व्यंग्य से शराबोर है। "पैंतरे" फिल्मी जीवन की यथार्थता हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। यह हास्य व्यंग्य से ओत-प्रोत है। पिछले वर्षों से स्कूलों, कालेजों के अमेचर रंगमंचों पर अश्क जी के नाटक लोकप्रिय रहे हैं। गम्भीर नाटकों तथा प्रहसन दोनों ही दृष्टियों से "अश्क" समस्त नाटकों के सफल निर्माता हैं। नवीनतम कृति "अंधी गली" में आपने आधुनिक सभ्य जीवन, संघर्ष और दैनिक समस्याओं का खाका खींचा है। "अंधी गली" ऐसे समाज को प्रतीक है जो रूढ़ियों और संकीर्णताओं की दीवारों में बन्द है।

डा० रामकुमार वर्मा एकांकी नाटक के क्षेत्र में सर्वोपरि हैं। उनके कई नए संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जैसे "ऋतुराज", "रजत रश्मि", "ध्रुवतारिका" "दीपदान", "कामकदला" आदि। इनमें नवीन रचना शिल्प तथा विचारधारा का प्रयोग है। "रजत रश्मि" के प्रतिशोध, तैमूर की हार, "दुर्गावती

औरगज़ेब की आखरी रात" में गहन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण का गाम्भीर्य और प्रभावोत्पादकता है। अन्तर्द्वंद्वों का चित्रण करने में वर्माजी सर्वाधिक सफल हुए हैं। उनके सभी एकाकियों का रगमञ्च पर सफलतापूर्वक अभिनय हो सकता है। डा० वर्मा की सारगर्भित प्रभापूर्ण नाटकीय शैली पाठक एव दर्शक दोनों को आकृष्ट करने की क्षमता रखती है। इतिहास, कल्पना और काव्यगुणों के सम्मिश्रण से बने ये नाटक बड़े ही रोचक एव प्रभावोत्पादक हैं। तत्कालीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर पात्रों के चरित्रों में जो मनोवैज्ञानिक पुट दिया गया है, वह इन नाटकों को स्थायित्व प्रदान करने में बहुत बड़ा तत्व बन गया है।

प० रामनरेश त्रिपाठी का नया नाटक "पैसा परमेश्वर" हमारे युग के आर्थिक पहलू पर प्रकाश डालता और कृत्रिम सामाजिक सबन्धों को उजागर करता है। सेठ, डाक्टर, वकील, महन्त, नेता सब पैसे की उपयोगिता बताते हैं। इससे त्रिपाठी जी ने सभ्य जगत की विडबनाओं और पाखडों का पर्दा फाश किया है। सामयिक जीवन के विविध पहलुओं और वर्तमान कुत्साओं की व्यग्यपूर्ण आलोचना मुहाविरेदार भाषा और बोलचाल की शैली में प्रस्तुत की गई है।

श्री भैरूलाल व्यास के "करुणा" सामाजि नाटक में सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आर्थिक अथवा आधिभौतिक त्याग को आवश्यकता बतलाई गई है। आधिभौतिक त्याग से समाज का व्यावहारिक जीवन शान्तिप्रद हो सकता है, परन्तु आध्यात्मिक त्याग से समाज का आन्तरिक जीवन शान्ति की ओर प्रवाहित होता है—इस सिद्धात को नाटक में चित्रित किया है। श्री रामनारायण शास्त्री कृत "देवता" मनुष्य के चरित्र की प्रभुता और धन की तुच्छता का प्रतिपादन करता है। रोचक कथावस्तु, उच्च विचार और सफल चरित्र-चित्रण उसकी विशेषताएँ हैं।

उदीयमान एकाकीकार डा० लक्ष्मीनारायण लाल का "पर्वत के पीछे" और "ताजमहल के आँसू" आधुनिक एकाकी-शिल्प के सफल प्रयोग हैं। पहले में पाँच और दूसरे में "पर्वत के पीछे" "सुबह होगी", "नई इमारत", "मड़वे का भोर", धुँए के नाचे और "कैद से पहिले" आदि छः सामाजिक समस्या नाटक हैं। इनमें लेखक ने "कोई वदसूरत बेनकाब कर दी है, कोई घिनौना नासूर घाव साफ कर दिया है अथवा स्वप्न में रोते हुए इसान के आँसुओं को मूर्त कर दिया है।" कथा भाग गठी हुई, शैली भावात्मक और भाषा साधारणतः जोशीली है।

श्री रायसरन शर्मा प्रहसनों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आपके नौ प्रहसनों का नया संग्रह "सफर की साथिन" उच्च कोटि के शिष्ट हास्यरस से ओतप्रोत है। सुरुचिपूर्ण वातावरण इन प्रहसनों की विशेषता है। श्री सरयूपंडा गौड़ के "कहकहा", "ससुराल की होली", "हँसो हँसाओ" आदि प्रहसनों के संग्रह व्यंग्य की दृष्टि से उत्तम हैं। श्री शिवपूजनसहाय का "दो घड़ी" भी निर्मल हास्य का उदाहरण है। श्री केशवचन्द्र वर्मा का "रस का सिरका" हास्य व्यंग्यमय झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।

पं० गौरीशंकर मिश्र ने दैनिक समस्याओं पर आधारित कुछ नए सामाजिक नाटक प्रस्तुत किये हैं जैसे "ठोस आजादी किसे ?" इसमें राजनैतिक वादों की त्रुटियाँ स्पष्ट कर कॉंग्रेस शासन को जीवनोपयोगी सिद्ध किया गया है। "हिन्दूराज-पाकिस्तानी स्वप्न कब तक ?" में हिन्दूराज और पाकिस्तानी साम्प्रदायिक राज्यों मे जो कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं, उनका सजीव चित्र प्रस्तुत कर असाम्प्रदायिक गणतन्त्र की विशेषताएँ दर्शाई गई हैं। "हिन्दुस्तान पाकिस्तान साथ रहेंगे" में सामयिक और मर्मस्पर्शी सामग्री के आधार पर दोनों राज्यों की वैदेशिक नीतियों पर प्रकाश डाला गया है। "आजाद हिन्दुस्तान से नशा ले चल" में जितने भी नशे भारत में हैं, उनके प्रतिनिधियों को समझा कर यह चित्रित किया गया है कि स्वतन्त्र भारत से उन्हें निकाल देना ही उचित है अपने पौराणिक नाटक "शबरी अछूत" में अछूत समस्या पर प्रकाश डाला है।

कुछ और नाट्यकारों ने सामयिक समस्याओं को लेकर नाटकों की रचना की है जैसे श्री वीरदेव वीर के दो नाटक "भूख" और "न्याय"। "भूख" एक हृदय विदारक नाटक है, जिसमें हिन्दू मुस्लिम एकता व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। "न्याय" एक सामाजिक नाटक है, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है जो गरीबों का रक्त शोषण कर मालदार बना है, किन्तु दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता है। इसी प्रकार प्रो० साधुराम शास्त्री के "सन्त कबीर" में हिन्दू मुस्लिम एकता पर प्रकाश पड़ा है।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह के दो नाटक "धर्म की धुरी" और "अपना पराया" विशेष उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनका आधार सामयिक समस्याएँ हैं। "अपना पराया" में राजा साहब ने एक सामाजिक समस्या उठाई है—नई शिक्षा की उच्छृङ्खलता और गुप्त प्रेम व्यवहार। इसके दुष्परिणाम भी उपस्थित किये हैं। भाषा में उर्दू का पुट अधिक है।

श्री देवराज दिनेश ने एकाकी नाटकों के निर्माण में प्रचुर सहयोग प्रदान किया है। एक बड़ा नाटक "मानव प्रताप" भी लिखा है जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों की निकटता का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। तीन अंकों का यह नाटक रगमच पर भी अभिनीत हो सकता है। प्रताप के चरित्र में शूरवीरता गुणग्राहता, स्वतन्त्र्य प्रेम, सगठन शक्ति का चित्रण नाटक को मौलिकता प्रदान करता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत "पगध्वनि" सामयिक राजनैतिक समस्याओं के आधार पर खड़ा होता है। इसका विशेष भावपूर्ण स्थान चतुर्थ अक है जिसमें आगा खाँ महल में राष्ट्रमाता कस्तूरबा की मृत्यु का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इसके पात्रों मे १२ भावमूर्तियाँ भी हैं। इस दृष्टि से एक स्तुत्य नवीन प्रयोग है।

कहानी लेखिका और कवियत्री हीरादेवी चतुर्वेदी के नौ एकाकियों का सग्रह "रगीन पर्दा" सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ प्रस्तुत करता है। "रगीन पर्दा" में मन मुटाव, "रगा सियार" में आधुनिक शिक्षा "भूलभुलैया" में मायावाद का चित्रण है। इनमें कथावस्तु अधिक और शिल्प साधारण कोटि का है इसकी शक्ति उच्च आदर्शवादी विचारधारा है।

"नई धारा" में प्रकाशित श्री वीरेन्द्रनारायण का तीन अकों का नाटक "श्री शरत्चन्द्र' सुन्दर और सफल रहा। इसमें शरत् के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है। साहित्यिक व्यक्तियों पर कुछ अन्य नाटक भी लिखे गये हैं:— जैसे रामदत्त जी भारद्वाज का "सोरों का सत गोस्वामी तुलसीदास" नई शोध सामग्री पर आधारित है। इनमें तुलसी के माता-पिता के विवाह, तुलसी जन्म, शिक्षा और विवाह का अच्छा चित्र है। नाट्यकला की चमक कम है। श्री नारायण चक्रवर्ती कृत "अन्ध कवि" में दो नाटक हैं एक सूरदास दूसरा तुलसीदास सम्बधी। इनमें ऐतिहासिकता और प्रमाणिकता कम है। प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी का "तुलसीदास", रामचन्द्र तिवारी का कर्म और भक्ति प्रतीक तुलसी, प्रो० चन्द्रप्रकाश का "तुलसीदास" महाकवि चन्द्र, कविवर भूषण, "भारतेन्दु शताब्दी" आदि नाटक साहित्यिकों की जीवनियों से सम्बन्धित हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र का "वलहीन" आधुनिक हिन्दी कवि और कविता को लेकर लिखा गया है। श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित "तुलसीदास" इन साहित्यिकों के जीवन से सम्बन्धित सर्वोत्कृष्ट नाटक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तुलसी के चरित्र का अच्छा चित्रण हुआ है। रत्नावली का चर्खा कातना गांधी युग का प्रभाव कहना चाहिये। रगमच की कठिनाइयों को सामने रखकर

इसे पूर्णतः अभिनेय बनाने का प्रयत्न किया गया है। शकर शेष का "कवि का स्वप्न" (एकांकी) भी उल्लेखनीय है।

कानपुर के प्रख्यात नाटककार श्री विनोद रस्तोगी के "आजादी के बाद" और "पुरुष का पाप" (एकांकी संग्रह) प्रकाशित हुए हैं। रस्तोगी जी को अपने एक नाटक "अधेग फिमतन और पाँव" पर पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। "आजादी के बाद" में शरणार्थी समस्या, व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार, भ्रष्ट-नेतागिरी, कालाबाजार, भ्रष्टाचार आदि के चित्रण द्वारा रस्तोगी जी ने पतनोन्मुख समाज का चित्र पेश किया है। "पुरुष का पाप" के नौ एकांकियों में यह दिखलाया गया है कि "पुरुष का पाप नारी के लिए अभिशाप है। पुरुष तो पाप करके छूट जाता है किन्तु उसका दण्ड नारी को मिलता है।" इसमें "सुहाग-रात" और "सौंदर्य का प्रायश्चित" बहुत सुन्दर सजीव रचनाएँ हैं। इन नाटकों में रस्तोगी ज़ी ने अतीत का आश्रय लेकर वर्तमान नारी समाज की स्थिति पर प्रकाश डाला है। इनमें जनजीवन की अनुभूतियाँ हैं। वार्त्तालाप स्वाभाविक और नाटकीय तत्वों से भरपूर हैं। इनकी विशेषता है रगमंचीयता। संकलन त्रय की दृष्टि से भी ये सफल हैं। "पैसा, लड़की और जनसेवा" आपका सर्वोत्कृष्ट समस्यामूलक नाटक है।

श्री जनार्दन राय नागर कृत "आचार्य चाणक्य" चरितप्रधान देशभक्ति से ओत-प्रोत नाटक है। नाटक में सवाद सरल एव सरस हैं। डा० दशरथ ओझा कृत "सम्राट् समुद्रगुप्त" संक्षिप्त ऐतिहासिक नाटक है, जो प्रसाद से प्रभावित है, मालती लेखक की कल्पना की उपज है। अन्य पात्रों में आदर्शवाद के दर्शन होते हैं। नवीन सस्कृति के प्रचार एव प्रसार का स्वर नाटक का उद्देश्य प्रतीत होता है।

प्रो० गोविन्दलाल माथुर राजस्थानी भाषा में सामाजिक समस्या प्रधान नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं। आपके सात एकांकी नाटकों—१—लालची मां बाप २—ठाकुरशाही ३—सूदखोर ४—शिक्षा का सवाल ५—हरिजन ६—शफाखाना ७—बाल विधवा में पुरानी रूढियों, मूढ़ता और अशिक्षा पर कुठाराघात किया गया है। 'शफाखाना' में ठाकुर और जनता का विरोध; "बाल विधवा" में पचायतों के सड़े गले न्याय का नग्न रूप, "ठाकुरशाही" में ठाकुरों के निकम्मे जीवन पर व्यग्य है। शैली में सरलता, स्वाभाविकता और रोचकता है। इन सब पर राजस्थानी जीवन की एक विशिष्ट छाप है।

नए एकांकीकारों में श्री विष्णुप्रभाकर और प्रभाकर माचवे विशेष उल्लेखनीय प्रतिभाशाली नाट्यकार हैं। श्री विष्णु के "हमारा स्वाधीनता संग्राम"

(आजादी की कहानी का रूपक), "मैं दोषी नहीं हूँ"; "इन्सान" आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपके एकांकियों तथा ध्वनि नाटकों की संख्या पचास से ऊपर है। श्री प्रभाकर माचवे की सृजनशक्ति बड़ी तीव्र है। यद्यपि पुस्तकाकार कोई संग्रह अभी नहीं छपा है, तथापि आपके ध्वनि नाटकों की संख्या ५०-६० के लगभग है, जिनमें देश की पौराणिक सामाजिक राजनैतिक सभी प्रकार की समस्याएँ हैं। मनोवैज्ञानिक गहराइयों में उतर कर माचवे ने बुद्धिवादी दृष्टि-कोण से हमारी नई पुरानी मान्यताओं, सामाजिक मूल्यों, तथा प्रवृत्तियों को परखा है। नाटकों में मुख्य "संकट पर संकट" (७ भागों में जासूसी नाटक माला), यदि हम वे होते (४ भाग) "बधूचाहिए"; पागलखाने में (तीन भाग), पंचकन्या (५ एकांकी); गाँधी की राह पर, घरेलू झगड़े, अब्राकाडब्रा, टाइगर ! कवायदवादी (३ एकांकी), "नाटक का नाटक" हैं। माचवे जी के अनेक पुस्तकों के रेडियो रूपान्तर भी प्रस्तुत किए हैं जैसे यशोधरा, कामायनी, वाण भट्ट की आत्मकथा, लंका वैभव, क्रौंचवध, शकुन्तला आदि। कई एकांकी स्टेज के लिए लिखे गए और सफलतापूर्वक खेले भी गए हैं।

बाल नाटक—बालकों के लिए भी कुछ एकांकी नाटक लिखे जा रहे हैं। इस वर्ग में व्यथित हृदय कृत "प्राणदान" (१४ एकांकी) श्री रामचन्द्र गौड़ का "नाट्यकिरण" उल्लेखनीय है। इसमें रवीन्द्र, गोखले, सर सैयद अहमदखाँ तिलक तथा गाँधीजी के बचपन की आदर्श घटनाओं को छः सरल नाटकों में प्रस्तुत किया गया है। इनसे बच्चों में स्वच्छता, सत्यप्रियता, कर्त्तव्यनिष्ठा, गुरु सम्मान, संयम और अध्ययन निष्ठा उत्पन्न होती है। श्री गणेशदत्त गौड़ "इन्द्र" की "सरल नाटक माला" दो भाग में ३०-४० ऐतिहासिक सामाजिक एकांकी प्रस्तुत किये गये हैं। श्री दशरथ ओझा की "बाल नाटक माला" (चार भाग) के बाल एकांकियों में इतिहास, राजनीति, समाज विज्ञान, चरित्र, और मनो-विकारों का सफल प्रदर्शन है। श्री रघुवीरशरण मिश्र के "परीक्षा" में पाँच बालोपयोगी एकांकियों का संग्रह है पं० रामचन्द तिवारी ने बच्चों के लिए अनेक नाटक लिखें हैं जिनमें "बूढ़े बच्चे" संग्रह अभी छपा है। श्री प्रभाकर माचवे ने भी बच्चों के लिये कई पद्य नाटक लिखे हैं। श्री श्यामलाल का "ऐतिहासिक दृश्य" और हबीब तनवीर का "गधे" (नाटक) भी उल्लेखनीय बालोपयोगी नाटक हैं। विष्णुप्रभाकर का "माँ का बेटा" बच्चों के लिए आदर्शवादी नाटकों का अच्छा संग्रह है। इस क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। पं० रामनरेश त्रिपाठी का "पेखन" बड़ा लोकप्रिय रहा। "पेखन" के बाद बहुत ही छोटी

आयु के बच्चों के लिए नये एकांकी लिखे हैं। नाटकों में त्रिपाठी जी का दृष्टिकोण सदा भारतीय संस्कृति का प्रदर्शन हो रहा है।

नवीन नाट्यकारों में सर्वश्री डा० धर्मवीर भारती, अरुण एम० ए० अकुँ, आदेश, देवीलाल सामर, रघुवीरशरण मिश्र; राजाराम शास्त्री, रामदीन पाण्डेय विट्ठलदास कोठारी, विन्ध्याचलप्रसाद, विमला लूथरा, विराज, विश्वम्भर मानव और हरिनारायण मैणवाल उल्लेखनीय हैं। इनमें नए विचार हैं। अनेक नाट्यकार तीव्रता से विकसित हो रहे हैं।

डा० धर्मवीर भारती के पाँच एकाकी १—नदी प्यासी थी २—नीली झील ३—आवाज का नीलाम ४—सगमरमर पर एक रात ५—सृष्टि का आखरी आदमी प्रकाशित हुए हैं। मानव की अन्तर्वृत्तियों को झकझोर कर मानसिक उद्वेलन करना नए दृष्टिकोण से विचार करना भारतीजी की विशेषताएँ हैं। आत्म हत्या को तैयार राजेश पद्मा के सहज स्नेह और सहानुभूति पाकर नया जीवन प्राप्त करता है—इस कथानक पर "नदी प्यासी थी" का निर्माण हुआ है "सगमरमर पर एक रात" में मेहरुन्निसा के जीवन को वदलने वाली धारा का नाटकीय चित्रण है; "सृष्टि का आदमी" में ध्वन्सोन्मुख सस्कृति का नाश और नवीन सृष्टि का स्वप्न देखा गया है। "आवाज का नीलाम" में पत्रकार जगत् में पूँजीवाद का आक्रमण दिखाया गया है। "नीली झील" में आज के युग की विषमता का चित्रण किया गया है। इन नाटकों में नए संघर्षों का अच्छा चित्रण हुआ है। नाट्यकार धर्मवीर भारती को पूर्ण विश्वास है कि मानव शीघ्र ही नई आत्मा प्राप्त करेगा। जीवन के संघर्षों में तपकर मानव अपना खोया हुआ मूल्य पुनः प्राप्त करेगा। कलाकार ने निराशा, पराजय, हतोत्साह एवं पलायन की प्रवृत्ति को कहीं भी आश्रय नहीं दिया है। नाटककार ने कम से कम परिवर्तनों के द्वारा मच पर दृश्यों को उपस्थित करने का प्रयत्न किया है।❀

श्री देवीलाल सामर के नवीन एकांकी नाटकों के संग्रह "मृत्यु के उपरान्त" (१९५२) और "आत्मा की खोज" (१९५०) हैं। इनमें तेरह नाटकों का सकलन है। इनमें वालकों की रुचि और उनके मानसिक और भावात्मक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रत्येक नाटक एक विशेष प्रयोग के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसमें पाठकों और दर्शकों की उत्कंठा को उत्तरोत्तर बढाकर उसे चरम सीमा तक पहुँचाने का पूरा यत्न है। नाट्य तत्र और आधुनिक रगमंच की दृष्टि से ये नवीन प्रयोग हैं। इनके कुछ उल्लेखनीय नाटक

❀ प्रो० रामचन्द्र तिवारी।

"स्वतंत्र्य दिवस", वल्लभ, अछूत; जीवनदान, बापू आदि हैं। विचारधारा की दृष्टि से इन्हें समस्या नाटकों की कोटि में रखा जा सकता है।

श्री अरुण एम० ए० के नए अभिनेय नाटकों का संग्रह "रेल का डिब्बा"; श्री रघुवीरशरण मित्र के "भारत माता" (१९५४), "परीक्षा", हरिनारायण मैणवाल कृत "कृष्णवियोगिनी" और "माननी गोपा" संग्रह, अनेक राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। मैणवाल जी के नाटकों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं १—सामाजिक समस्या नाटक २—सांस्कृतिक पौराणिक तथा ३—ऐतिहासिक नाटक। अपने ९ सामाजिक नाटकों—सौभाग्य सिन्दूर; मोटर साइकिल, गरीब का संसार, महाशिला, नेताजी और आजाद हिन्द फौज, साथी, ताड़ गुड़ और कौसला में आपने अनेक आधुनिक सामाजिक समस्याओं को स्पष्ट किया है। पौराणिक नाटकों जैसे "प्रतिज्ञा", शत्रु से प्रेम, पर्जन्य यज्ञ, गुरु दक्षिणा, पितृ भक्ति आदि में अतीत भारतीय संस्कृति की उज्ज्वल आभा दिखाई गई है।

श्री राजाराम शास्त्री रेडियो नाट्यकार हैं। दो संग्रह "सतलज का हार" और "शिकार" के अतिरिक्त अनेक नए समस्या नाटक प्रस्तुत कर चुके हैं। श्रीमती विमला लूथरा के अनेक समस्या नाटक "सरिता" में छपते रहे हैं। नए नाटकों में लूथरा जी के "जनता बेचारी" (१९५४) लालसा (१९५४) और "कलाकार और नारी" (१९५४) उल्लेखनीय सामाजिक व्यंग्य प्रधान नाटक हैं। विश्वम्भर मानव कृत "लहर और चट्टान" सेक्स और प्रेम की समस्याएँ तथा समाज द्वारा उत्पन्न जटिलताएँ पेश करने वाले नए नाटकों का संग्रह है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री चिरंजीत के रेडियो नाटक, हरिश्चन्द्र खन्ना का मनोवैज्ञानिक नाटक "अमरबेल", प्रह्लादनारायण मीतल का "शिलान्यास", श्रीमधुकर खेर का "दिया तले अंधेरा", भय्यालाल वर्मा का "स्वर्ग में भीड़", रावीकृत "बैंकर की अभियोग समीक्षा", शिवसागर मिश्रकृत "खूबसूरत कोढ़" रामचरण-महेन्द्र कृत "घरेलू इलाज" और "सुहाग अमर हो गया"; नरेन्द्र नारायणलाल कृत "वेश्या की बेटी", करतारसिंह दुग्गल कृत "अमानत", विपुलादेवी कृत "लोकेश्वर शनि" नवीनतम समस्याओं से सम्बन्धि नये नाटक हैं।

गांधी जी पर रचित नाटक

गांधीवाद, गाँधीजी के व्यक्तित्व तथा तत्संबंधी घटनाओं पर गत वर्षों में अनेक एकांकी नाटक प्रकाशित हुए हैं। अनेक नाट्यकारों को गांधी जी के जीवन और साहित्य से प्रेरणा प्राप्त हुई है। श्री दुर्गाप्रसाद गुप्त का "श्री गांधी

दर्शन" (१६२२) महात्मा गांधीजी के जीवन को नाटक रूप में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार "भारतोद्धार" नाटक में गांधी जी की देश को स्वतन्त्र करने की योजना पर विचार है। श्री देवदत्त अटल ने गाधी जी के जीवन का विश्लेषण करते हुए दस एकांकी नाटक लिखे हैं—(१) सत्य की विजय, (२) यह विजय दशमी है, (३) खुदा की मार, (४) असफल षडयन्त्र, (५) युग का ईसा, (६) सच्चा स्वर्ग, (७) मुक्तिदाता गाधी, (८) नौआखाली तीर्थयात्रा, (६) सत्याग्रह या दुराग्रह, (१०) स्वर्ग में गाँधी।" ये रचनाएँ अटल जी के जीवन की सच्ची अनुभूति की प्रतीक हैं। उन्होंने स्वय साम्राज्यशाही का तख्ता पलटने वाले क्रान्तिकारियों के साथ रहकर राजनैतिक जीवन को निकट से देखा है। (१६४७) से पूर्व की स्थिति देश को गुलामी से बचाने के लिए गाधी जी का प्रयत्न, साम्प्रदायिकता से मुक्ति दिलाने में गांधी जी का प्रयत्न आदि अनुभव "अटल" जी ने इन नाटकों में प्रकट किये हैं।

श्री शिवकुमार ओझा "सुकुमार" ने गांधी जी के जीवन को चित्रित किया है। आपके (१) देव दर्शन, (२) अग्नि परीक्षा, (३) पुण्य स्मृति, (४) बा की बीमारी, (५) धर्म सकट (६) बैरिस्टर का स्वागत आदि नाटक लिखे हैं। इनमें प्रमुख पात्र सत्य हैं, किन्तु कुछ गौण पात्रों से भी सहायता ली गई है। फिर भी निर्मल सत्य का दर्शन ही नाट्यकार का दृष्टिकोण रहा है।

कुछ नाट्यकारों ने गांधीवाद पर एक-एक नाटक ही लिखा है। इनमें श्री मातादीन भागेरिया का "तीन दृश्य", प्रो० रामचरण महेन्द्र का "उजड़े नौआखाली में प्रकाश", श्री देवीलाल सामर का "बापू" श्री प्रभाकर माचवे का "गांधी की राह पर" और सेवाग्राम का "सत", श्री विष्णु प्रभाकर का "स्वाधीनता संग्राम", श्री दीनदयाल दिनेश कृत "सत्याग्रह", ठाकुर लक्ष्मणसिंह का "असहयोग" डा० सुधीन्द्र कृत "ज्वाला और ज्योति", श्री मधुकर खेर का "नव निर्माण", श्री विराज का "तिरगा झडा" और "सीमान्त का सतरी", श्री राजेन्द्र सक्सेना का "नवयुग का प्रारम्भ", श्री जयनाथ नलिन का "डिमोक्रैसी", श्री चन्द्रकिशोर जैन कृत "विद्रोही", श्री उदयशंकर भट्ट कृत "गांधी जी का रामराज्य", एकता चलो रे, "अमर अर्जुन", धर्म की परम्परा, सेठ गोविन्ददास के "सूखे सन्तरे", "कृषि यज्ञ", "भूदान यज्ञ", श्री रामचन्द्र तिवारी के "स्वतन्त्रता", "राष्ट्र निर्माण और शक्ति", "भारत और महिमा", श्री चतुरसेन शास्त्री का "पगध्वनि" इत्यादि नाटक गांधीवादी विचारधारा का

प्रतिपादन करने और प्रचार की दृष्टि से लिखे जा चुके हैं। नवीनतम नाटक विष्णु प्रभाकर का "शक्ति का स्रोत" और पं० हरिशंकर शर्मा कृत "बापू का स्वर्ग में स्वागत-समारोह" हैं। शर्मा जी ने सूर, तुलसी, रवीन्द्र, कबीर आदि दिवगत कवियों से स्वयं उन्हीं की काव्य शैली में जो स्वागत सूचक पद लिखे हैं वे काव्य की दृष्टि से बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी कृत "बा और बापू" में नया दृष्टिकोण है। इस संग्रह का "समानाधिकार" बहुत सफल नाटक है।

हिन्दी में काव्य नाटक

काव्य नाटक क्या है ?

इस वर्ग में, वे नाट्यकार आते हैं, जिनमें नाटककारों ने गद्य के स्थान पर पद्य का प्रयोग किया है। आधुनिक युग में इसके अन्तर्गत कई प्रकार की रचनाएँ आती हैं, जैसे भाव नाट्य, गीति नाट्य, पद्य एकांकी इत्यादि। इन वर्गों में बहुत कम अन्तर है। यदि सूक्ष्मता से देखें तो कह सकते हैं कि भाव नाट्य वे रचनाएँ हैं, जिनमें भावमयता, अनुभूति की तरलता और पात्रों के आन्तरिक संघर्ष का विशेष ध्यान रखा जाता है। भाव नाट्यों में मानसिक, कायिक, वाचिक तीनों माध्यमों द्वारा मानव अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की जाती है। दूसरे शब्दों में भावनाट्य वह नाटक है, जो अपने आन्तरिक अनुभवों से प्रेरित होकर वाह्य जगत में अपना मानस रूप स्थापित करता है। इसके द्वारा हृदय की तरंगें प्रकृति या जीवन की वाह्य अभिव्यक्ति से समन्वित होकर कायिक, मानसिक और वाचिक अभिव्यक्ति देती है।

गीति नाटक के तत्व

कुछ नाटककारों ने पद्य में लिखे सभी नाटकों को "गीति-नाट्य का नाम दे दिया है। "गीति-नाट्य का तात्पर्य है वह रचना जिसमें गीत अधिक हों, या वह नाटक जो केवल गीतों ही पर आधारित हों, जिसमें गेय छन्दों का प्राधान्य हो। गीति-नाट्यों में प्रचुर काव्य-सौष्ठव तथा गेय तत्व रहना चाहिये। कवित्व इसका प्राण है। इसमें सगीत भी रहता है, पर गीति नाट्य केवल संगीत भर ही नहीं होता गीति नाट्य में जहाँ ताल स्वर पर सगीत थिरकता है, वहाँ अभिनय कला और नाटकीयता स्वर में स्वर मिला कर नृत्य करती है। कविता, संगीत, एव अभिनय के अतिरिक्त उसमें एक अप्रतिहित कथावस्तु का भी तारतम्य होता है, और सबके अन्त में उससे किसी विशेष भाव या समस्या का भी वोध होता है। केवल बोध मात्र ही नहीं, उसमें मानव जीवन के किसी ऐसे बहुमूल्य क्षण का प्रदर्शन होता है, जो हमारे हृदय पर अपना

स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है। काव्य, सगीन, अभिनय कथा और भाव—ये सभी तत्व मिश्रित हो कर गीतिनाट्य को कुछ ऐसा नाट्य साहित्य बना देने हैं, जो विशुद्ध काव्य एव कला के समान पढ़ा भी जा सकता है, एव नाटकों के समान रगमच पर देखा भी जा सकता है, रेडियो पर सुना भी जा सकता है। शैली (shalley) आदि अँग्रेजी कवियों के गीति नाट्य आज तक पढे जाते हैं। पाठक हो, चाहे श्रोता या द्रष्टा सभी मनोनुकूल गीतिनाट्य का रस लूट सकते हैं।

प्रश्न उठ सकता है कि गीति नाट्य के उपर्युक्त पाँच प्रमुख तत्वों में सर्वाधिक प्रधान एव आवश्यक कौन है? वास्तव में सभी तत्व अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं। इसका निर्णय बहुत कुछ स्वयं नाट्यकार की प्रवृत्ति तथा प्रकृति ही करती है। जो नाट्यकार प्रमुखत. कथाकार होगा, उसकी रचना में कथा प्रधान हो जायगी एव शेष सभी अगों या उनमें से कुछ दबा लेगी। इसके अतिरिक्त जो नाट्यकार काव्य गुण में विशेष कुशल होगा, सम्भव है उसकी कथा शिथिल हो जाय। इतना ही नहीं, गीति नाट्य में लेखक को विशेष भावुक, अभिनय कला का पारखी एव सगीत का मर्मज्ञ भी होना चाहिये। चित्र कला की दृष्टि से उसमें इतना तो ज्ञान अवश्य होना चाहिये कि वह अपनी वर्ण्य वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर सके। उसे पढते ही पाठक अपनी कल्पना की तूलिका से मानस पटल पर वर्ण्य वस्तु का चित्र अकित कर सके।

इस प्रकार गीति नाट्य में कला अपने किसी विशेष अश में ही नहीं वरन् एक सम्पूर्ण तथा अविभाज्य रूप में प्रकट होती है। साहित्य, सगीत एव चित्र-कला की अपूर्व त्रिवेणी जहाँ अजस्र वेग से कलकल करती है, वहाँ और केवल कहीं पर हम गीति नाट्य के वास्तविक सौंदर्य, उद्भव तथा विकास के दर्शन करते हैं।

कुछ आलोचकों के विचार

"गीति नाट्य की विशेषता उसका काव्यात्व ही है। काव्यात्व से मेरा तात्पर्य कला पक्ष से नहीं, प्रत्युत भावमयता और रसात्मकता से है। गद्य के माध्यम से लिखे गये नाटकों में काव्यात्व की कमी रह सकती है, परन्तु गीति नाट्य में काव्यात्व की निहित अत्यावश्यक है ··· गीति नाट्य भी नाटक ही है। अतः उसमें नाटक के सभी तत्व, कार्य की अवस्थाएँ सघर्ष, व्यक्ति-वैचित्र्य आदि रहने आवश्यक हैं। गीति नाट्य को पद्य नाटक ही समझना चाहिये, क्योंकि पद्यबद्ध कथोपकथन रगमच पर अस्वाभाविक प्रतीत होगा।

गद्यमय नाटकों का थोड़ा पद्यमय कथोपकथन ही अप्राकृतिक जान पड़ता है, तब सारे नाटक का अभिनय पद्य में हो, यह न स्वाभाविक है और न सुसाध्य ही।"

—श्री शिवनाथ जी एम० ए०

"एक युग था जब हिन्दी नाटकों में पद्य की भरमार रहती थी। पात्रों के कथोपकथन तब कविता में चलते थे। नाटकीय होते हुए भी ऐसे कथोपकथन कानों को थोड़ा खटकते अवश्य थे, क्योंकि बात-चीत करने का यह स्वाभाविक ढग नहीं है। इस प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह हुआ और तब धीरे-धीरे कथोपकथन गद्य में लिखे जाने लगे। आगे चलकर कुछ यथार्थवादी नाट्यकारों ने तो गीतों को अपने नाटकों में स्थान नहीं दिया। इस प्रकार जहाँ साहित्यिक नाटकों में यह स्वाभाविक विकास हो रहा था, वहीं छायावाद काल में साहित्य की एक नई शाखा पनप रही थी जिसे गीति नाट्य का नाम दिया गया। यह नाम बहुत उपयुक्त नहीं है। यद्यपि किसी-किसी गीति-नाट्य (जैसे "अवध") में बीच बीच में मधुर गीत भी पाये जाते हैं, पर ये नाटक गीतियों या उद्गीतियों पर आधारित नहीं हैं; यहाँ तक कि सभी तुकान्त तक नहीं और कुछ तो मुक्त छन्द में हैं। अतः ये काव्य प्रधान तो हैं पर गीति प्रधान नहीं। ऐसी दशा में पता नहीं यह नाम कैसे चल पड़ा······ गीति नाटकों में घटनाएँ प्रायः अतीत से उठाई गई हैं। ये घटनाएँ ऐसी हैं जो अपनी मार्मिकता के कारण जनता की स्मृति में घर किये हुए हैं······ इनमें किसी ने करुणा के प्रसार, किसी ने भारतीय संस्कृति की झलक दिखाने, किसी ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर और किसी ने नैतिकता के स्वीकृत सिद्धान्तों पर आघात करने के लिये अपने कथानकों में थोड़ा परिवर्तन भी किया।"

—श्री विश्वम्भर "मानव" एम० ए०

"काव्य-नाटक काव्यत्व और रूपकत्व का संगमस्थल है। काव्य तत्व और नाटक-तत्व इसमें आकर एक ऐसे स्वरूप विधान की सृष्टि कर देते हैं, जिसमें काव्यत्व के कारण मानव जी के राग तत्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं, भावनाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं। नाटक-तत्व भी काव्य नाटक के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योग देता है। काव्य-नाटक में हमें मनुष्य का अन्तर्जीवन ही नहीं, बहिर्जीवन भी देखने को मिलता है। नाटकों में किसी न किसी कथावस्तु की अपेक्षा होती है; भले ही वह भाव प्रधान हो। कथावस्तु के अभाव में नाटक की रचना सम्भव नहीं। इसलिए काव्य नाटकों में कथावस्तु के महत्त्व से [illegible]

बहिर्जगत् का भी चित्र देखते हैं—इनमें मनुष्य का अन्तर्जीवन एक साथ ही चित्रित होता है। यह चित्रण हमें कहानी, उपन्यास, गद्यनाटक आदि साहित्य के दूसरे स्वरूप विधानों में भी देखने को मिलता है; लेकिन काव्य नाटक की सबसे बड़ी विशेषता, जो उसे साहित्य के दूसरे स्वरूप विधानों से पूर्णत. पृथक कर देती है, यह है कि काव्य नाटक में छन्दोबद्ध, लयपूर्ण और अलकृत भाषा का व्यवहार किया जाता है। काव्य नाटक तथा गद्य नाटक का अन्तर उसकी आत्मा का अन्तर है। काव्य नाटक की आत्मा, उसकी कथावस्तु, उसके पात्र, सब काव्यमय होते हैं ' उसका स्वरूप विधान (छन्द चित्र अलकार आदि) उस पर बाहर से आरोपित तत्व नहीं, उसकी अनिवार्यता है।"

—श्री सिद्धनाथकुमार एम० ए०

"यद्यपि गीति और भाव नाट्य दोनों में गीति तत्त्व उनका प्राण स्पन्दन होता है, जो भी भाव नाट्य के लिए अथ से इति तक गीत अपेक्षित नहीं है। सस्कृत में भाव नाट्यों का अच्छा प्रचलन था। "कर्पूर मजरी", "मालविकाग्नि मित्र", "विक्रमोर्वशीय" आदि इसी कोटि के नाटक हैं। गीति नाट्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त एक गुण चाहिए। वह है—नारी का बाहुल्य। साथ ही उसकी नायिका नारी होती है और रस उसका होता है रसराज शृंगार। रचना तन्त्र की दृष्टि से यही भावनाट्य कहलाता है।"

—आचार्य विनयमोहन शर्मा एम ए.

"ऐसे नाटकों में न कथा की प्रधानता होती है, न घटनाओं की प्रधानता। एकांकी नाटकों के समान इनमें भावों का एकीकरण तथा अन्तर्जगत के भावों का उथल पुथल अथवा सघर्ष ही प्रधान होता है। ऐसे नाटकों की गतियाँ उनके भावों मे अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बनाने का प्रयत्न करती हैं। उनमें शारीरिक प्रदर्शन की अपेक्षा मानसिक चिन्तन की ही प्रधानता होती है। प्राकृतिक दृश्य तथा उनका आकर्षक वर्णन इस चिन्तन में सहायक सिद्ध होता है।"

—श्री रामकृष्ण भारती

भाव नाट्य की प्रगति

हिन्दी नाट्य साहित्य में भाव नाट्यों के प्रचार प्रसार का श्रेय कविवर प० उदयशकर भट्ट को प्राप्त है। भाव नाट्य और गीति नाट्य का भेद भी भट्ट जी के काव्य नाटकों द्वारा प्रकट हुआ है। कुछ महानुभाव इन दोनों शैलियों को एक ही मानते हैं, किन्तु भाव नाट्य गीति नाट्य से भिन्न है। गीति नाट्य में

स्वर और गेय तत्वों (Lyrical elements) का प्राधान्य होने के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उतने सुचारु रूप से अभिव्यक्त नहीं हो पाता, जितने भाव नाट्य में। भावनाट्य में सदैव मनोवेग एक तरंग की भाँति वाणी से अभिव्यक्त होते हैं और आंगिक विकार तदनुरूप अभिनव करते चलते हैं। इसलिए भाव नाट्यों में प्रतीकों (Symbols) का होना आवश्यक है। जितनी प्रतीकों द्वारा तीव्र अभिव्यक्ति होगी, उतना ही वह भाव नाट्य अधिक सफल, गहरा और मार्मिक होगा। प्रतीक को जीवन-दर्शन के रूप में हार्दिक उद्‌गारों का साधन माना जाता है।

पं० उदयशंकर भट्ट के भाव नाट्य

उपरोक्त भेद को स्पष्ट करने के लिए हम पं० उदयशकर भट्ट कृत कुछ भाव नाट्य ले सकते हैं। "मत्स्यगधा" आपका सर्वाधिक लोकप्रिय और चिरस्थायी सौंदर्य युक्त भाव नाट्य है। इसकी मुख्य नायिका मत्स्यगधा है। मत्स्यगधा केवल एक पात्र ही नहीं है; वह एक स्त्री ही नहीं है, प्रत्युत वह नारी में व्याप्त यौवन की मद मस्त तरगों की प्रतीक (Symbol) है, जिससे वह संघर्ष करती है। अनग इस भाव नाट्य का दूसरा प्रतीक है, जो विश्व का सौंदर्य बन कर युग युग से प्राणी मात्र को अनुप्राणित और प्रेरित कर रहा है। अनग की विफलता, वेदना एक दूसरा प्रतीक बन कर मत्स्यगधा में अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार अनग और वेदना—इन दोनों का समन्वित रूप हमें मत्स्यगधा में मिलता है। इसी प्रकार "राधा" एक मात्र पुरुष के पौरुष के प्रति आसक्त प्रेम का प्रतीक है, जैसे प्रेम कई धाराओं में कई स्रोतों से उठ कर अपनी अभिव्यक्ति देता है और भाव सागर को आन्दोलित करता है। उसी का अभिव्यक्त कारण आपने "राधा" को प्रतीक मान कर इस काव्य नाटक में किया है।

१—मत्स्यगंधा

भट्ट जी का "मत्स्यगंधा" नारी की उद्दाम यौवन वासना का अध्ययन है। यहाँ काम जैसे मूर्तिमान हो उठा है! नाव में बैठे हुए ऋषि पराशर का मन धीरे धीरे रतिभाव से परिपूर्ण हो उठता है और वे संकोच त्याग के लिए प्रस्ताव करते हैं। मत्स्यगधा द्वारा प्रस्तुत तर्क, समाज की नीति, लोक लाज आदि की अनेक बाधाओं को अवहेलना करते हुए उनका कामातुर मन मत्स्यगंधा की दलित आकांक्षा, यौवन, लालसा, तथा वासना के तूफान को उद्वेलित करता है। यह सम्पूर्ण भाव नाट्य मत्स्यगंधा तथा पराशर ऋषि के हृदय की दुर्दमि लालसा, सेक्स का विश्लेषण, प्रकृति की उन्मत्त पुकार, समाज का नैतिक

बन्धन, यौवन का संघर्ष तथा अन्त में ऋषि की पराजय चित्रित करता है। इसकी विशेषता मनोवेगों का मार्मिक चित्रण है। यौवन का वर्णन देखिये—

सुभ्रु कहती है—

"मैं क्या हाय, मैं क्या जानूँ, जानती नहीं हूँ कुछ
मैं तो चाहती हूँ शुभ्र सुमन की मंजु माल
बन जाऊँ, बन जाऊँ शरद सुधांशु सी।
और नभ-हास का विलास लिए फैल जाऊँ
मुक्त नभ नीलिमा में तारिका प्रफुल्ल सी।
खोल निज हृदय बिखेर दूँ प्रमत्त मधु
जिससे सकल घन सुधा से अनन्त झर
विश्व को अमृत मय, विश्व को अजरतर,
विश्व को अमरतर कर दें अनन्त काल।"

(२) राधा—"राधा" (भावनाट्य) में अन्तर्जगत के भावों की उथल पुथल और मन के संघर्ष के अनेक चित्र हैं। शृंगार रस प्रधान होने के कारण भट्ट जी ने इसका प्रारम्भ बड़े ही मनोरम प्राकृतिक दृश्यों से किया है। श्रीराम कृष्ण भारती लिखते हैं, "राधा को प्रथम दर्शन में ही हम प्राकृतिक सौंदर्य से सम्पन्न युवती देखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति सौंदर्य ने राधा को थोड़ी देर के लिए बरबस खींच लिया हो, किन्तु यकायक किसी की स्मृति उसे शिथिल कर देती है और वह विवश होकर अपने अन्तःकरण को मसोसती हुई अन्तर के द्वार बन्द नहीं कर पाती और गुनगुना उठती है—

"मन अंधेरे में उजेले की रहा कर आस क्यों ?"

इतने में राधा की एक सखी विशाखा प्रवेश करती है। वह राधा को दुःखी देखकर उसके मन की बात पूछती है। राधा अपने मन की अशान्ति का कारण बताते हुए अन्त में कह देती है—

. . . .. मैं मग्न थी अपनी लहर में,
पर न जाने दृष्टि पथ में आगए वे क्या कहूँ री ?"

इसी से ही विशाखा कृष्ण के प्रेम का समाचार समझ लेती है और राधा को चेतावनी देना चाहती है कि वह क्यों ऐसी अनाधिकार चेष्टा कर रही है। राधा उत्तर में अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहती है—

"क्या करूँ, कैसे करूँ, सब कुछ हुआ विपरीत जीवन
कूप पर जाती कलश ले नीर लेने हेतु जब मैं,
पैर ले आते मुझे अनजान में यमुना नदी तट।

विशाखा के मुख से वर्णित भट्टजी का नारी-हृदय वर्णन दर्शनीय है—

"हाय, कितना सरल, कोमल, तरल है नारी हृदय यह,
दूध-सा मीठा, धवल, निश्चल बनाया कौन विधि ने,
जो पिघलता स्वयं गल-गल प्रेम औ सौंदर्य पाकर,
देखता कुछ भी न कोई नियम-बन्धन-धर्म जग का !"

दूसरी ओर विशाखा भी कृष्ण के प्रति निजी आकर्षण स्वीकार करती है। राधा इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि जैसे मोहन की मोहक छवि ने सब प्राणियों को सारे संसार को अपने वश में कर रखा हो। वह कहती है—

"कौन सा माधुर्य लेकर धरा पर उतरा कि उसने
बना डाला जगत पागल, व्यथित कर डाला हृदय री !"

फिर दोनों सखियाँ प्रियतम को प्राप्त करने के विषय में उपाय सोचती हैं। राधा विशाखा से उपाय पूछती है और विशाखा उसे प्रेम के विषय मार्ग का प्रदर्शन कराती है। राधा लोकलाज छोड़ने का निश्चय करते हुए कह उठती है। दूसरे दृश्य में कृष्ण की वंशी सुनकर राधा भागी हुई आती है—अस्त-व्यस्त और चंचल, किन्तु उद्विग्न मुखाकृति। राधा कृष्ण का सम्मिलन होता है। वह हृदय की अनेक वेदनाएँ कृष्ण से कहना चाहती है पर अन्ततः कहती है—

"कौन तुम अनुराग सागर; कौन तुम मन्मथ हृदय के ?
अरे बोलो, प्राण ! बोलो, तान ऐसी छेड़ दी क्यों ?
सभी कम्पित गात्र मेरा, सभी कम्पित विश्वकानन।"

कृष्ण के उत्तर की सरसता और मधुरता देखिए—

"विश्व कण कण में सुवासित व्याप्त है पीयूष सरिता,
जो हुई प्रच्छन्न नर की कालिमा से, छल कपट से,
उसी को जाग्रत किया है प्राण ने वंशी लहर से।
तुम पियो यह जग पिये, अक्षय मधुर-रस, प्राण पावन
हृदय में भरता रहे उच्छ्वास की गति-सी मनोहर।
मैं लहर हूँ एक उसकी, उसी सुख की, उसी स्वर की।"

तत्पश्चात् प्रेम और वासना विषयक वार्त्ता प्रारम्भ हो जाती है। जिसे राधा परम पावन प्रेम समझती है, कृष्ण उसे पागल बना देने वाली वासना कहते हैं। कृष्ण अपने पक्ष के समर्थन के हेतु अनेक तर्क उपस्थित करते हैं कि राधा अपने वचनों पर दृढ़ है। उसके हृदय का संघर्ष, उथल पुथल, प्रेमाधिक्य भट्ट जी ने बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है, देखिए—

"मैं न कुछ भी जानती हूँ, जानती हूँ एक केवल
मचलने वाला मिला मन, मनोरथ जिसमें सहस्रों।
किसी मधु में निमज्जित हो, स्वप्न का ससार रच कर,
गा रहे हैं क्या न जाने समझ पाना दूर माधव!
चाहती, क्या चाहती हूँ, कुछ नहीं, पर चाहती हूँ,
एक तुम हो, एक वंशी, मैं सुनूं सुनती रहूँ निशि
दिवस, पलपल, पक्ष ऋतु-ऋतु वर्ष युगकल्पान्तर भी।"

इस गीतिनाट्य में आध्यात्मिकता, गहन गम्भीरता और दर्शन का समावेश भी हो गया है। कृष्ण का यह उत्तर देखिए जिसमें उनका शुद्ध ब्रह्मरूप प्रकट हुआ है—

"मैं जगत का पाप, मिथ्याचार, छल, विद्वेष हरने,
और वास्तव धर्म की स्थापना का सुनिश्चित ले,
तथा नैतिक प्रेम का ही रूप जग को दिखाने को,
यहाँ आया हूँ महाव्रत यही मेरा सत्य राधे!
है न मुझमें पाप कोई, शुद्ध सत्य अनन्त अतिबल।"

तृतीय दृश्य में अति सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के मध्य अनमनो राधा प्रतीक्षा कर रही है। साथ ही मन ही मन गुनगुनाती जाती है—"चिर प्रतीक्षा, चिर मिलन की रात"। विशाखा के आने पर वह निज हृदय की निगूढ़तम मजुल भावनाओं को उस पर प्रकट कर देती है। इसी में विवाह प्रणाली पर भी कथोपकथन है। राधा का विचार है कि "सदा कन्या को वरण में स्वेच्छ होना चाहिए ही" इसी अवसर पर कृष्ण प्रकट होकर विवाह, समाज और धर्मादि के विषय में भी धारणाएँ व्यक्त की है देखिए—

"धर्म है केवल समाजोन्नति, स्व-उन्नति, राष्ट्र-उन्नति
आत्म चिन्तन, लोकहित कर्त्तव्यपालन बस यही तो।"

राधा का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भट्ट जी ने प्रकट किया है। राधा ससार की सब तकलीफें सहन करने को प्रस्तुत हैं, पर कृष्ण वियोग सहन नहीं कर सकती। निम्न पक्तियाँ देखिये कितनी मार्मिक है—

"हम महासागर कदाचित एक अंजलि में पिएँ सब
एक अंजलि में गगन घन पी सकें विद्युत् निगल लें।
भूधरों को चूर्ण कर भी सकें, इन कोमल करों से,
और विष भी पी सकें' मर भी सके पर जी न सकतीं?
······'बिन तुम्हारे'········।"

अन्तिम दृश्य में राधा शोकाकुल हो जाती है। उसका रोम-रोम जैसे व्यथा की पीड़ा से भीगा है, चित्त हा हा कार कर रहा है। विरह विदग्ध हृदय की एक झाँकी हमें उसके निम्न गीत से मिलती है। ऐसे गीतों के कारण भट्टजी का "राधा" एक अमर भाव नाट्य बन गया है—

"कौन युग से पथ निरखती
हृदय में अंगार भर कर श्वास में पीड़ा छिपाये,
प्राण का उपहार लेकर साधना में स्वर सजाये।
चल रही हूँ मैं युगों से—
युगों से पल-पग परखती।
स्वर सँजोये, प्राण साधे, हृदय का दीपक जला
शूल प्रतिमा, तिमिर ऊपर, तिमिर दाएँ, तिमिर बाएँ
चली मैं पग चाप सुनने
चली चुपचुप पग रखती।
फूल सा हँस झड़ चुका है, हृदय का उल्लास मेरा,
सतत पतझर से घिरा सा, अमा सा आकाश मेरा,
कहीं भी तुमको न पा कर,
आँसुओं में छवि पुलकती।"

इसी स्थान पर कवि ने नारदजी को लाकर उपदेश दिलाये हैं। विरह विदग्धा राधा पर इन नैतिक उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राधा मन ही मन गीत गुनगुनाती रहती है। सम्पूर्ण भाव-नाट्य राधा के उद्‌गारों से सना हुआ श्रृङ्गार प्रेम का अद्वितीय भावनाट्य है।

आलोचक श्री रामकृष्ण भारती का यह कथन सत्य है कि "नाटक का अन्त स्वाभाविक रूप से हुआ है। प्रेम की अन्तिम अवस्था भी यही एकाकार की भावना है। इसी भावनाट्य को जितनी बार पढ़ा जाय, उतना ही आनन्द प्राप्त होता है। भाषा प्रवाहशील तथा माधुर्य-रस में पूर्ण रूप से भरी हुई है। राधा और कृष्ण का जो आदर्श दृष्टिकोण नाटक कार ने प्रस्तुत किया है वृ

सर्वथा नवीन तथा मनन योग्य है। प्रस्तुत भाव नाट्य हिन्दी साहित्य में स्थायी स्थान प्राप्त करेगा।"*

(३) विश्वामित्र—जहाँ "मत्स्यगंधा" में नारी की प्यास, नर की आकांक्षा और मत्स्यकुमारी का प्रेमाख्यान है, "राधा" में राधा-कृष्ण का प्रेम, राधाय वियोग, मन की वृत्तियों का चित्रण है वह भट्टजी के "विश्वामित्र" भाव नाट्य का विषय मेनका और विश्वामित्र की प्रेम लीला, तथा शकुन्तला का जन्म, विश्वामित्र की तपस्या भग आदि का चित्रण है। इस भाव नाट्य का विषय स्त्री के रूप की विजय, और पुरुष के "अहं" की पराजय है। विश्वामित्र पुरुषत्व का प्रतीक है, तो मेनका नारी के रूप, शक्ति, सम्मोहन की जीती जागती प्रतिमा है। नाटककार का ध्यान मेनका की शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण करने की ओर विशेषरूप से गया है। मेनका नारी-शक्ति को पहचानती है। उसके विचार से यद्यपि नारी में शारीरिक शक्ति में हीन है तथापि उसमें हृदय का बल है, सौंदर्य का बल है, जिनकी शक्ति अपार है—

"सौंदर्य और रूप हमारे अस्त्र हैं,
जिनके वश त्रैलोक्य नाचता है, सखी,
यदि चाहूँ तो अभी तपस्वी को उठा
नाच नचाऊँ जड़ पुतली कर काम की।"

आलोचक विनयमोहन शर्मा उर्वशी और मेनका के चरित्रों की तुलना करते हुए सत्य ही लिखते हैं—"उर्वशी पुरुष को पत्थर से कड़ा समझी है, इसलिए वह विश्वामित्र की समाधि भग को अशक्य समझती है, परन्तु मेनका का नर प्रकृति का अध्ययन यथार्थ सिद्ध होता है। जो पुरुष अहं की कच्ची नींव पर खड़ा है और स्वार्थ के सोपानों पर चढता है, उसका पतन अवश्यंभावी है। मेनका उर्वशी के समान नर द्रोहिणी नहीं है, वह नर को नारी-रूपी हृदय की प्यास मानती है। वही उसमें प्रेरणा भरता है। नारी के विना जिस प्रकार पुरुष अपूर्ण रहता है, उसी प्रकार पुरुष के बिना नारी भी अपूर्ण है। नर नारी दोनों का एकीकरण मनुजता है। नारी की प्रतीक मेनका के सौरभोच्छ्वास से तपोवन में वसन्त छा जाता है, मादकता भर जाती है। तपोवन विश्वामित्र की आँखों में सौंदर्य दर्शन की उत्कंठा भर जाती है और हृदय किसी अभाव से विकल होने लगता है''' पुरुष का अहं हार जाता है, और स्त्री का रूप

* देखिए श्री रामकृष्ण भारती की आलोचना "राधा" सा० सन्देश भाग ५ अंक ५ पृष्ठ ३८।

विजयी होता है। विश्वामित्र के स्वर में पुरुष का प्रबुद्धत्व, महामुनित्व बोल उठता है—

"सब प्रपंच आध्यात्म एक तुम सत्य हो।
यह सौंदर्य समग्र सृष्टि का मूल है।

जब शकुन्तला का जन्म होता है तब ऋषि को वास्तविकता का बोध होता है उनके मुख से सहसा निकल उठता है, "देव हा! गरल अमृत के धोखे में मैं पी गया।" और वे अपने ही बनाये स्वर्ग को नरक तुल्य जान कर पुनः भाग खड़े होते हैं। ऋषि का यह पलायन वाद ही "विश्वामित्र" नाटक का पर्यवसान है। निवृत्ति का प्रवृत्ति में परिवर्त्तन तथा प्रवृत्ति का निवृत्ति की ओर प्रत्यावर्त्तन ही "विश्वामित्र" की कथावस्तु है।"*

उपरोक्त तीनों भाव नाट्य गीतितत्व (Lyrical elements) में भरपूर हैं। नारी पात्रों की प्रधानता है। दो का नामकरण—"मत्स्यगंधा" और "राधा" उनके प्रधान पात्रों के नामों पर ही हुआ है। उन्हीं की आन्तरिक मनोवृत्तियों, सूक्ष्म भावों और अन्तर्संघर्ष को प्रकट किया गया है। कथावस्तु का चुनाव पुराणों से हुआ है। तीनों नारियों के इर्द-गिर्द समग्र घटवाचक्र चलते और उन्हीं में केन्द्रित रहते हैं। इन तीनों नारियों के व्यक्ति अनोखे हैं। वे अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखती हैं।

डा० सत्येन्द्र के अनुसार, "मत्स्यगंधा के लिए अनन्त यौवन का वरदान शाम्य सिद्ध होता है, राधा के प्रेम में दिव्य भक्ति की परिणति है। कवि के सभी पात्र कवित्व मय हैं। उन्होंने समाज के रूढ़ि-विरोधी व्यक्तित्वों की पुराण से अवतारणा कर भारतीय समाज को उसका मुख उसके दर्पण में ही दिखा दिया है। कवित्व के साथ बौद्धिक योग इन भाव नाट्यों में विलक्षण हुआ है। हिन्दी का ऐसा कौन कवि है जो इस प्रकार मानव जीवन की सत्ता सम्बन्धी मूल तत्वों का उद्घाटन और प्रतिपादन इस प्रकार मूर्त रूप में कर सका है।"

नए भाव नाट्य

प० उदयशकर भट्ट के तीन नवीनतम भावनाट्य प्रकाशित हुए हैं—(१) कालीदास (२) मेघदूत (३) विक्रमोर्वशी। ये तीनों ध्वनि रूपकों के रूप में प्रसारित भी हो चुके हैं और काव्य की दृष्टि से सर्वत्र प्रशंसित रहे हैं। भट्ट जी ने "कालीदास" में कविकुल शिरोमणि कालीदास के हृदय मन्थन को स्पष्ट किया

* देखिये श्री विनयमोहन शर्मा कृत लेख "उदयशकर भट्ट के भावनाट्य" "वीर अर्जुन" २० फरवरी १९५०।

है साथ ही उनकी कलाकृतियों के मर्म का भी उल्लेख किया है। "मेघदूत" और "विक्रमोर्वशी" कालीदास के रूपान्तर हैं। कोमल और उदार भावनाओं का बड़ा सुन्दर समावेश है। कवि कालीदास की मौलिकता तथा भावनाओं का आस्वाद अपने भव्य रूप में मिलता है। ध्वनिरूपक की टेकनीक का सफल निर्वाह है। राष्ट्रीय नवनिर्माण तथा सामयिक समस्याओं को दृष्टि में रख कर नवचेतना उत्पन्न करने के लिए भट्ट जी ने कुछ ध्वनि रूपकों की रचना की है। ये गाधीवादी विचारधारा से अनुप्राणित हैं। सास्कृतिक पुनिर्माण सम्बन्धी रूपकों में भट्ट जी के १—गाधीजी का रामराज्य २—एकला चलो रे ३—अमर अर्चना ४—हिमालय के शिखर से आदि सफल हैं।

हिन्दी के नाटक साहित्य को भट्टजी के भाव-नाट्य एक अनूठी देन हैं, और मानना पड़ेगा कि श्री जयशकर "प्रसाद" के बाद इस दिशा में भट्टजी को ही स्पृहणीय सफलता मिली है। +

गीति नाट्य की प्रगति

गीतिनाट्यों की दिशा में प्रथम प्रयत्न "प्रसाद" ने अपने "करुणालय" में किया है। प्रारम्भिक प्रयोग-युग की रचना होने के कारण इसमें काव्य और नाटकत्व का सम्मिश्रण तो है किन्तु यह अपरिपक्व चीज है। इसमें राजा हरिश्चन्द्र की कथा को गीति नाट्य के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। "इस नाटक में गीति-नाट्य के प्राण मानसिक सघर्ष का बड़ा दुर्बल प्रयोग किया गया है। राजा हरिश्चन्द्र की कर्तव्य-भावना और पुत्र प्रेम के बीच सघर्ष बड़ा शिथिल है। करुणालय वैदिक काल की विश्रृंखल कर्म भावना पर एक करुण व्यग्य है। न कवित्व की दृष्टि से और न नाट्य की दृष्टि से यह सफल रचना कही जा सकती है।"* कथा-सूत्र का निर्वाह भी ठीक नहीं हो पाया है। अन्तसर्घष प्राय. नहीं के बराबर है। फिर भी यत्र-तत्र 'प्रसाद' के कवित्व की स्पष्ट झाँकी मिल जाती है। एक प्राकृतिक दृश्य की झाँकी देखिये—

अहा स्वच्छ नभ नील, अरुण रवि-रश्मि की
सुन्दर माला पहन, मनोहर रूप में,

+ वही।

* डा० नगेन्द्र "आधुनिक हिन्दी नाटक" पृष्ठ ६६।

नव प्रभात का दृश्य सुखद है सामने,
उसे बदलता नील तमिस्रा रात्रि से
जिसमें तारा का भी कुछ न प्रकाश है
प्रकृति मनोगत भाव-सदृश जो गुप्त, वह
कैसा दुखदायक है?.................. ।"

प्रसाद के प्रसादत्व की झलक इस गीति-नाट्य में प्राप्त हो जाती है।

दूसरा गीतिनाट्य श्री मैथिलीशरण गुप्त का "अनघ" है "यह एक सैद्धान्तिक नाटक है, जिसमें युगधर्म के प्रतीक की सृष्टि ही मुख्य है। पद्म निश्चित ही गांधी नीति का प्रतीक है। वस्तु की एकता "अनघ" में मोटे रूप में पाई जाती है। घटनाएँ यन्त्र प्रेरित सी अन्त में मुख्य कार्य में पर्यवसित हो जाती हैं।" यह नाटक चरित्र प्रधान है। इसका उद्देश्य पद्म के चरित्र को स्पष्ट करना रहा है इसकी दुर्बलता यह है कि इसमें गीति तत्त्व बहुत क्षीण हो गया है। कवि ने इसमें क्रियाशीलता को प्रमुखता रखी है, जिससे गीति-तत्त्व में व्यवधान उपस्थित होता है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी रचित "स्वर्ण विहीन" दस दृश्यों में राष्ट्रीय भावनाओं को मुखरित करने वाली प्रबुद्ध भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति है। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से भारत की राष्ट्रीय जागृति उपस्थित की गई है। किस प्रकार की प्रसुप्त स्वातन्त्र्य भावना गाँधीजी की प्रेरणा से जागृत हुई, जनता ने कैसे धीरे-धीरे अपने अतीत गौरव, देशप्रेम, उत्तरदायित्व को सम्हाला और क्रान्ति की ये सब तत्व इस नाटक में उभारे गये हैं। मूल भावना राष्ट्रवाद है। कृषक जीवन की एक झाँकी देखिये—

रुग्णा—"व्यथा, कराह, अभाग्य, दुःख के
ही उठते तूफ़ान।
हम हैं कृपक, जगत को करते,
हैं जो जीवन-दान।
आज उन्हीं के बालक भूखे—
सोये हैं अनजान।
....

अगर नहीं दे सकते सबको
अन्न वस्त्र का दान—
तो क्यों रचते हैं भारी भव
वे भोले भगवान ?

एक कृषक रुग्ण भार्या, भूखे बच्चों का उदर पालन करने के लिए मजदूरी के लिए चलता है पर नृप के सैनिक उससे बेगार लेने के लिए उसे पकड़ लेते हैं। वह किसी प्रकार छूट कर आता है, तो देशभक्त सन्यासी, मोहन, और विजय के साथ मिल कर अत्याचारी राजा की पशु-सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति का स्वर ऊँचा करते हैं। स्वयं राजकुमारी लालसा क्रान्तिकारियों के साथ मिल जाती है। अन्त में सत्य की विजय होती है पशु बल पराजित होता है। नाटक का कथानक शिथिल है। जनक्रान्ति के मध्य लालसा का प्रेम प्रसग मूलभाव को निर्बल कर देता है। प्रबुद्ध भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति मोहन के चरित्र में मूर्त्तिमान हो उठी है। लालसा के चरित्र में प्रेम साकार हो उठा है। "स्वर्ण-विहीन" में नाट्य तत्व की शक्ति क्षीण है।

श्री भगवतीचरण वर्मा का "तारा" वासना तथा धर्म भावना का अन्तःसंघर्ष प्रस्तुत करता है। तारा उद्याम यौवन से परिपूर्ण युवती है। वह अपनी यौवन-सुलभ वासनाओं को नियन्त्रित नहीं कर पाती, दूसरी ओर कर्त्तव्य उसे पतन के मार्ग से रोकता है। वासना और बुद्धि का सघष सुन्दरता से चित्रित किया गया है। इसमें अन्तर्संघर्ष होने के कारण नाटकत्व की प्रतिष्ठा हो गई है। "तारा एक सफल गीतिनाट्य है यद्यपि उसमें रग सकेतों की कमी है· · परन्तु मन का सघर्ष बड़ा सबल और मनोवैज्ञानिक है। भावना में नाटकोपयुक्त उत्थान-पतन है, वस्तु के विधान में एकता है, गठन है वासना की रगीनी और शक्ति दोनों के सुन्दर चित्र हैं।"* वर्माजी के दो नवीनतम गीति नाट्य "महाकाल" (१९५२) और "द्रौपदी" (१९४५) हैं। पहले में पाँच दृश्यों में काल की स्थिरता का वर्णन है। इसका अन्त बड़ा गम्भीर हो उठा है। महाकाल की ये पंक्तियाँ देखिए कैसी गम्भीर बन पड़ी हैं—

"बस ! केवल मैं ही स्थिर हूँ !
मेरी निष्क्रियता के स्पन्दन हैं भ्रान्ति-ज्ञान,
चेतने पराजित हो और अति थकित हो तुमे,

---

* डा० नगेन्द्र

प्रथम दृश्य में नालन्दा के एक खडहर में गैरिक वस्त्र पहिने हुए कल्पना खडहर के भग्न प्राचीरों की ओर जिज्ञासा से देखती हुई गाती है, नेपथ्य से इतिहास उत्तर देता है और धीरे-धीरे मगध के इतिहास के दृश्य खिचते जाते हैं। "हिमालय का सन्देश" में

"शान्ति चाहते हो तो पहले सुमति शून्य से मांगो,
नवयुग के प्राणियो ! अर्ध्वमुख जागो, जागो, जागो !
धर्म को श्रद्धा को मत त्यागो ।

का सदेश दिया गया है। कविवर "निराला" जी का "पचवटी प्रसग" में कवि की दृष्टि पचवटी में राम सीता और लक्ष्मण के जीवन पर पाई गई है। "इस जीवन का वर्णन करने में कवि पात्रों के हृदय में प्रकृति के प्रति प्रेम, स्वच्छन्द जीवन के आनन्द, सौन्दर्य चित्रण एव ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की चर्चा के लिए भी अत्यन्त स्वाभाविक रूप से अवकाश निकाल लेता हैं। "पचवटी प्रसग" में यों भाव और कल्पना का प्रयोग कम नहीं है। पर कहीं-कहीं कवि कुछ अधिक चिन्तन प्रधान हो गया है। व्यष्टि समष्टि माया और ज्ञान, सृष्टि स्थिति प्रलय आदि पर व्याख्यान ऐसे हैं, जिनके कारण कवित्व क्षीण हो उठा है और नाटकीयता को आघात पहुँचता है।" +

कविवर सुमित्रानन्दन पत के "ज्योत्सना" (१६३४), "रजत शिखर" और "शिल्पी" नामक काव्य नाटक प्रकाशित हुए हैं। पत जी कवि पहले हैं, नाट्यकार बाद में। अतः इन नाटकों में भी प्रधानत आपका कवि रूप ही प्रकट हुआ है। "ज्योत्सना" पाश्चात्य शैली का एक रूपक है, मनुष्य की भावनाएँ इसके नाना पात्र हैं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में, "इसकी कथावस्तु बहुत ही मामूली है ससार में सर्वत्र ऊहापोह और घातक क्रान्ति देखकर इन्दु उसके शासन की बागडोर अपनी महिषी ज्योत्स्ना को दे देता है, जो स्वर्ग से भू पर आकर पवन और सुरभि अथवा स्वप्न और कल्पना की सहायता से ससार में प्रेम का नवीन स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक, जीवन का नवीन आदर्श स्थापित कर देती है।" यह नाटिका दार्शनिक तत्वों से परिपूर्ण है।

"रजतशिखर" में छ नये काव्य रूपक हैं—"रजत शिखर", "फूलों का देश"; "उत्तर शती"; 'शुभ्र पुरुष' ' विद्युत वसना" और "शरद चेतना" इनमें कवि आधुनिक जीवन की नाना समस्याओं से देश की राजनैतिक चेतना, वैज्ञानिक जागृति आदि से सम्बन्धित है। जहाँ "ज्योत्स्ना" में दार्शनिक तत्वों का ही

+श्री विश्वम्भर मानव "गीति नाट्य और काव्य रूपक"

प्राधान्य था। इस संग्रह में केवल एक रूपक "रजत शिखर" (जिसका सम्बन्ध अरविन्द दर्शन से है) को छोड़कर अन्य भौतिकवाद पर आत्मवाद की विजय से सम्बन्धित हैं। "फूलों का देश" में वैज्ञानिक आध्यात्मिक चेतना मुखरित हुई है। "उत्तर शती" में गत महायुद्धों के संघर्ष का चित्रण है किन्तु रूपक के अन्त में आशावाद का सन्देश है। "शुभ्र पुरुष" गाँधी जी के व्यक्तित्व, महत्व, तथा उनके दिव्य सन्देश से सम्बन्धित है। "विद्युत वसना" में स्वाधीनता के विकास की कहानी है। कवि पन्त प्रकृति के उपासक हैं। वे प्रकृति को सजीव मानते हैं। अतः "शरद चेतन" रूपक में प्रकृति का सौन्दर्य उडेल दिया गया है। इसमें नाना ऋतुओं का सौंदर्य चित्रित है विशेषतः शरद ऋतु का।

डा० कमलेश के शब्दों में "अन्तिम रूपक को छोड़कर शेष में भारतीय दर्शन और आध्यात्म की गरिमा का उद्घोष है। कुछ पारिभाषिक शब्दों को छोड़कर पंत जी की भाषा सर्वत्र सरल और बोधगम्य है। ओज गुण इनकी विशेषता है। प्रकृति प्रेम तो कवि के प्राणों का अंग है। राजनीति और विज्ञान की विभीषिका के ऊपर आध्यात्म की प्रतिष्ठा का कवि की प्रयत्न सराहनीय है।"

श्री गिरिजाकुमार माथुर का "इन्दुमती" इन्दुमती और अज के विवाह से सम्बन्धित मधुर शृंगार रस प्रधान गीति नाट्य है। जब इन्दुमती अज के गले में स्वयवर माला डालती—उस दृश्य का सुन्दर वर्णन गायक इस प्रकार करता है।

"मूर्तिमय अनुराग जैसी वह स्वयंवर माल
कामिनी ने ज्यों भुजाएँ कंठ में दीं डाल,
इन्दु अज का मिलन जैसे सिन्धु सुरसीर धार
ज्यों शरद के चन्द्रमा से चाँदनी सुकुमार।"

इस गीति नाट्य में तीन सुन्दर गीत हैं, विशेषतः "तुम छवि रुचिरा, यौवन मधुरा" बड़ा मार्मिक है।

नवयुवक कवि सिद्धनाथ कुमार एम० ए० के "कवि" तथा "सृष्टि का साँझ" आदि काव्य नाटक प्रकाशित हुए हैं। "कवि" में वास्तविकता और यथार्थवाद का संदेश है। "सृष्टि की साँझ" में युद्ध क्या है? क्यों होते हैं? विश्व शान्ति के लिये क्या युद्ध अनिवार्य है आदि प्रश्नों पर विचार किया गया है। "लौह देवता" में यंत्र युग के विकास का चित्र उपस्थित किया गया है। "संघर्ष" में मूर्तिकार पंकज के मन में सांसारिकता और कला साधना के मध्य संघर्ष चित्रित किया गया है। "विकलांगो का देश" में सामाजिक विद्रूपताओं को

उभारा गया है। "बादलों की शाम" भाग्यवाद का विश्लेषण है। काव्य सृजन की सामर्थ्य, नाटकीयता, तथा वर्तमान युग की वास्तविकताओं के चित्रण की दृष्टि से सिद्धनाथ जी के काव्य नाटक बड़े सफल रहे हैं। श्रीमती उषादेवी मित्रा का "प्रथम छाया" सुन्दर भाव नाटिका हैं। इसमें सृष्टि निर्माण और विकास की रूपरेखाएँ प्रस्तुत की गई हैं। श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात कृत "कालदहन" में पौरुष का कर्मठ सन्देश है। इस प्रकार हिन्दी में काव्य नाटक नवीनता काव्य सौष्ठव, और नई समस्याओं की दृष्टि से उत्तरोत्तर विकासोन्मुख हैं।

हिन्दी में रंगमंचीय नाटक

रंगमंच का महत्त्व

नाटक की उन्नति रगमच के साथ संयुक्त है, क्योंकि नाटक और रगमंच का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। नाटक दृश्य काव्य है; अर्थात् वह मनुष्य के चर्म-चक्षुओं से दृष्टिगोचर होने वाला काव्य-रूप है। स्टेज पर कुछ पात्र आते हैं। वे अपने अभिनय द्वारा मनुष्य के मन के हाव-भाव क्रियाएँ इत्यादि प्रकट करते हैं, दर्शक गण इन्हें देखकर हृदय में उन भावों का अनुभव करते हैं। अतः नाट्य-कला एक सामाजिक कला है, जिसे जनता देखती और अपने मनोरंजन के साथ रुचि को परिष्कृत करती है। नाटककार रगमच के माध्यम से नाना समस्याएँ, मनुष्यों के चरित्र, सभ्यता और सस्कृति के स्वरूप और सुधार के उपाय दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। रंगमंच ही वह तत्त्व है, जिसे दृष्टि में रख कर नाटक का निर्माण होना आवश्यक है। नाटक के रगमंचीय माध्यम द्वारा नाटककार जनता से सम्पर्क स्थापित कर अपना सन्देश उन्हें दे सकता है, उनकी समस्याओं का निदान उपस्थित कर सकता है और मनोरंजन भी कर सकता है।

प्रायः देखा जाता है कि जिन-जिन देशों में समृद्ध रगमच रहा है, उन देशों में नाटकों ने विशेष उन्नति की है। नाटक का प्राण अभिनयशीलता है। नाटक तो जीती जागती वस्तु है। रगमच पर ही उसका जीवन है। रगमच की आवश्यकताओं के अनुसार ही सफल नाटकों का निर्माण होता आया है। संस्कृत में नाटकों की पर्याप्त उन्नति दिखाई देती है, कारण, अतीत भारत में रगमच की एक प्रशस्त परम्परा थी। सस्कृत नाट्यकार रगमंच को दृष्टि में रखकर नाटकों का निर्माण किया करते थे। भारत में बगला नाटक भी समुन्नत रहे हैं। इसका एक कारण यह है कि हिन्दी की अपेक्षा बगाल में रंगमंच की सुविधाएँ थीं। बगाली लोग स्वय भी नाटकों के अभिनय में भाग लेते रहे हैं। पर्दा प्रथा भी वहाँ नहीं है। अंग्रेजी साहित्य में उस युग में नाटकों का विशेष प्रचार और उन्नति हुई जिसमें रगमंच की सुविधाएँ रहीं। शेक्सपीयर के सब नाटक अभिनय की दृष्टि से ही निर्मित हुए और बहुत दिनों तक जनता का मनोरजन

और शिक्षण करते रहे। बाद में उन्हें छापा गया। बर्नार्ड शा के नाटक रंगमंच से संबद्ध हैं। वास्तव में नाटकों का मूल स्रोत रंगमंच ही है।

हिन्दी रंगमंच का विकास

हिन्दी में रामलीला, रासलीला, सॉंग, नौटकी, कठपुतली आदि के क्रमिक विकास द्वारा रंगमंच का विकास हुआ। इन सब लोकनाट्यों में एक छोटा सा रंगमंच और उस पर अभिनय की व्यवस्था रही है। संगीत की इनमें प्रधानता थी और संवादों द्वारा कथावस्तु (Plot) का विकास होता था। हमारे प्रारम्भिक नाटकों जैसे हनुमन्नाटक, समय सार नाटक, संस्कृत से अनूदित "प्रबोध चन्द्रोदय" आनन्द रघुनन्दन, करुणा भरण, शकुन्तला सभासार आदि में संवादों की प्रधानता रही है। ये छन्दोबद्ध हैं। अंक दृश्य रंग सूचनाएँ (Stage directions) आदि की इनमें कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसे संवाद "मानस" और "रामचन्द्रिका' में पाये जाते हैं।

भारतेन्दु-युग के अधिकांश नाटक रंगमंच को दृष्टि में रख कर ही निर्मित हुए थे। स्वयं भारतेन्दु जी के "भारत दुर्दशा", हरिश्चन्द्र", "नीलदेवी" आदि नाटक रंगमंच पर अभिनीत हुए। अपने "नाटक" शीर्षक निबंध में भारतेन्दु जी ने स्वयं लिखा था, "हिन्दी भाषा का जो सबसे पहला नाटक खेला गया, वह "जानकी मंगल" था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य नारायणसिंह के प्रयत्न से शुक्र ११ सम्वत् १६२५ में बनारस थियेटर में यह बड़ी धूमधाम से खेला गया था।" इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु जी रंगमंच को प्रधानता देते थे। उनके वर्ग के अन्य नाट्यकार (बदरीनारायण चौधरी, श्रीनिवास जी, राधाकृष्णदास) भी रंगमंच को दृष्टि में रख कर नाटक लिखा करते थे।

हिन्दी नाटक का उस समय कोई अपना निजी स्वतन्त्र रंगमंच न था। रास, यात्रा, लीला, स्वांग आदि जन रंगमंच के प्रचलित स्वरूप साहित्यिक नाटकों के लिए उपयुक्त न थे। साधारण अविकसित रंगमंच पर ही भारतेन्दु वर्ग के नाटक खेले जाते रहे। पारसी रंगमंच का जन्म उन दिनों हुआ जब भारतेन्दु जी अपना साहित्यिक कार्य समाप्त कर चुके थे। उन्हें पारसी रंगमंच पर अभिनय किये जाने वाले उर्दू मिश्रित सस्ते कलाहीन नाटकों से कोई सहानुभूति न थी। संस्कृत के नाटकों तथा उनकी प्रणाली को आदर्श मान कर ही वे चले थे। "उन्होंने अनेक नाटक कम्पनियों की स्थापना करा कर जनता की रूचि को सुसंस्कृत करने का उद्योग किया और पारसी कम्पनियों के बुरे प्रभाव से उनको

रक्षा की। अपने समकालीन लेखकों और मित्रों को प्रोत्साहन देकर नाटक साहित्य की क्षतिपूर्ति का अथक प्रयत्न किया।"*

मुख्य रूप से दो प्रकार की नाटक मण्डलियों द्वारा रंगमचीय नाटकों का जन्म हुआ है १—व्यवसायी २—अव्यवसायी। प्रथम वर्ग में पारसी वर्ग की ओरिजनल थियेट्रिकल कम्पनी, विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी, अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी और न्यू अल्फ्रेड आदि कम्पनियाँ आती हैं। इनके प्रभाव से उर्दू हिन्दी मिश्रित रंगमंचीय नाटक लिखे गए। न्यू अल्फ्रेड की प्रेरणा से प० राधेश्याम कथावाचक ने अनेक रगमचीय नाटक लिखे थे। इनके अतिरिक्त काठियावाड़ की सूर विजय और मेरठ की व्याकुल भारत मण्डली रगमचीय नाटक लिखाती रही। इन कम्पनियों के नाटक प्रायः पौराणिक धार्मिक पद्य की भरमार, संगीत से पूर्ण होते थे। व्यवसाय उनका मुख्य उद्देश्य था। वे जनता की रुचि का ध्यान न रखकर केवल अर्थ लाभ मात्र के लिए रगमंचीय नाटक रखते थे। इसे उर्दू रगमच कहना अधिक उपयुक्त होगा। इससे भारतीय संस्कृति को हानि हुई और हिन्दी भाषा की भी उन्नति न हो सकी।

हिन्दी रंगमंचीय नाटक

रगमचीय दृष्टि से लोकप्रिय नाट्यकारों में प्रमुख आगाहश्र काश्मीरी, प० राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद, बेताब, कृष्णचन्द्र जेबा, हरिकृष्ण जौहर और तुलसीदत्त शैदा हैं। हश्रजी के "सूरदास", "गगावतरण", "वनदेवी", सीता वनवास, भीष्मप्रतिज्ञा कथावाचक जी के "परिवर्त्त", मशरकी हूर, श्रीकृष्णावतार, श्रवणकुमार, भक्त प्रह्लाद, बेताब कृत "गोरखधन्धा", महाभारत, जहरी साँप, रामायण, "कृष्णसुदामा" आदि उल्लेखनीय नाटक हैं।

अव्यवसायी कम्पनियाँ विशेषतः स्कूल और विश्वविद्यालयों में तथा नाटक प्रेमी व्यक्तियों द्वारा स्थापित हुई, काशी प्रयाग और कानपुर इनके केन्द्र रहे। भारतेन्दु जी के घराने के नाम पर भी एक मण्डली (भारतेन्दु नाटक मण्डली) का निर्माण हुआ था। काशी की श्री नागरी नाट्य कला प्रवर्तन मण्डली, कलकत्ते में "हिन्दी नाट्य परिषद" आदि उल्लेखनीय हैं। इस वर्ग ने सुरुचिपूर्ण नाटक साहित्य का प्रसार और हिन्दी भाषा के विकास का विशेष ध्यान रखा था। प० माधव शुक्ल कृत "सीय स्वयवर" आनन्दप्रसाद खत्री कृत "गौतमबुद्ध" "कृष्णलीला", हरिदास माणिक कृत "सयोगिता हरण", पाण्डव प्रताप आदि उल्लेखनीय नाटक हैं।

---

* देखिए—डा० सोमनाथ गुप्त कृत "हिन्दी नाटक सा० का इति" पृष्ठ ८४

"प्रसाद" युग में जो नाटक लिखे गए श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत 'तिलोत्तमा' "चन्द्रहास", प्रेमचन्द कृत "कर्बला", "प्रेम की वेदी", बदरीनाथ भट्ट बी० ए० कृत "वेनचरित्र", मिश्रबन्धु "कृत" "पूर्व भारत", सुदर्शन कृत "अंजना" वे सुपाठ्य अवश्य थे, पर रंगमंच पर उनका जीवन न था। "प्रसाद" जी ने स्वयं साहित्यिता और पठनीयता की ओर अधिक ध्यान रखा, रंगमंच से विमुख रहे उनके युग का एक नाट्यकार श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ही एक ऐसा रहा जिसने इस ओर विशेष प्रयत्न किया। पन्तजी के "वरमाला", "अन्तःपुर का छिद्र" और "राजमुकुट" आदि नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल रहे। इसका कारण कदाचित यह है कि आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों में पन्तजी को सब से व्यापक और सीधा अनुभव है।

नवीन हिन्दी नाट्यकारों में श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' और श्री हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल रहे हैं। "मिलिन्द" जी का "प्रताप प्रतिज्ञा" अनेक बार स्कूल और कालेजों में सफलता पूर्वक अभिनीत हुआ है। इसके उपरान्त उसी कोटि के दो और नाटक लिखे हैं—"समर्पण और "गौतमनन्द"। इन दोनों में वही ओज और नाटकीय भावोत्तेजना है। अभिनय की दृष्टि से "गौतमनन्द" नाटक की वर्तमान टेकनीक के अधिक निकट है। "मिलिन्द" जी के नाटकों की सर्वाधिक विशेषता उनकी सरल अभिनेयता मानी जा सकती है। उन्होंने अपने तीनों नाटक रंगमंच की दृष्टि से लिखे हैं।

श्री हरीकृष्ण "प्रेमी" के नाटकों में अभिनय कला प्रशंसनीय है। स्कूल कालेजों में अनेक बार "प्रेमी" जी के "रक्षाबंधन", "स्वप्न भंग", "छाया"; "बंधन" और "उद्धार" आदि का अभिनय हो चुका है। इस नाटक के रंगमंचीय सफलता का मुख्य कारण यह है कि इनका नाट्य विधान सरल और समय ढाई घंटे के लगभग है। प्रायः एक दृश्य आने वाले दृश्य के निर्माण में बाधक नहीं है।

प्रो० नलिन जी लिखते हैं, "नाटकीय अभिनय-सम्पन्नता की दृष्टि से "प्रेमी" जी का उद्धार बहुत ही उच्च कोटि का नाटक है। इसमें रंग सूचनाएँ या निर्देश भी विस्तृत, श्रेष्ठ और अभिनय युक्त, लाभप्रद और वातावरण उपस्थित करने वाले हैं। "उद्धार" जैसे निर्देश किसी अन्य नाटक में नहीं। इन निर्देशों से वस्त्र रूप सम्पादन (make-up) तथा अभिनेता के चुनाव में पूरी-पूरी सहायता मिलती है। "प्रेमी" जी की भाषा नाटकोचित, पात्रोचित और परि-

स्थिति के अनुकूल होती है। वह स्वच्छ प्रभावशाली, चलती हुई चुस्त और चुभती हुई है—सर्वथा अभिनय के उपयुक्त। ×

प० लक्ष्मी नारायण मिश्र में अभिनेयता का गुण सर्वाधिक पाया जाता है। यह कहना अत्युक्त न होगा कि रंगमंच को दृष्टि में रखकर ही उनके नाटकों का निर्माण हुआ है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक अंक में एक लम्बा दृश्य ही रखते हैं। कुल नाटक में तीन अंक होते हैं। बार-बार दृश्य परिवर्तन उन्हें रुचिकर नहीं है। "सिंदूर की होली" और "वत्सराज" दृश्य-विधान की दृष्टि से अनमोल नाटक हैं। कौतूहलजनक घटनाएँ अभिनय को प्राणदान कर देती हैं।

सेठ गोविन्ददास ने प्रायः रंगमंच का ध्यान रखा है। कुछ नाटकों (जैसे "कर्ण") को छोड़कर शेष का अभिनय हो सकता। दृश्य रचना में उन्हें रंगमंच का ध्यान प्रायः रहा है। "दुःख क्यों"; "महत्व किसे" और "बड़ा पापी कौन" आदि चार चार अंक के छोटे नाटकों में दृश्य रचना सरल और सुगम है। रंगमंच पर सफलता से सजाई जा सकती है। 'दुःख क्यों' में कार्य (Action) पर्याप्त है अनेक बार आपकी "कुलीनता" का सफलतापूर्वक अभिनय हो चुका है।

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त सेठ जी के विषय में लिखते हैं, "इनकी साहित्यिकता के अलावा इनका बड़ा गुण हम यह समझते हैं कि इन नाटकों का रंगमंच पर जीवन हो सकता है, इनकी अपील वाचनालय तक ही सीमित नहीं। सफल अभिनय के लिये नाटक में गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन की विशेष आवश्यकता होती है। सेठ जी के कथानक चलमान होते हैं और उनका कथोपकथन तरल और स्वाभाविक। उनके अनेक दृश्य स्मृति पर पत्थर की लकीर से खिंच जाते हैं।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का "कोणार्क" और "ओ मेरे सपने" आधुनिक रंगमंच की दृष्टि से सफल रचनाएँ हैं। माथुर साहब रंगमंच की आवश्यकताओं से परिचित स्वयं एक अभिनेता रहे हैं। ये अनेक नाटक स्वयं खेल चुके हैं (जैसे "लवकुश" और "चन्द्रहास") "कोणार्क", "भोर का तारा"; "ओ मेरे सपने" सब में आपने रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिये उपयोगी सूचनाएँ प्रस्तुत की हैं, रंगमंच के विस्तृत चित्र भी दिये हैं जिनकी सहायता से अव्याव-सायिक अभिनेताओं और निर्देशकों को सहायता प्राप्त हो सकती है। अभिनय

× देखिये प्रो० नलिन कृत "हिन्दी नाटककार" पृष्ठ २४३

और रगमच की सजावट के अतिरिक्त आप सेटिंग, आम्पटर, वार्तालाप की ध्वनि, पर्दा, पात्रों का आना जाना, ग्रीन-रूम, दृश्य सविधान, कार्य व्यापार आदि के विषय में भी विचार प्रकट किये हैं। किस प्रकार का स्टेज इफेक्ट कैसे उत्पन्न करता है, इसका भी विस्तृत निर्देश है। माथुर साहब की नाट्यकला जीती जागती प्रभावोत्पादक कला है।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने बड़े नाटकों की अपेक्षा एकाकियों में अभिनय का पूरा ध्यान रखा है। "जय पराजय" में अश्क रगमच की आवश्यकताओं के प्रति सजग हैं। पिछले कुछ वर्षों से स्कूल और कालेजों के ऐमेचर रगमचों पर अश्क जी के प्रहसन बड़े लोकप्रिय रहे हैं। "जय पराजय" लम्बा ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी अभिनयशील है, "स्वर्ग की झलक" का दृश्य सविधान रगमच के अनुकूल है। इनमें कार्य (Action) पर्याप्त है। "छठा बेटा", "कैद"; "उड़ान" सभी में उच्च कोटि की अभिनयशीलता है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा कृत "फूलों की बोली", "राखी की लाज", "पूर्व की ओर", "बीरबल", "खिलौना की खोज" आदि नाटक अभिनयशील कृतियाँ हैं, दृश्य विधान सरल सीदा, भाषा रोचक और कौतूहलपूर्ण है। आपके प्रायः सभी नाटक न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ अभिनयशील हैं।

नए नाट्यकारों में श्री विनोद रस्तोगी का "आजादी के बाद" पूरे नाटक में एक ही दृश्य रखने का मौलिक प्रयोग किया है। रस्तोगी जी नाटक में रग-मचीयता का गुण आवश्यक मानते हैं। इसीलिए कम से कम तथा सरलता से रगमच पर उपस्थित किये जा सकने योग्य दृश्य तथा छोटे और सरल सम्वाद अपने नाटकों में रखते हैं। स्वगत कथन के पक्ष में वे नहीं हैं। वे निर्देशन के लिए अधिक से अधिक छूट नहीं देना चाहते। उनके निर्देश स्पष्ट हैं तथा पूरे नाटक को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उनका पालन आवश्यक है। रगमच का अनुभव उन्हें नाटक लिखने में बहुत सहायता देता है।

प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप का प्रथम नाटक १९३६ में सफलतापूर्वक अभिनीत हुआ था। सन् १९३७ से आपने रगमच की दृष्टि से छोटे नाटक लिखना प्रारम्भ किए और अब तक ६० नाटक लिख चुके हैं। अब तक तीन सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं १—परमाणु बम (१९५०) २—नया युग (१९५०) तथा "कवि प्रिया" (१९५२) लगभग ५० एकाकी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपका "प्रतीक्षा-बलि" (१९५०) में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, गया में सफलता-पूर्वक अभिनीत हुआ था। काश्यप जी के अन्य नाटक रगमच पर उतरते रहे हैं। वे स्वय अभिनय कलाकार हैं, अभिनय सम्बन्धी प्रयत्नों प्रयोगों एव उद्योगों

में लगे रहते हैं। गया का हिन्दी स्टेज हिन्दी रंगमंच में एक विशिष्ट स्थान रखने लगा है। इधर आपने ५-६ वर्षों के भीतर विभिन्न कला-संस्थाओं के माध्यम से लगभग सौ बार नाटकीय अभिनय करा चुके हैं। मनोवैज्ञानिकता का पुष्ट आधार ही आपके नाटकों की चरम परिणति है। व्यक्ति और समाज तथा समाज और व्यक्ति; व्यक्ति की आनुवंशिकता एवं उसका परिवेश, भौतिक परिवेश के अतिरिक्त सामाजिक परिवेश, व्यक्ति के मूलगत लक्षणों में द्वन्द्व उपस्थित करता रहता है और इस प्रकार व्यक्ति क्रमशः आनुवंशिकता एवं वातावरण का गुणनफल है—अपने नाटकों में काश्यप जी ने इसी वैज्ञानिक तत्व में व्यक्ति की इकाई देखी है।

रंगमंचीय एकांकी

हिन्दी में लघु नाटकों की सृष्टि रंगमंच की आवश्यकताओं को देख कर ही हुई है। स्कूलों, कालेजों तथा विशेष उत्सवों के अवसर पर अनेक सामाजिक संस्थाओं में रंगमंच पर अभिनय-योग्य संक्षिप्त कथोपकथनों की सृष्टि की गई, जिनमें मर्मस्पर्शिता तथा वाक्‌वैदग्ध्य के प्रभावशाली गुण थे। एकांकी वास्तव में कार्यव्यापार द्वारा रंगमंच पर अभिनीत जीवन के एक पहलू पर प्रकाश है। एकांकी स्वतन्त्र टकनीक वाला नाट्य साहित्य का एक उपभेद है, जिसमें स्थल, काल तथा व्यापार के तीनों संकलनों का पूर्ण निर्वाह होना चाहिए।

वैदिक काल से ही संवादों द्वारा दो व्यक्ति अभिनयात्मक शैली में निज मनोभाव क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त करते पाये जाते हैं। पुराणों में अधिकांश वार्त्ताएँ सांवादिक, अभिनयात्मक शैली में लिखी गई हैं। गीता भगवान् कृष्ण एवं अर्जुन के कथोपकथनों की शैली पर विनिर्मित है। एकांकी की आत्मा यही अभिनयतत्व है तथा रंगमंच के बिना उसकी कला फीकी है। रंगमंच की आवश्यकता ने उसे जन्म दिया है तथा उसी के साथ उसकी उपयोगिता है। जिस एकांकी का रंगमंच पर अभिनय न हो सके, वह साहित्य की अमूल्य निधि होकर भी निज कर्त्तव्य से च्युत है। एकांकीकार का यह भी कर्त्तव्य है कि वह अभिनय-कला, रंगमंच की आवश्यकताओं, दृश्यों का पट परिवर्तन, रंगमंच की सामग्री, दृश्य दिखाने की विधि, नई आधुनिकतम सुविधाएँ, पात्रों की वेश-भूषा तथा दृश्यों के क्रमनिर्माण पर पूर्ण ध्यान रखे।

अतीत भारत में आनन्द, नृत्य, संगीत, नाटक इत्यादि ललित कलाएँ लोकप्रिय रही हैं। वस्तुतः रंगमंच की श्लाघनीय परम्परा उपलब्ध है। ईसा के २०० वर्ष पूर्व "भारत नाट्य" जैसा रंगमंच, अभिनय एवं नाटक सम्बन्धी

समस्त ज्ञान से परिपूर्ण नाट्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं। भवभूति, कालिदास, भास, हर्ष, अश्वघोष, विशाखदत्त आदि के राजसभाओं के लिये लिखे गये "शाकुन्तल", "मालती माधव", "मुद्राराक्षस", "मृच्छकटिक" आदि नाटक गणराज्यों में प्रचलित जन-रंगमंच की परम्परा के प्रकाश-स्तम्भ हैं। अवन्ती, पाटलीपुत्र, उज्जयिनी आदि प्राचीन नगरों में अभिनय के लिये रंगमंचों के लिये प्रेक्षा गृहों का निर्माण हुआ था। ये प्रेक्षा-गृह स्थापत्य, ध्वनि, प्रकाश, रंगमंच, पोशाकागार आदि की दृष्टि से पूर्ण थे। लगभग आठवीं शताब्दी तक रंगमंचों के साथ धार्मिकता की पवित्रता संलग्न रही।

हिन्दी नाट्य साहित्य में रंगमंचीय एकांकी के जन्मदाता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हैं। आपके छोटे-छोटे कुछ नाटक— 'चन्द्रावली", "अन्धेर नगरी" (प्रहसन), "वैदिकी हिंसा", "नील देवी", "भारत जननी", "माधुरी", मुख्यतः अभिनय की दृष्टि से रंगमंच के लिये लिखे गये थे। "भारतेन्दु नाटक मण्डली" ने उनका अभिनय सफलता से किया था। भारतेन्दु को स्वयं अभिनय में रुचि थी। कहते हैं व्यावसायिक कम्पनियों के बाजारू नाटक देखकर ही विद्रोह के रूप में उन्होंने साहित्यिक नाटकों और साहित्यिक रंगमंच की सृष्टि की थी। इन रंगमंच सम्बन्धी प्रयत्नों के विषय में शुक्ल जी ने लिखा है—

"भारतेन्दु जी, प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी उद्योग करके अभिनय का प्रबन्ध किया करते थे तथा कभी कभी स्वयं भी पार्ट किया करते थे। पं० शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत "जानकी मंगल नाटक" का जो धूमधाम से अभिनय हुआ था, उसमें भारतेन्दु जी ने स्वयं पार्ट लिया था। प्रतापनारायण मिश्र का अपने पिता से अभिनय के लिये मूँछ मुँड़ाने की आज्ञा माँगना प्रसिद्ध है।"

श्री गोपालराम गहमर निवासी के पत्रों द्वारा भारतेन्दु युगीन रंगमंच के विषय में अनेक बातें हुई हैं। भारतेन्दु जी की मण्डली ने जो अभिनय बलिया में किया था, उसका उल्लेख गहमरी जी ने किया है। उन दिनों हिन्दी-नाटकों का स्टेज तो देहात और नगरों में खिलवाड़ ही था। बड़े शहरों में भी "इन्दर सभा", "गुलावकावली" आदि सस्ते नाटकों का अभिनय हुआ करता था। बंगाली रंगमंच इन दिनों भी समुन्नत था। अभिनय के लिये रंगमंचीय नाटकों का निर्माण करने वालों में सर्व श्री गिरीशचन्द्र घोष, क्षेत्रमोहन, विद्याविनोद तथा अमृतलाल प्रधान थे। बम्बई में पारसी नाटक मण्डलियाँ— "इन्दर सभा", "चों चों का मुरब्बा", "भूल-भुलैया", "कमरलजमाँ" आदि नाटक खेलते थे। गुजराती लड़के प्रायः अभिनय किया करते थे। विक्टोरिया

नाटक मण्डली, पारसी थियेटर, अलफ्रेड नाटक मण्डली, श्री सूर विजय नाटक मण्डली, मेरठ की "व्याकुल भारत नाटक मण्डली"; गुजरात की "नाटक मण्डली"—प्रमुख नाटक मण्डलियाँ थीं। मथुरा का रगमच रासमण्डलियों के रूप में उन्नति कर रहा था।

इस प्रकार हिन्दी रगमच पर अँग्रेजी, बगला तथा सस्कृत तीनों रगमचों तथा नाट्य-साहित्यों का प्रभाव था। भारतेन्दु जी की अभिनय-कुशलता, सगीत नाट्यकला निपुणता तथा सोत्साह लगन ने हिन्दी रगमचीय एकांकी को नवजीवन-शक्ति प्रदान की थी। हिन्दी रगमच पर साहित्य तथा सुरुचि का एकाधिपत्य रहा।

रगमचीय एकांकियों का द्वितीय युग प० राधेश्याम कथावाचक के एकाकियों से प्रारम्भ होता है। हिन्दी नाटककारों में प० राधेश्याम कथावाचक, आगाहश्र काश्मीरी और नारायणप्रसाद बेताब विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। इस काल में एकांकी की पृथक् सत्ता न थी। बड़े नाटकों के मध्य में प्रायः कौमिक के रूप में एक लघु नाटक जो स्वतन्त्र होता ।, जोड़ दिया जाता था। यह अपने आप में पूर्ण होता था। जितनी देर तक यह प्रहसन चलता रहता था, उतनी देर तक दर्शकों को हँसा देता था, और अन्दर आगे वाले दृश्य का निर्माण चलता था। श्री जी० पी० श्रीवास्तव के "दुमदार आदमी", "भूलचूक", जैसी करनी वैसी भरनी", "चोर के घर छिछोर", "उलटफेर", "नोंकझोंक", "साहित्य का सपूत", "तीसमार खाँ' आदि सभी उस व्यग्यमयी शैली की रचनाएँ हैं। इस काल में हिन्दी रगमच पर सफलतापूर्वक अभिनय करने वाले नाट्यकारों में हास्यरसावतार प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी पं० माधवशुक्ल पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा, प० बदरीनाथ भट्ट, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पं० शैदा नाटककार, नाट्याचार्य इत्यादि प्रमुख हैं। इनके पुण्य प्रभाव से हिन्दी रंगमच का कुछ विकास हुआ है। प० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० के "लबड़धों-धों" "चुंगी की उमेदवारी" आदि अभिनय के लिए ही लिखे गये हैं। इनका सफलता से स्कूल-कालेजों में अभिनय भी हुआ है। इनमें पुरानी परिपाटी के शेर-गजल तथा अधिक दृश्य परिवर्तन की पद्धति का अनुकरण मिलता है। इन नाटकों का इतना महत्त्व है कि इन्होंने अभिनय प्रधान एकांकियों के लिये मार्ग तैयार किया है।

आधुनिक युग में प० लक्ष्मी नारायण मिश्र, श्री कृपानाथ मिश्र, डा० रामकुमार वर्मा, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क तथा श्री वीरेन्द्रनारायण आदि एकांकीकारों द्वारा नाट्यजगत् में अभूत पूर्व क्रान्ति प्रारम्भ

हुई है। साहित्यिक एकांकियों को छोड़कर हमारे एकांकीकार रंगमंच पर अभिनय योग्य एकांकियों की ओर उन्मुख हुए हैं। इन नाट्यकारों को स्टेज की रचना तथा अभिनयकला का पूर्ण ज्ञान होता है। प्रायः सभी अभिनय करते रहे हैं।

पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के एकांकियों पर पाश्चात्य रंगमंच का प्रत्यक्ष प्रभाव है। न तो अनेक पात्रों की योजना है, न कविता पाठ, अनावश्यक पट-परिवर्तन, गजलशेर वाली पद्धति, संगीत या झूठी भावुकता का अनुचित सम्मिश्रण ही है। उसमें पट विस्तार भी इतना नहीं है कि विभिन्न देश, काल, व्यवस्था, अथवा घटनाओं की क्लिष्टता है। इब्सन की भाँति मिश्रजी ने हिन्दी रंगमंच को सरल और आडम्बरहीन बनाया है और जीवन के अधिक समीप ले आये हैं। आपके सभी एकांकी "नारी का रंग", "एक दिन", "कावेरी का कमल", "अशोकवन" अभिनय की कसौटी पर खरे उतरते हैं। "सिन्दूर की होली" में रंगमंच की रचना तथा अभिनय की सुगमता की ओर पूर्व की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया गया है। इनका जीवन रंगमंच पर ही हो सकता है।

डा० रामकुमार वर्मा के नाटकों की सृष्टि प्रयाग विश्वविद्यालय में विभिन्न अवसरों की दृष्टि से हुई है। प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न छात्रावासों में कोई नया एकांकी अभिनय के लिए अपेक्षित होता है। वस्तुतः वर्माजी नया नाटक लिखकर इस कमी की पूर्ति करते रहे हैं। अभिनय के दृष्टिकोण से आपने पात्रों के मुख से उनकी अपनी भाषा नहीं छीनी है, वरन् अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत की है जो पात्र जिस वातावरण में श्वास लेता है, उसी वातावरण के अनुरूप भाषा, मनोविज्ञान, आचार-व्यवहार, संघर्ष आदि की व्यंजना की है। वे कल्पना के व्योम में विहार की अपेक्षा वास्तविकता का क्षेत्र एकांकी के लिए आवश्यक समझते हैं। रंगमंच तथा उसकी आवश्यकताओं का ध्यान उन्हें सदैव रहा है, कुछ में रंगमंच का चित्र भी प्रदान किया है। अभिनय की दृष्टि से आपके "रेशमी टाई", "परीक्षा", "रूप की बीमारी", "१६ जुलाई की शाम", "अफीम की कीमत", "चारु मित्रा, उत्सर्ग", "औरंगजेब की आखिरी रात", विशेष रूप से सफल रहे हैं। इन्हें रंगमंच पर सफल प्रदर्शन के लिए ऐसे अभिनेता की अपेक्षा है, जो पात्रों के अन्तःसंघर्ष को समझ कर उसे ठीक तरह व्यक्त कर सके।

सेठ गोविन्ददास जी तथा श्री उदयशंकर भट्ट के नाटक अभिनीत हो सकते हैं, यद्यपि उनमें रंगमंच को सामने नहीं रखा गया है। उदयशंकर भट्ट के "धूम शिखा" के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं। सेठ गोविन्ददास

के नाटकों में दृश्यों की अधिकता है। सफल अभिनय के लिए नाटक में गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन की विशेष आवश्यकता है। सेठ जी के कथानक चलमान होते हैं तथा कथोपकथन तरल एवं स्वाभाविक। कुशल अभिनेता इनका अभिनय कर सकते हैं।

श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" के नाटक रंगमंच के लिए लिखे गए हैं। इनके कुछ नाटक रंगमंच पर बड़े प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। "लक्ष्मी का स्वागत", "कैद" "उड़ान", "आदिमार्ग", "अंजो दीदी", प्रधानतः रंगमंच की दृष्टि से ही लिखे गए हैं। नाट्यशाला की दृष्टि से "अश्क" ने अपने "छटा बेटा", "मैमूना", "किरण", "अधिकार का रक्षक", "चरवाहे", "तूफान से पहले", "भँवर" इत्यादि में समय, स्थान तथा अभिनय की तीनों इकाइयों का कुशलता से पालन किया है। "कैद" का पूरा नाटक एक दिन में एक ही कमरे में पूरा हो जाता है, "आदि मार्ग" के विभिन्न सूत्र आकर एक ही केन्द्र बिन्दु पर मिल जाते हैं। "अश्क" के नए नाटक "पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ, "कइसा साब", "सयाना मालिक", "क्रिकेट क्लब" इत्यादि का निर्माण खेलने के लिए ही हुआ। "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" कुछ मास पूर्व सेलर्स एण्ड सोल्जर्स बोर्ड प्रयाग में खेला जा चुका है। यह नाटक अमेचर मंच पर भी खेला जा सकता है। "तौलिये", "बतसिया", "मस्कोबाजों का स्वर्ग" अपेक्षाकृत बड़े मंच के लिए हैं। 'तौलिये' इलाहाबाद में कई स्थानों पर खेला जा चुका है। "बतसिया" की अपील रंगमंचीय है। यह केवल एक वाक्य "हुजूर मेरा नाम बतसिया है" पर अवलम्बित है। "बतसिया" के अभिनय के लिए सफल अभिनेत्री की अपेक्षा है। "मस्कोबाजों का स्वर्ग" कालेजों के रंगमंचों पर खेला जाने के लिए श्रेष्ठ रचना है। रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखने के कारण "अश्क" अपने नाटकों को प्रभावोत्पादक बना सके हैं।

प्रसिद्ध नाट्यकार जगदीशचन्द्र माथुर को बचपन से ही अभिनय की ओर अभिरुचि रही है। आपकी सबसे बड़ी विशेषता अभिनय योग्य एकांकियों की सृष्टि है। आपके मतानुसार संवेदनशील अभिनय द्वारा ही उस वातावरण का निर्माण हो सकता है, जिसके बिना अच्छे से अच्छे नाटककार की कृति प्राणहीन जान पड़ेगी। हिन्दी नाटककार का कर्तव्य है कि वह अपनी कृतियों को जनता के सम्मुख रखते हुए रंगमंच सम्बन्धी पहलू पर प्रकाश डाले। वस्तुतः श्री माथुर ने अपने एकांकियों—"मकड़ी का जाला", "खंडहर", "कलिंग-विजय", "रीढ़ की हड्डी", "भोर का तारा"—के अभिनय, रंगमंच तथा समीचीन वातावरण निर्माण पर भी प्रकाश डाला है। "मकड़ी का जाला" का

अच्छा अभिनय ऐसे परिष्कृत रंगमंच पर ही हो सकता है, जहाँ बिजली तथा रेडियोग्राम उपलब्ध हो, रेडियोसेट को माइक्रोफोन मे जोड़कर पीछे से बोलता रहे। स्टेज के ऊपर विशेष प्रकार के बल्बों के प्रयोग द्वारा स्वप्न दृश्य तथा अर्धचेतन के चित्रण की व्यवस्था संभव हो सकती है। "कलिंग विजय" के लिए साधारण रंगमंच से ही काम चल सकता है। "खंडहर" में स्टेज जटिल है। इन नाटकों का सबसे बड़ा गुण है। इनका अभिनय योग्य होना। सब नाटक रंगमंच को ध्यान में रख कर लिखे गये हैं। आधुनिक रंगमंच पर आपका पूर्ण अधिकार है।

आधुनिक एकांकीकारों में अभिनय की आवश्यकताओं को सामने रखने वालों में सर्वश्री सत्येन्द्रशरत्, चन्द्रकिशोर जैन, लक्ष्मीनारायण लाल, डा० सुधीन्द्र, देवीलाल सामर, तथा वीरेन्द्र नारायण आदि प्रमुख हैं। सत्येन्द्र ने स्टेज इफेक्ट का विशेष रूप से ध्यान रखा है और एक भी शब्द व्यर्थ नहीं कहा है। मनोवैज्ञानिक सत्यता के साथ इनमें नाटकीय स्थिति का चित्रण करने की अपूर्व क्षमता है। इनके सब नाटकों—"तार के खमे", "एस्फोडेल", "शोहदा", "गुड़बाई अनीता", "प्रतिशोध" का संविधान रंगमंचीय है। ये अपने वर्तमान रूप में बिना किसी असाधारण परिवर्तन के आसानी से खेले जा सकते हैं। इनमें कोई पूर्ण कथा नहीं, विगत घटनाएँ कथानक के साथ-साथ खुलती जाती हैं। पात्रों का परिचय भी पात्रों बातचीत द्वारा ही प्रकट किया गया है। इनमें नाटकीयता की मात्रा अत्यधिक है।

स्व० चन्द्रकिशोर जैन का जीवन निर्देशन तथा अभिनय में लगा था। अतः उनके नाटकों में पर्याप्त अभिनय तत्त्व हैं। डा० सुधीन्द्र के नाटक वनस्थली विद्यापीठ की बालिकाओं के अभिनय के लिये लिखे गये हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा के कुछ नाटक रंगमंच पर बड़े सफल हुए हैं—(१) "सबसे बड़ा आदमी" (२) 'दो कलाकार" (३) "चौपाल में"। प्रथम दो का अभिनय-तत्त्व सर्वविदित है। स्कूल-कालेजों में इनका पर्याप्त प्रचार है। फिल्म लाइन में कार्य करने के कारण आप रंगमंच से पूर्ण परिचित हैं।

रंगमंचीय एकांकियों की उपयोगिता जनता ने पहचानी है, तथा देश उनकी व्यापक सम्भावनाओं के साथ जाग रहा है। नये एकांकीकारों को इस ओर प्रयत्न करने चाहिये।*

---

* इस विषय पर रा० च० "महेन्द्रजी" की स्वतन्त्र पुस्तक देखिये "हिन्दी एकांकी और एकांकीकार" मूल्य १।।।) सरस्वती संवाद कार्यालय मोतीकटरा आगरा।

पृथ्वी थियेटर तथा उसके नाटक

हिन्दी रगमंच की स्थापना के लिए श्री पृथ्वीराज कपूर बी० ए० ने पृथ्वी थियेटर की स्थापना द्वारा अभिनव उद्योग किया है। वे उन सहस्रों कलाकारों में हैं, जिनके हृदय में नाटक-कला के पुनरुद्धार की तड़प मन में है और जो कला के माध्यम से देश की सेवा करना चाहते हैं। पृथ्वी थियेटर्स की स्थापना १५ जनवरी १६४४ को बम्बई में हुई थी और रगमच में नया जीवन सचार करने तथा स्टेज को भारतीय जीवन और समाज का एक नया दर्पण बनाने का नूतन उद्योग किया गया, जिसमें जनता अपना प्रतिबिम्ब देख सके और अपनी उलझी हुई समस्याओं का हल प्राप्त कर सके। धन कमाना इस कलाकार का ध्येय नहीं था, क्योंकि रजतपट की उपेक्षा रगमंच पर अभिनय द्वारा इतना धन सग्रह करना संभव न था। परिणाम यह हुआ कि साढ़े चार लाख रुपये की आहुति देकर भी पृथ्वी थियेटर्स की जीवन-ज्योति को जाग्रत रखा गया।

पृथ्वी थियेटर्स ने हमें १—शकुन्तला २—दीवार ३—पठान ४—गद्दार ५—आहुति आदि पाँच सामाजिक समस्या प्रधान रगमंचीय नाटक दिये हैं। इनमें "आहुति" श्री लालचन्द विस्मित पेशावरी का लिखा हुआ नाटक है। यह नाटक १६४६ में प्रथम बार बम्बई के रगमच पर खेला गया था और तब से अब तक बराबर खेला जा रहा है। इसमें पजाब की अपहृत देवियों की दुर्दशा का सजीव चित्रण है। "दीवार" में दो भाइयों के पारिवारिक जीवन और कलह का चित्रण है। "शकुन्तला" और "कलाकार" के अतिरिक्त अन्य नाटकों में वर्तमान को महत्व देकर भारतीय आदर्शों के प्रतिनिष्ठा उत्पन्न करने परस्पर सद्भाव उत्पन्न करने, देश को अखण्डता स्थिर रखने और विचार क्रान्ति लाने का नूतन संदेश है।

श्री लक्ष्मीशंकर व्यास के शब्दों में, "पृथ्वीराज के नाटकों में देशभक्ति, साम्प्रदायिक सद्भाव एव सहयोग का प्रचार मात्र नहीं होता अपितु उसके नाटक उक्त भावनाओं का कलात्मक अभिव्यंजन करते हैं। जिस एकता-अखण्डता को, राजनैतिक आन्दोलन, समझौते और सम्मेलन नहीं प्राप्त कर सके, उन्हें पृथ्वीराज अपने नाटकों तथा अभिनयों के माध्यम से प्राप्त करना चाहते हैं। उनका यह नाट्यादर्श केवल भावना अथवा आदर्श पर आधारित हो, यह बात नहीं, इसके लिए वास्तविक मानव स्पन्दन और हृदय की भावना का भी उसने अनुभव किया है। पृथ्वीराज के रंगमंच पर अभिनीत सभी नाटक देशभक्ति एवं साम्प्रदायिक एकता की कलात्मक अभिव्यक्ति करते हैं। सामाजिक आडम्बर का पर्दा फाश करना भी उनके नाटकों का उद्देश्य है। कथोपकथन

ऐसे स्वाभाविक और व्यंग्यपूर्ण हुआ करते हैं जो मर्म पर सीधे चोट करते हैं। जनसाधारण की बोधगम्यता का ध्यान, कला का निर्वाह, कथानक की यथार्थता पृथ्वीराज के नाट्यादर्श की द्योतक हैं।"

खेद है कि हिन्दी में अभी तक स्थायी रंगमंच की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है। रंगमंच के अभाव के कारण इस क्षेत्र में जो प्रयोग हुए हैं, वे साधारण हैं। यदि हमारे सामाजिक जीवन के साथ रंगमंच संयुक्त होता, तो रंगमंचीय नाटक शिथिल न रहता। हमें आशा करनी चाहिए कि हिन्दी नाटककारों को रंगमंच की सुविधाएँ प्राप्त होंगी और हिन्दी नाटक समुन्नत होता जायगा।

———

हिन्दी ध्वनि-नाटक और ध्वनि-रूपक

(१)

रेडियो नाटक की लोकप्रियता—

रेडियो के सहयोग से हिन्दी नाटक के विकास में नया बल और गति आ गई है। भारतीय रेडियो केन्द्रों से नाना प्रकार के हिन्दी नाटक प्रति सप्ताह प्रसारित किये जाते हैं। यथेष्ट अर्थलाभ होने के कारण अनेक हिन्दी नाटककारों का ध्यान ध्वनि नाटकों के निर्माण की ओर गया है। हर्ष का विषय है कुछ नाट्यकार स्थायी रूप से रेडियो विभाग को निम्न सेवायें दे रहे हैं; अन्य समय-समय पर अपने नाटकों का प्रसार कराते रहते हैं। नए नाट्यकार भी प्रयोगात्मक नाटक लिखकर इस क्षेत्र में बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

रेडियो नाटक की लोकप्रियता का एक कारण उसकी व्यापकता है। आज मध्य वर्ग के प्रत्येक परिवार में रेडियो है। रेडियो नाटक की एक विशेषता यह है कि वह केवल श्रव्य है अर्थात् सुना जा सकता है। श्रोता समाज घर पर बैठकर नाटक सुनते हैं और अपनी समस्याओं के हल के साथ-साथ उच्च कोटि का शिष्ट मनोरंजन प्राप्त करते हैं। रेडियो नाटक जन-सम्पर्क का सबसे निकट साधन बन गया है। केवल मनोरंजन ही नहीं, सरकार किसी विशेष दृष्टिकोण का प्रचार भी रेडियो नाटक द्वारा करा सकती है। प्रचारात्मक रेडियो-नाटक बड़ी संख्या में प्रसारित किये जाते रहे हैं। पुराने नाटकों को भी यत्र-तत्र रेडियो नाट्य शैली के अनुसार परिवर्तित कर प्रसारित किया गया है; अनेक रचनाओं—उपन्यास, कहानी, महाकाव्य—के रेडियो रूपान्तर प्रस्तुत किये गये हैं।

रेडियो नाटक के प्रकार—

यों तो रेडियो नाटक के नाना (Types) हैं पर मुख्य रूप से हम इसके दो भाग कर सकते हैं—रेडियो नाटक और रेडियो रूपक। नाटक लगभग ४० से ५० मिनट की लम्बी रचना है, जिसमें पात्रों के कथोपकथन द्वारा

कोई कथानक विकसित किया जाता है। प्रायः कोई पौराणिक नैतिक या विशेषत. सामाजिक समस्या ले ली जाती है, नाटक का अन्त होते-होते श्रोता को समस्या का निदान प्राप्त हो जाता है रूपक भी नाटक जैसी ही एक लम्बी रचना है, जिसमें एक प्रवक्ता मध्य में अपने वर्णन द्वारा रिक्त अंशों की पूर्ति करता हुआ विभिन्न नाटकीय दृश्यों को नाटक रूप में सयुक्त कर देता है। रूपक में अनेक भागों का वर्णन कर काम चलाया जाता है। मुख्य नाटकीय दृश्यों का ही अभिनय होता है।

इनके अतिरिक्त सगीत रूपक में पद्य का माध्यम ग्रहण किया जाता है और सगीत की प्रधानता रहती है। रेडियो-प्रहसन में व्यग्य विनोद हास परिहास का वातावरण रहता है, "सवाद" में दो या अधिक पात्रों द्वारा किसी घटना को प्रकट किया जाता है। चुटकुलों जैसी "झलकियाँ" होती हैं जिनमें छोटे २ अनेक दृश्य नाटक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। ध्वनि चातुर्य सम्पन्न अभिनेता, सगीतज्ञ और सूत्रधार आदि की सहायता स रेडियो नाटक बड़े सुन्दर अभिनय प्रस्तुत करते हैं।

जिस प्रकार सिनेमा में फोटोग्राफी के कौशल द्वारा अनेक साहसिक और रगमच पर असम्भव दृश्य अनायास ही प्रस्तुत कर दिये जाते हैं, उसी प्रकार ध्वनि नाटकों में कथोपकथन का रूप देकर और रेडियो ट्रिक द्वारा वातावरण उत्पन्न कर ध्वनि-नाट्यकार नाना प्रकार की कहानियों, उपन्यासों, बड़े नाटकों, महाकाव्यों को रेडियो फीचर का रूप दे देते हैं। सुनने में वह आनन्द आता है जो नाटक को चर्म चक्षुओं द्वारा देखने में आता है।

रेडियो नाटक की शैली—

हमने पहले निर्देश किया है कि रेडियो नाटक में ध्वनि ही सब कुछ है। ध्वनि के माध्यम द्वारा ही नाटककार को वातावरण निर्माण, वेशभूषा का वर्णन, दृश्यों की सजावट, पात्रों की आयु-स्थिति आदि का ज्ञान श्रोताओं को कराना पड़ता है। पात्रों के मनोभाव, सघर्ष तथा नाना काय ध्वनि के उतार चढाव द्वारा अभिव्यक्ति कर देने होते हैं। नेत्रों का कार्य भी श्रवणेन्द्रिय को ही करना होता है। वह पात्रों का उठना बैठना, घूमना, पीछे हटना आदि वर्णन कर प्रकट करता है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार ध्वनि नाटक के लिए निम्न तत्व आवश्यक हैं—

१—ध्वनि-नाटक का समस्त प्रनिन्यास आगे होने वाले सवादों द्वारा स्पष्ट होना चाहिये। २—नाटक में घटनाओं की गति क्षिप्र होनी चाहिये, क्योंकि

कान लम्बे सम्वादों को देर तक सुनने के अभ्यस्त नहीं हैं। ३—सवादों को सजीव बनाने के लिए उनसे सम्बन्ध रखने वाले अभिनय में ध्वनि भरने की आवश्यकता होगी। ४—रेडियो नाटक में घटनाओं की प्रमुखता होनी चाहिये, जिससे पात्रों के कार्यकलाप, आरोह या अवरोह उपस्थित किया जा सके। ५—पात्रों या घटनाओं में जितना अधिक विरोध या सघर्ष उपस्थित किया जा सकेगा, उतना ही अधिक नाटक मनोरजन का विस्तार कर सकेगा। ६—असभावित या अप्रत्याशित घटनाओं का स्वाभाविक सघटन कौतूहल की पूर्ति करेगा। ७—घटना या पात्र कार्य और कारण से अनुबन्धित होकर जितने शीघ्र विकास करेंगे, उतनी अधिक मात्रा मे नाटक सम्बद्ध होगा। ८—छोटे छोटे कार्यों की स्वाभाविकता ही रेडियो नाटक में प्राण की भाँति अनिवार्य होगी। ६—ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षा सामाजिक या पारिवारिक नाटक की अपेक्षा सामाजिक या पारिवारिक नाटक ही रेडियो पर अधिक सफल होंगे। ऐतिहासिक नाटकों में रगमच पर पृष्ठ पट या वेश भूषा तो सहज ही उपस्थित की जा सकती है, जो रेडियो पर सम्भव नहीं है। १०—रेडियो पर समस्त अभिनय को कठ-ध्वनि में भरना पड़ता है। वातावरण की पूर्ति के लिये संगीत और ध्वनि आलेखन (sound effects) का उपयोग करना पड़ता है। ×

रेडियो नाटक में वस्तु और विषय का ऐक्य तो अनिवार्य है किन्तु स्थान और काल के विषय में स्वतन्त्र हैं। वर्णन द्वारा किसी भी स्थान का वर्णन हो सकता है और तदनुकूल वातावरण निर्माण हो सकता है। दृश्यों का अन्त भी केवल सगीत द्वारा किया जाता है। रेडियो में ध्वनि-निर्देश का कार्य पृथक् एक व्यक्ति के पास होता है। रेल चलना, तूफान, बिजली की गरज, वर्षा, गलियों बाजारों की चहल पहल, भीड़, बडे शहरों में लोगों का आना जाना, प्लेट फार्म की भीड़ आदि के वातावरण उसी प्रकार के रिकार्ड बजा कर निर्माण किये जाते हैं। पात्रों के मन के अन्तर्संघर्ष प्रकट करने के लिए भी एक करुण रागिनी बजती रहती है। श्री कलाधर ने ६ बातों का निर्वाह रेडियो नाटकों के लिये आवश्यक बताया है—

१ पात्रों का परिचय, नाटक के विकास में किसी नए पात्र के प्रवेश अथवा प्रस्थान की सूचना, स्थान तथा समय विशेष की सूचना—ये सब पात्रों

देखिये डा० रामकुमार वर्मा कृत "ध्वनि नाटक की शैली" 'आजकल' अगस्त १६५१ पृ० २०

श्री कलाधर मनोरजन' अगस्त १६४८ पृ० ५८

अथवा सूत्रधार की बातचीत द्वारा प्रकट किये जाने चाहिये। २—नाटकों का आरंभ तथा अन्त प्रभावोत्पादक ढंग से होना चाहिये। ३—संवादों तथा सूत्रधार द्वारा दिये गये कथा संकेतों में वर्णनात्मकता तथा चित्रमयता होनी चाहिये क्योंकि श्रोता पात्रों को केवल उनके स्वर से ही पहिचानता है। अतः पात्र यदि अधिक होंगे, तो स्वर अधिक होंगे जिससे श्रोता पहिचान नहीं सकेगा कि कौन क्या कहता है। थोड़े पात्र होने से रेडियो वालों को पहचानी जा सकने वाला भिन्न-भिन्न आवाजों वाले कलाकार सुनने में आसानी रहती है। ५—रेडियो नाटक में अनावश्यक प्रसंग अथवा संवाद नहीं होने चाहिये। इससे श्रोता का ध्यान मुख्य विषय से हट जाता है और रसानुभूति नहीं हो पाती। ६—रेडियो नाटक में निःशब्दता का भी उतना ही महत्व है, जितना कि शब्द का।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रेडियो-नाटक की शैली अपनी निजी विशेषताएँ रखती है। रेडियो कलाकार को भाषा की चित्रमयता का विशेष रूप से आवश्यकता है जिससे उसके कथोपकथन ऐसे भावपूर्ण बन सकें कि स्थिति का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाय। वही श्रेष्ठ रेडियो नाट्यकार है जो दो या अधिक पात्रों की सहायता से कथावस्तु को पूरी तरह प्रकट कर देता है। फीचर में सूत्रधार की उपस्थिति एक कमजोरी है। सूत्रधार का उपयोग नाटककार वहीं करता है जहाँ अपने कथोपकथनों को कमजोर पाता है। पृष्ठ संगीत और स्टेज इफेक्टस जरूरी हैं किन्तु इनके अधिक प्रयोग से रेडियो नाटक की हत्या तक हो सकती है।

पात्रों की वय केवल उनकी ध्वनि से ही स्पष्ट करने के कारण पात्रों का चुनाव केवल ध्वनि के आधार पर ही किया जाता है। इन ध्वनियों के रिकार्ड मौजूद रहते हैं और जैसा अभिनतर चाहिए, जिस वय का चाहिए, वैसी ही ध्वनि वाले व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। कथावस्तु भी साधारणतः सरल सीदी होनी चाहिए। मुख्य कहानी के साथ छोटी कहानी न हो। हलकी समस्याओं का चित्रण करने वाले रेडियो नाटक विशेष सफल होते देखे गए हैं। प्रारम्भ से ही ध्वनि-वैभिन्न्य की सहायता से रेडियो नाट्यकार अपनी सहानुभूति और श्रोताओं के साथ तादात्म्य कर लेता है।

एक आलोचक ने सत्य ही कहा है, "रेडियो आविष्कार के साथ ये नए प्रयोग हैं, जिनका उपयोग रेडियो में होता है। ये दृश्य नाटक से बिल्कुल अलग हैं। रेडियो का अपना साहित्य है अपना नाटक है, फिर भी रेडियो की अपनी सीमाएँ हैं। रेडियो साहित्य का उपयोग विशेषकर रिपोर्ताज, डाक्यू-

मेन्टरी फीचर, पद्यरूपक या सगीत रूपक आदि का उपयोग केवल रेडियो पर ही हो सकता है इसलिए इस प्रकार का साहित्य व्यापक रूप ग्रहण नहीं कर सकता, और न उसका उपयोग सर्वसाधारण में हो सकता है।"

रेडियो नाटक का आरम्भ और अन्त महत्वपूर्ण होता है। इसमें भावनाशीलता और कौशल की विशेष आवश्यकता होती है। चूकि रेडियो रूपक मूल्य मात्र होता है पात्र के प्रारम्भिक दो चार वाक्यों में ही स्थान, काल, घटना विन्दु का सकेत तुरन्त हो जाना चाहिए। प्रथम पात्रों के सवाद सम्पूर्ण नाटक या रूपक के Mood का निचोड़ प्रस्तुत करें। ऐसे वाक्य से रूपक आरम्भ किया जाय कि जैसे पात्रों को बोलते-बोलते बातचीत करते किसी महत्वपूर्ण विन्दु पर आकर पकड़ा है। उससे पिछली कथा भी लाल होती है और कथानक की गति भी। एक मनोरंजक स्थिति लेकर सहज स्वभाविक गतिशील कथोपकथन के बल पर रेडियो नाटक चल सकता है, सफलता से अभिनीत हो सकता है। अधिक पात्र रेडियो नाटक में नहीं होने चाहिए, विशेष रूप से अधिक स्त्री पात्र पात्रों की कण्ठ आयु भिन्न होना आवश्यक है। नाटक का विकास क्रमिक हो, दृश्य बीच में जुड़े (Patch Work) हुए न लगें, निरर्थक सवादों को छाँट-छाँट कर काटा जाय यह भाषा की मितव्ययता जरूरी है। हर पात्र के मुख से लेखक के विचार न बोलें वल्कि स्वयं उस पात्र का विशिष्ट व्यक्तित्व (Personality) बोले। इन मूलभूत तत्वों के बल पर सफल रेडियो नाटक का निर्माण हो सकता है।

(२)

प्रमुख हिन्दी रेडियो नाट्यकार

हिन्दी रेडियो नाट्यकारों में सर्वश्री उदयशकर भट्ट, चिरंजीत, विष्णु, माचवे, भगवतीचरण वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त, भारतभूषण अग्रवाल, रामसरन शर्मा, राजाराम शास्त्री, देवराज दिनेश, जगदीशचन्द खन्ना, अनिलकुमार, सिद्धनाथकुमार, अमृतलाल नागर, अश्क, प्रो० नलिन, लक्ष्मीनारायण मिश्र डा० रामकुमार वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर; प्रफुल्लचन्द ओझा, मुक्त, रेवतीशरण शर्मा, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव और "भृंग तुपकरी" आदि नाट्यकार विशेषरूप से रेडियो नाटकों की सृष्टि कर रहे हैं।

(१) पं० उदयशंकर भट्ट—पं० उदयशंकर भट्ट ने अपने पुराने नाटकों को भी ध्वनिप्रधान बनाकर रेडियो प्रसारण के योग्य बनाया है और अनेक नए नाटक रेडियो के लिए लिखे हैं। रेडियो के कारण भट्ट जी के नए नाटकों के

दर्शन प्रतिभास हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न शैलियों पर आपका अधिकार है। एक ओर जहाँ आपने अपने आदि पुरुष स्वायंभुव मनु और शतरूपा द्वारा मनुष्य की आदिम अवस्थाओं की झाँकी दी है, वहाँ दूसरी ओर "कालीदास", "शशिलेखा", "सौदामिनी" आदि नाटकों द्वारा मध्ययुग के धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक चित्र उपस्थित किये हैं। इनके अतिरिक्त आज की सामाजिक समस्याओं पर ३०-४० नए सामाजिक व्यंग्य प्रधान मर्मस्पर्शी नाटकों की रचना की है। "पर्दे के पीछे" नए नाटक संग्रह के प्राय: सभी नाटक रेडियो टेकनीक की सफल रचनाएँ हैं। विषय वैविध्य की दृष्टि से इनके नाटकों का विस्तार, व्यापकता, अन्तर्दृष्टि, सामाजिक चेतना के प्रति जागरूकता, इतिहास का समीकरण महान् है। बहुत कम लेखक इतनी गहराई से जीवन का दर्शन कर सके हैं। "मत्स्यगंधा", "राधा", विश्वामित्र आदि गीति नाट्यों में भट्ट जी ने संकेतात्मक पद्धति में नवीन वस्तु दी है। इन नाटकों में प्रतीक प्रकृति है, जिसके द्वारा पात्र अपने हृदय के अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्ट करते हैं। प्रकृति के रूप विधान के द्वारा मानव मन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण इन नाटकों की सफलता है। भट्ट जी के नाटक जहाँ ज्ञान बहुल हैं, मानव जीवन की पारदर्शिता को प्रकट करते हैं, वहाँ वे जीवन के बहु व्यापी अंग उपांगों का गहन विश्लेषण भी करते हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि, मानव के विकास में चेतना का अन्तर्दर्शी विवेचन उनके इस साहित्य का रूप है। मालूम होता है जैसे भट्ट जी के द्वारा गीति, कविता, कथानक की प्रौढ़ता, समय की अंतरंग दृष्टि, ऐतिहासिक पुनःनिर्माण, जीवन के कल्याण की सभी भावनाएँ उनके नाटकों में प्रकट हुई हैं।

(२) **डा० रामकुमार वर्मा**—डा० रामकुमार वर्मा के नए नाटक जो "रजत रश्मि", "ऋतुराज", "दीपदान", "कामकंदला", आदि में संकलित हैं, रेडियो पर सफलतापूर्वक प्रसारित किए गए हैं। "कृपाण की धार" और "कलंकरेखा" पुरस्कृत हो चुके हैं। डा० वर्माजी की नाट्यकला जीवन के यथार्थ से उद्भूत होकर सजीव आदर्श की सृष्टि करने में प्रगतिशील रही है। जीवन के स्वभाविक गति प्रवाह को एक बल देना और उसकी दिशा में झुकाव ला देना ही उनका नाटक-रचना का प्रमुख उद्देश्य रहा है। अपनी इस कला का प्रयोग वे अपने सामाजिक नाटकों में विशेष विश्वास के साथ कर सके हैं। उनके "उत्सर्ग", "सही रास्ता", 'आशीर्वाद", "परीक्षा", 'अठारह जुलाई' की शाम आदि नाटकों में उनकी यह कला देखी जा सकती है। मनुष्यत्व के प्रति उनका अखण्ड विश्वास है। "उत्सर्ग" में डाक्टर शेखर अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों में

सच्चे नारीत्व का उपहास करते हैं तो उन्हें सख्त सजा मिलती है। इस प्रकार प्रकृति में जीवन की समरसता उपस्थित करने में वे सतत प्रयत्नशील हैं।

(३) श्री विष्णु प्रभाकर—श्री विष्णु प्रभाकर ने सामयिक समस्याओं को लेकर अनेक रेडियो नाटकों की रचना की है। आपके नाटकों में "मैं दोषी नहीं हूँ", "उपचेतना का छल"; नये पुराने; कुरण और कुहासा; शरीर का मोल; श्वेत अंधकार, भावना और संस्कार; दो राह; और वह जा न सकी; रात दस बजे; जज का फैसला, दो किनारे; दरिन्दा; सवेरा आदि नवीनतम हैं। इन नाटकों के अतिरिक्त विष्णु ने पौराणिक विषयों पर भी सफल रूपक लिखे हैं जैसे १—कंस मर्दन, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, गंगा की कथा आदि। रेडियो उन्मूलनों में "ढोला मारू" कमला, सिदवाद, शतरंज के खिलाड़ी" समाज के स्तम्भ, सूरदास, गबन आश्रिता, Pride and Prejudice मुक्ति मार्ग; काबुली वाला; और "छुट्टी"; "मृगजल"; "मृगनयनी"; "सन्यासी" नीली छतरी (चार भागों में एक उर्दू जासूसी उपन्यास) आदि प्रसिद्ध नाटक हैं। अनेक बच्चों के एकांकी आपकी लेखनी से प्रसूत हुए हैं जैसे न्याय, ईमानदार लड़की, सफाई, चोर हाट, माँ का बेटा, समवेदन, पुस्तक कीट; भीम और राक्षस; मोटे लाला, हँसलो गालो, आज दिवाली; और दादा की कचहरी आदि। विष्णु निरन्तर सफल नाटक लिख रहे हैं। उन्होंने कल्पना के आकाश में नहीं, जीवन की कठोर भूमि पर अपने उपकरण जुटाये हैं; उनकी दृष्टि यथार्थ से जूझ जूझ कर गहन, निर्मल और व्यापक होती गई है। विष्णु जी को मनोवैनिक नाटकों में अधिक सफलता मिली है। नाटकों में गांधीवादी विचारधारा की छाप इनकी मुख्य विशेषता है।

(४) श्री प्रभाकर माचवे—श्री प्रभाकर माचवे ने बड़ी संख्या में रेडियो नाटक प्रस्तुत किए हैं। आपकी दृष्टि हमारे समाज, धर्म, साहित्य, आर्थिक और कला सम्बन्धी ढाँचे पर पड़ी है और अनेक सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है। माचवे विचारक आलोचक और नाटयकार सभी कुछ हैं। अतः चिन्तन तत्व की प्रधानता है। आपके रेडियो नाटकों में १—सत्यान्त २—अदालत के पास होटल ३—श्रम पूजा, ४—सौष्ठव पूजा; बुभुक्षितः किमकरोतिपापम्; अपनी-अपनी ढफली; ६—चौमुख दिवला वार; ७—स्तालिन तुलसी संवाद; ८—कारकून; ९—आत्मा के मंच पर; १०— उत्तर रामचरित (सस्कृत से अनुवाद) ११—गली के मोड़ पर; १२—गुड़बाई मिस्टर शर्मा; १३—२४—पागलखाने में १४—पंचकन्या १५—यदि हम वे होते १६—विनय पत्रिका

१७—पर्वतश्री १८—सकट पर सकट (सात भागों में जासूसी नाटक माला); १६—वधू चाहिए २०—ललितकला क्लब, २१—लका वैभव २२—गाधी की राह पर २३—घरेलू झगड़े २४—कवायदवादी २५—अब्राकाडब्रा २६—नाटक का नाटक २७—रामभरोसे २२—क्या यह नारी है २३—टाइगर ! टाइगर !! २४—कला किस लिए २५—ऐप्रिल फूल २६—मुक्तिपर्व, २७—मुद्रासामुद्रिक, २८—गलत नम्बर आदि विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं। ये हर रूप रग और नई-नई शैली और विचार के हैं। वाणी द्वारा भावाभिव्यक्ति के कारण इनके नाटक विट (Wit) पुष्ट बौद्धिकता से परिपूर्ण है। गभीरता, विचारशीलता, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के अतिरिक्त परिहास और व्यग्य का भी उपयोग किया गया है। नाटकों में समाज के आलोचक बन कर आपने ध्वसेन्मुख पूँजीवाद, पुरानी अर्थ व्यवस्था शोषण, टूटते सामन्ती आदर्श, नई पुरानी अन्ध मान्यताएँ, शहरी मध्य वर्ग की विवशताएँ मनोविश्लेषणात्मक शैली में प्रस्तुत की हैं। मराठी के समृद्ध और वैभवशाली रगमच तथा नाट्यसाहित्य का ज्ञान आपके लिए बहुत सहायक हुआ है। नाटकीय घटना (Situation) तथा भाषा का निर्माण प्रतिदिन के जीवन की सहज और अनाटकीय जान पड़ने वाली बातों में से वे कुशल बाजीगर की तरह करते हैं। उनका बहुत सा नाट्य लेखन रेडियो में रहते हुए रेडियो के लिए हुआ है। उनके जैसा तेज और शीघ्र लिखने वाला शायद ही कोई हो। एक बार दोपहर को दो बजे हुक्म हुआ कि शिवरात्रि पर रूपक हो और आपने शाम को छै बजे "अनग दहन" स्वय लिखकर और उसमें स्वय अभिनय कर प्रस्तुत कर दिया। सरदार पटेल की मृत्यु का समाचार पाते ही उसी दिन रात को आध घटे का "अहिंसक सेनानी" रूपक श्रोताओं को याद है। समय-समय पर प्रसगानुकूल परिस्थितियों की सीमाएँ ध्यान में रख कर उन्होंने जो भी लिखा है, वह रेडियो नाटक के क्षेत्र में अद्भुत है।

(५) श्री "अश्क"—श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" के बड़े छोटे सभी नाटक रेडियो पर सफलतापूर्वक प्रसारित हुए हैं। "स्वर्ग की झलक", छटा बेटा, कैद, उड़ान, अलग-अलग रास्ते, अजोदीदी, लक्ष्मी का स्वागत, अधिकार का रक्षक, आपस का समझौता, कहसासाव कहसी आया, पर्दा उठाओ, बतसिया, "मस्केबाजों का स्वर्ग" आदि सभी नाटक रेडियो श्रोताओं के लिए नवीन सन्देशवाहक रहे हैं। गम्भीर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, प्रेम-सम्बन्धी अथवा हास्य व्यग्य प्रधान प्रहसन "अश्क" की नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। उनके कथोपकथन स्वभाविक गति से विकसित होते हैं और नाट्यस्थिति पर आते हैं। मन का

संघर्ष चित्रित करने में "अश्क" पटु हैं। जिज्ञासा, चरित्र निर्माण और वातावरण निर्माण की क्षमताएँ "अश्क" में विद्यमान हैं। अश्क एक कुशल टेकनीशियन हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रतीकों की सहायता से अपने विषयवस्तु के तानेबाने सुलझाये हैं।

(६) श्री रेवतीशरण शर्मा—गत वर्षों में रेवतीशरण शर्मा के लगभग ४० नाटक रेडियो पर सुनने में आये हैं। शर्मा जी समस्या प्रधान नाट्यकार हैं। "आँसू"; "नग्मे की मौत" सोनाने दो; एक लम्हा पहले, क्रिसमस की एक शाम भावना प्रधान दुखान्त नाटक हैं। "अन्धेरा उजेला" नाटक में आपने सौतेली माँ का दुर्व्यवहार, पुनर्विवाह से उत्पन्न कड़ुवाहट तथा बच्चों पर होने वाले अत्याचारों से सम्बन्धित मां के हृदय का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। कथानक ऐसे सजाया गया है कि जो पिता करता है, वही घटनाएँ पुत्र के जोवन में भी गुजरना चाहती हैं, पर स्वामीभक्त आया के हस्तक्षेप से सुरेन्द्र को पश्चाताप होता है और वह अपनी परित्यक्त को पुनः घर में स्थान दे देता है।

शर्मा जी का "पलक झपकने दो" समाजवादी विचारधारा, साधारण जनता की गरीबी और बड़े आदमियों की विलासिता ऐश्वर्य और रिश्वत की आमदनी का तुलनात्मक विवेचन है। निर्धन कृष्ण रायबहादुर की पुत्री को गुडे और दगों से बचाता है पर अन्ततः पुरस्कार के स्थान पर उसी के द्वारा तिरस्कृत होना है। "दुश्मन" नाटक में एक ऐसी युवती की ट्रजैडी है, जिसका प्रेमी आत्महत्या करता है पर उसका विवाह बरबश दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। समाज में अनेक ऐसी जलती हुई स्त्रियाँ हैं, जो रूढ़ियों के निमम शिकञ्जों में फँसी हुई हैं। "पत्थर और आँसू" नाटक में अन्तर्जातीय विवाह करने के दोष में चचा भतीजे को निकाल देता है। मां बहुत दुःखी होती है। इस नाटक में शर्माजी ने बिरादरी, जाति, पाँति की सकुचिता पर प्रहार किया है। "उतार चढाव" में एक युवती प्रेमावेश में एक चित्रकार से विवाह करती है पर सासारिकता की कठोरता के कारण उनके दाम्पत्य सम्बन्धों में कड़ुवाहट आ जाती है। "अमावस का अन्धकार" प्रेम सम्बन्धी गलतफहमियों से सम्बन्धित है। "बादल छुट गये" में नारी आन्दोलन का स्वर है। इसमे चित्रित किया गया है कि नारी किस प्रकार जाग्रत होकर समानाधिकार प्राप्त कर रही है। प्रमुख पात्र रमेश अपनी पत्नी किरण को छोड़ कर नीरा की ओर आकृष्ट होता है पर बाद में उसे अपनी मूर्खता का ज्ञान होता है। किरण स्वयं मेहनत करने को तैयार है। वह चाहती है कि बड़ा होने पर उसका पुत्र इस बात का गर्व करे कि उसकी माँ पुरुष की जूतियाँ सहने वाली नहीं। आत्मविश्वास और

आत्मज्ञान का सूर्य उदित होता है और गुलामी के काले बादल छट जाते हैं। "काल" नाटक में एटम बम के दुष्परिणाम चित्रित हैं। शर्माजी ने समाज की नई समस्याएँ—मुख्यतः युवक युवतियों की प्रेम सम्बन्धी विचार लेकर उन्हें नए ढग से सुलझाया है।

(७) श्री राजाराम शास्त्री—दिल्ली रेडियो से श्री राजारामशास्त्री के सामाजिक, सांस्कृतिक हलके प्रचारात्मक प्रायः सभी प्रकार के नाटक प्रसारित होते रहे हैं। इन्हें हम कई भागों में विभाजित कर सकते हैं—१—सामाजिक व्यंग्य—जैसे "सतलड़ी का हार", "अदलाबदला", बड़बेरी, जीजी, बीस मिनिट लेट, पत्थर की आँख २—ग्रामसुधार—"शिकार", खाओ री चिड़िया, आखरी घूँट, "फुलबूट", "हमारे शत्रु", "खाओ मन भर"। ३—सांस्कृतिक नैतिक—जैसे "देवहूति", "सुकन्या" इत्यादि। प्रहसन—"अदला बदली", बड़बेरी। शास्त्री जी स्वभावतः व्यावहारिक आदर्शवादी हैं। वे कभी इतने ऊँचे नहीं उठते कि उनके पात्र या आदर्श आकाश में लटकते रहे। नित्य प्रति के जीवन के यथार्थ-वादी चित्र खींच कर आपने अपने आदर्श इन्हीं में उतारे हैं। जीवन में नित्य प्रति घटने वाली साधारण किन्तु वे घटनाएँ जिन्हें हम नगण्य समझ कर टाल देते हैं पर जिनमें जीवन को बदल डालने की पर्याप्त शक्ति होती है, ऐसी मार्मिक घटनाओं को लेकर शर्मा जी के नाटकों में कहीं आदर्श की तो कहीं सामाजिक विद्रूपताओं पर कटु व्यंग्य की झाँकियाँ उपस्थित कर गई हैं। इन्हें देखकर हम स्वय अपने से प्रश्न कर उठते हैं कि क्या हम वास्तव में ऐसे विद्रूप, एकागी और मूर्ख हो सकते हैं। मनोरजन के साथ दैनिक जीवन की भूलों को पकड़ने की भी शास्त्री जी में अद्भुत क्षमता है—यही है उनकी मार्मिकता। "शिकार" सग्रह के नाटकों में ग्रामीण जीवन के सरल और मनोरजक चित्र हैं। साधारण बातचीत में सीधे सादे पर चोट करने वाले मुहाविरे, व्यग्य और लोकोक्तियों की अच्छी छटा दिखाई। शास्त्री जी का सबसे सबल और सुन्दर नाटक "देवहूति" और "सुकन्या" हैं, जिनमें आपका सांस्कृतिक एव नैतिक स्वरूप प्रकट हुआ है। पुराने कथानक होते हुए भी ये नाटक आज के मानव के द्वन्द्वमय जीवन के अत्यधिक निकट हैं।

(८) श्री अनिलकुमार—पटना रेडियो से श्री अनिलकुमार और श्री सिद्धनाथकुमार के नाटक उल्लेखनीय है। श्री अनिलकुमार ने सामाजिक व्यग्य की दिशा में अच्छा कार्य किया है आपके सामाजिक नाटकों में १—फागुन के दिन २—निर्देशक ३—प्रजापति की निर्माणशाला ४—ग्रहों का निर्णय ५—मैं ६—अपनेपन का निर्णय और ७—भूत आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। समाज में

ऊँचे का नीचे पर जो अन्याय चलता है, गरीब जिस मजबूरी में हैं, उसका विशद चित्रण इन्होंने किया है। कलाकारों की स्थिति तथा उन पर होने वाले अत्याचारों का भी मार्मिक विश्लेषण है। "प्रजापति की निर्माणशाला" इनकी प्रतिनिधि रचना है, जिसमें नाट्यकार ने मानव बुराइयों पर कटु व्यंग्य किया है। "अपनेपन का निर्णय" में बहुव्यवसायी वृत्ति पर व्यंग्य है। अनिल जी के ऐतिहासिक नाटकों में "महामाया", मजबूर, घूँघट, और "पराजय" आदि सजीव नाटक हैं। "मजबूर" सुन्दर बन पड़ा है। रेडियो रूपान्तरों में आपके "इरावती", "मृगजल", "दासी", और "देवरथ" आदि सफल रचनाएँ हैं। घटनाओं के सकेन, पात्रों के कथोपकथन, नाटकीयता और भाषा का माधुर्य असंदिग्ध रूप से प्रशंसनीय है।

(६) श्री सिद्धनाथकुमार—श्री सिद्धनाथकुमार एम० ए० के काव्य नाटकों में "कवि", "लौह देवता", सृष्टि की साँझ, "विकलांगों का देश", "बादलों का शाप" और "संघर्ष" इत्यादि में प्रथम तीन आकाशवाणी के लखनऊ, प्रयाग, और पटना केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं। ये सभी नाटक आधुनिक समस्याओं पर लिखे गए हैं। रेडियो शिल्प का सफल प्रयोग हैं!

(१०) श्री विश्वम्भर मानव—लखनऊ-इलाहाबाद केन्द्रों से सर्वश्री गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव आदि के नाटक प्रसारित किये गए हैं। "मानव" जी के नाटकों का एक संग्रह "लहर और चट्टान" प्रकाशित हो चुका है। इसमें सात सेक्स और मनोविज्ञान सम्बन्धी नाटक है। इनका केन्द्र विन्दु नारी है। मानव जी ने नारी के उन निगूढ़तम रहस्यों का उद्‌घाटन किया है जिनका रहस्य बहुत कम व्यक्तियों पर खुल पाता है। "संकीर्ण" में सामाजिक-आर्थिक ऊँच-नीच की समस्या है, "भीगीपलकें" में दो बहिनों के प्रेम सम्बन्धी विचारों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। "चट्टानें" में अमिता का विवाह एक ऐसे वकील से हो जाता है जो धन के सम्मुख प्रेम आदर्श न्याय सभ्यता आदि को कोई महत्त्व प्रदान नहीं करता "प्रेम का बन्धन" में चार युवतियों की प्रेम कहानियाँ गुम्फित हैं, जिनका विवाह ऐसे युवकों से हुआ जो उनकी भावनाओं को ठीक तरह नहीं समझ सके है। फलतः बाहर से संतुष्ट दिखने पर भी उनमें अतृप्ति और हाहाकार है। "सदेह का अन्त" में मानव जी ने चित्रित किया है कि हमारे हिन्दू समाज में विवाह संस्था आवश्यकता से अधिक रूढ़िबद्ध और संकीर्ण हो गई है। "जीवन साथी" में लेखक ने एक ऐसे इन्टरव्यू का दृश्य उपस्थित किया है जिसमें एक विज्ञापित सुन्दरी के लिए इच्छुक नवयुवक आते

हैं, अपना अपना केस प्रस्तुत करते हैं। वह कवि और पूँजीपति को त्याग कर एक ऐसे युवक को पसन्द करती है, जो जीवन को महत्व देती है। धन, कला, साहित्य को जीवन की परिपुष्टि के लिए नाना साधन मात्र मानता है। मानवजी क्रान्तिकारी विचारक हैं। प्राचीन रूढ़िगत विचारों और मान्यताओं का खण्डन करते हुए आपने नवनिर्माण के लिए उपयोगी सकेत उपस्थित किए हैं। कथानक कुछ लम्बे और जटिल हो जाने से कुछ दुरूहता उत्पन्न हो गई है, दृश्य बार-बार बदलते हैं, जिससे कथासूत्र को समझने में कुछ कठिनाई उपस्थित होती है। पात्रों की भी अधिकता है। कहीं-कहीं गम्भीर विवेचना है जिससे प्रतीत होता है कि नाट्यकार विचारों में अधिक रुचि ले रहा है, नाटकत्व स्थिर रखने की उसे चिन्ता कम है। फिर भी मानव जी के नाटक हमें आधुनिक सभ्य जीवन के बारे में नई दिशा की ओर सोचने को बाध्य करता है। इनकी शिक्षित नारी पात्रों पर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव है। वे अंग्रेज स्त्रियों की भाँति सोचती और कार्य करती हैं।

(११) श्री विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त—श्री विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त कृत "शकुन्तला", "सम्राट् अशोक", "हारजीत" और "भाई बहिन" पटना रेडियो द्वारा प्रसारित किये गए हैं। शेष में "मर कर भी अमर", "सिराजुद्दौला", "कुँवरसिह" पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। ये सभी नाटक ऐतिहासिक आदर्शों को स्पष्ट करते हैं। साथ ही ऐतिहासिकता की रक्षा का भी पूर्ण प्रयत्न है। 'अशोक" के राजत्वकाल की विशेषताएँ "अशोक" नाटक में चित्रित हैं। "अकबर" नाटक में अकबर के बड़प्पन की झाँकी दी गई है। हाडारानी और पन्ना की कथाएँ भारतीय नारी के उच्चतम गौरव की स्मृति याद दिलाती हैं। सिराजुद्दौला और कुँवरसिंह आदि के कार्य, भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम में उनका भाग आदि का चित्रण सुन्दरता से किया गया है।

(१२) श्री कृष्णकिशोर श्रीवास्तव—श्री कृष्णकिशोर श्रीवास्तव और "भृ ग तुपकरी" नागपुर रेडियो पर कार्य कर रहे हैं। श्रीवास्तव जी के 'मछली के आँसू', "रेखाएँ" (नाटक सग्रह) "युगान्तर" "नाटक का नाटक", आदि विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं। वे वही लिखते हैं जो देखते हैं। फलस्वरूप श्रीवास्तव जी के सब नाटक सामाजिक हैं—आज की समस्याओं पर आधारित हैं। वे नाट्यसाहित्य में पौरुष के पक्षपाती हैं। व्यग्य उनका प्रिय माध्यम है। हर समस्या को वे एक नए दृष्टिकोण से देखने के पक्षपाती हैं। देखकर बिना उसका मजाक उड़ाये वे नहीं छोड़ते। इसी कारण कभी-कभी आपके कुछ नाटक रेडियो के लिए अयोग्य, पत्रिकाओं के लिए अनुपयुक्त तथा सरकारी

पुरस्कारों के लिए हीन समझ लिए जाते हैं पर श्रीवास्तव जी की स्पष्टवादिता ज्यों की त्यों है। वे स्वय को नहीं बदलना चाहते। मानसिक स्वाधीनता का सारा अधिकार श्रीवास्तव जी ने अपनी लेखनी को दिया है। तर्कों तथा घटनाओं में वे वैज्ञानिकता को नहीं छोड़ पाते। वे काल्पनिक चरित्र, स्वप्निल सवाद; और अयथार्थ पात्रों पर विश्वास नहीं करते, वे तो सत्य के पूजक हैं, पर उसे श्लीलता और नाटकीय रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। समाज का जो जला भुना अग आपने देखा है, जिसका आपने अनुभव किया है, वही उनके नाटकों में प्रतिविम्बित है। प्रायः प्रत्येक नाटक में एक पात्र आपका प्रतिनिधित्व करता है। समाज की सभी समस्याएँ आपकी समस्याएँ हैं। धर्म पर आक्षेप नहीं करते पर पात्र प्रायः नास्तिक होते हैं। इस नास्तिकता का रूप नया होता है। जैसे "आदर्श की हत्या" में अशोक। जो नाटक अभिनेय न हो उसे आप नाटक नहीं कहते। आप नए विचारों के नाटक लिख रहे हैं।

(१३) श्री भृंग तुपकरी—नागपुर के "भृंग तुपकरी" से गत सात वर्षों में लगभग ढाई तीन सौ नाटक लिखे हैं। जीवन और समाज के सभी पहलुओं पर विचार किया है। आपकी नाट्यकला अत्यन्त सम्भावनाओं को अपने में समेटे है। आपने नाटक की दशा में दृढता से कदम बढाया है। मध्य प्रदेश के श्री गोपालशर्मा, कमलाकर दाँते रामपूजन मलिक आदि भी इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

(१४) श्री विनोद रस्तोगी—श्री विनोद रस्तोगी को नवीनतम नाटक इस प्रकार हैं—१—रत्ना की आग २—पाप का पुण्य ३—सोना और मिट्टी ४—प्यार और पैसा ५—मावली विजय ६—लूपहोल ७—रथ के पहिये ८—पैसा जन सेवा और लड़की ९—पैसा, पत्नी और बच्चा १०—मगल मानव और मशीन ११—काला दाग १२—कसम कुरान की १२—और मुल्ला मर गया १४—कुमारी वहू १५—खोपड़ी और बम। आपकी "अन्धेरा फिसलन और पाँव" पर पुरस्कार प्राप्त हुआ है। नवीनतम रेडियो नाटक "डाक्टर इसे बचालो"। एक ऐसे युवक की कहानी पर आधारित है जो अपनी असुन्दर स्त्री को प्यार नहीं दे पाता। उसके चेतन मस्तिष्क में उसके लिए घृणा है पर वह हृदय से अच्छा है। स्त्री सुख का अभाव उसे शराबी और जुआरी बना देता है। रस्तोगी जी के नाटक सामाजिक समस्याओं का नवीन रूप से विश्लेषण करते हैं। "पैसा जन सेवा और लड़की" में अनाथालयों, विधवाश्रमों तथा विवाह कराने का ठेका लेने वाली संस्थाओं की ओट में पनपने वाले व्यभिचार और अनाचार को लेकर लिखा गया है। "पैसा पत्नी और बच्चा" में एक ऐसी

तरुणी का चित्रण है, जो अपने वृद्ध धनीपति और पुरुष जाति से बदला लेने के लिए उसी पैसे से जिससे वह कभी स्वय खरीदी गई थी, पुरुषों को खरीद कर अपनी वासना की पूर्ति करती है, पुरुषों से खेलती है और उन्हें अपना दास बनाती है। "मगल मानव और मशीन" विज्ञान पर आधारित है। शान्ति का प्रचार ही इसका ध्येय है। टेकनीक की दृष्टि से यह एक मौलिक प्रयोग है।

१९४८ में श्री जगदीशचन्द्र माथुर का 'खिड़की की राह' पटना से प्रसारित हुआ। काव्यगत मधुर कल्पना और अप्रस्तुत योजना की अपेक्षा इस नाटक में वाक् चातुर्य और घटना सतुलन का प्रयास है। रेडियो पर अच्छा उतरा था। "मकड़ी का जाल" और "खिड़की राह" को छोड़ कर माथुर सा. के सभी नाटक कई बार प्रसारित हुए हैं। आपका "खडहर" अग्रेजी में रूपान्तरित हो कर भी प्रसारित हुआ है।

(१५) श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा "मुक्त"—दो रेडियो नाट्यकार श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा "मुक्त" और श्री अमृतलाल नागर विशेष ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। "मुक्त" ही पटना रेडियो से दो सौ से अधिक नाटक और रूपक लिखे हैं, जिनमें कुछ तो सामजिक हैं, अधिकाश मनोवैज्ञानिक सामाजिक और कुछ विशेषतः देहात वालों के लिए अथवा स्त्रियों या बच्चों के लिए लिखी गई हैं। "मुक्त" जी कहानी लेखक से नाट्यकार बने हैं। आपने नाटकों में दिखाया है कि आज की आर्थिक विषमता ने हमें देह धर्मी बना दिया है यद्यपि सस्कार-रत. से हम मनोधर्मी या आत्मधर्मी रहे हैं। सभ्यता के विकास ने मनुष्य के जीवन को कृत्रिम बना दिया है और मनुष्य मनुष्य के बीच अलध्य दीवारें खड़ी कर दी हैं। "मुक्त" जी यह मानते हैं कि प्राचीन को नष्ट करके नवीन की प्रतिष्ठा से मनुष्यता का यथार्थ कल्याण नहीं हो सकता, प्रत्युत इसके लिए प्राचीन के साथ नवीन का सहज सामजस्य अपेक्षित है। अपने नाटकों में आपने इन्हीं समस्याओं की अवतारणा की है। वे मनुष्य को पशु नहीं मानते, उसमें देवत्व का आरोप भी नहीं करना चाहते, क्योंकि "सच्ची मनुष्यता को ही सबसे बड़ी चीज मानता हूँ।" इसी से आपने अपने नाटकों में दिखाया है कि मनुष्य दैहिकता के धरातल मे ऊपर उठ कर सच्चे अर्थों में मनुष्य बन सके और भेद भाव, ऊँच-नीच की विषमता से ऊपर उठ सके। प्रहसन लेखन आपकी प्रतिभा के अनुकूल नहीं रहा है। दो चार प्रहसन लिखे हैं, किन्तु वे गंभीर हो गये। इसी से प्रहसन नहीं लिखे गये। यद्यपि टेकनीक के भिन्न भिन्न प्रयोग "मुक्त" जी ने किये हैं और आपके प्रयोगों का क्रम अभी चल भी रहा है

न्तर भी प्रस्तुत किया है। रस का पोषण करते हुए जीवन का सुविकास करना ही उनका आदर्श है।

(१७) श्री चिरंजीत :—श्री चिरजीत के अब तक ५०—६० छोटे बड़े नाटक प्रसारित हो चुके हैं। इनमें बड़ी उम्र वालों, स्त्रियों तथा बच्चों के लिए गभीर और हास्य रस प्रधान रचनाएँ हैं। रेडियो लेखन कला की सभी शैलियों पर क़लम उठाई है। आपके नाटकों को पाँच श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :—(१) रोमानी मनोवैज्ञानिक :—जैसे "गूंजती याद", "रात की बात", "छाया", "वे आँखें", "पतझर" आदि २—रहस्य रोमांच :—जैसे "कादम्बरी" की पृष्ठभूमि पर लिखित "महाश्वेता", "नाटक का अन्त" (Thriller); "वह कौन था ?" "प्रेतादि", "हाथी सवा लाख का" आदि ३—प्रहसन :—जैसे "दादी माँ जागी", "मानो न मानो, "दफ्तर जाते समय", "साथ वाला मकान", 'टेलीफोन पर", "घर का मालिक", "रेशमी साड़ी", "तरग माला" आदि ४—सगीत रूपक :—"मेघदूत", "शहगर्द के आँसू" (युरोपियन ढग पर ओपेरा), हिमानी "छविबन्धन", "सस्कार", "मधु-मिलन"; "जीवन-साथी", "प्रथम दर्शन" इत्यादि। इसी वर्ग में आपके गीति नाट्य भी सम्मिलित हैं। ५—काव्य रूपक :—जैसे "देव और मानव", "पख और पत्थर" और "केसर की कली" आदि। युरोपियन शैली पर गीतिनाट्य लिखने में चिरजीत ने मौलिक प्रयोग किये हैं। आपका एक ओपेरा "शहगद के आँसू" बिना सूत्रधार की सहायता से केवल गीतों में ही अपनी कथावस्तु उद्घाटित करता है। प्रत्येक पात्र गाता है; सवाद तक गानों में हैं। इस शैली का प्रयोग बहुत पहले उर्दू में हुआ था, जिसका उदाहरण "इन्द्रसभा" नामक उर्दू नाटक है। हिन्दी में इसका सर्वथा अभाव है। पंत जी ने अपने "रजतशिखर" के रूपकों को गीतिनाट्य कहा है। वास्तव में सच्चे अर्थों में वे गीति नाट्य नहीं हैं। गीतिनाट्य की विशेषता यह है कि सम्पूर्ण नाटक गीतों में ही चलता है और सूत्रधार की आवश्यकता नहीं पड़ती। चिरजीत के नाटक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। उनमें नई नई सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण है।

(१८) श्री गिरिजाकुमार माथुर—श्री गिरिजाकुमार माथुर मूलतः कवि हैं। इसलिए काव्य का माधुर्य आपके नाटकों की एक विशेषता है। सन् १६३६ में आपका एक पाँच अकों का पूरा नाटक "सिराजुद्दौला" लिखा गया था। इसके पश्चात् मूलतः रोमानी दृष्टिकोण से आरम्भ करके आप अपने नाटकों में सामाजिक यथार्थ तक पहुँचे हैं। रूढ़ियों से विद्रोह रोमान (Romanticism) की आत्मा है, यथार्थ से उसे वैर नहीं। जहाँ तक उनकी सामाजिक समस्याओं

का प्रश्न है, वे एक ओर सामाजिक रूप से हमारे समाज को छूती हैं, तो दूसरी ओर व्यष्टि रूप से इकाई को। इकाई की समस्याएँ समाज की ही छोटे रूप में (Miniatura form) समस्याएँ हैं; उन्हें समष्टि के संदर्भ में ही रखकर देखना होगा; वहीं उनका हल है। मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी उससे बहुत अलग नहीं। श्री गिरिजाकुमार माथुर के अधिकांश नाट्यसाहित्य समष्टि रूप में ऐतिहासिक सामाजिक समस्याओं के आधार पर ही विरचित हैं। इस अर्थ में वह "क्लासिक पैटर्न" (Classic Pattern) के अनुयायी कहे जा सकते हैं।

आपका १—जन्मकैद—नाटक एक मनोवैज्ञानिक ट्रैजिडा है, जिसमें विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर सद्यः विवाहिता विधवाओं की समस्या को सुलझाया गया है। इसमें युद्धकाल में विवाह के तुरन्त बाद ही पति को मोर्चे पर जाना पड़ता है। वहाँ वह शत्रु द्वारा वन्दी बनाया जाता है और युद्ध समाप्त होने पर भी उसका कहीं पता नहीं लगता। अन्ततः निश्चित न होने पर भी उसे मृत करार दे दिया जाता है। यहाँ पत्नी को कठिन मानसिक समस्या आती है। एक ओर आजीवन प्रतीक्षा का अनिश्चय है, दूसरी ओर पुनर्विवाह है, लेकिन क्या विवाह कर उसे मानसिक शान्ति मिल सकती है—इसी समस्या को हल किया गया है। २—पिकनिक—एक सामाजिक व्यंग्य है। मध्यवर्गीय महत्त्वाकांक्षाओं के बीच क्षणिक रोमांसगत थोथी निराशाओं पर कटाक्ष किया गया है। ३—मशीनोत्सव—में दिखाया गया है कि मशीनयुग के बीच इन्सान और इन्सानी रिश्तों की कड़ियाँ टूट गई हैं; जीवन का आनन्द पर्व समाप्त हो गया है। इन्सानी समाज में उसकी पुनर्स्थापना तभी संभव है जब मशीन वहुजन के हित का साधन बने। ४—रस की जीत—नव रसों के आधार पर रचित फेन्टसी (अति कल्पना प्रधान नाटक) है। नवरस के मानवीकरण के बीच मनोराज और रसराज का संघर्ष, अन्त में इन्सानी प्रेम की विजय चित्रित है। ५—विक्रमादित्य—एक ऐतिहासिक फेंटेंसी है। "गीत गोविन्द" "कुमार सभव"; "शकुन्तला" आदि नाट्य रूपान्तर हैं। ६—मेघ की छाया—मेघदूत के आधार पर रचित संगीत रूपक है। "इन्दुमती" मौलिक गीति नाट्य है। १२—"विषपान"—ऐतिहासिक ट्रेजेडी है जिसमें कृष्णाकुमारी का राष्ट्र सुरक्षा और शान्तिहित में विषपान चित्रित है। "वासवदत्ता" उपगुप्त और वासवदत्ता के आधार पर रचित ऐतिहासिक दुखान्त नाटक है। १३—क्रान्तिपथ—ऐतिहासिक रूपक में भारतीय संस्कृति की मुक्त आत्मा जो युग-युग की तमिस्रा में से आलोक पथ बनाती चली आ रही है; वेदों की कल्याण कामना से लेकर

सन् सत्तावन की क्रान्ति और जनतन्त्र के संघर्ष तक का चित्रण है। १४—शान्ति की पुकार—विश्व संस्कृति के समन्वय पट रूपक है। १५—व्यक्तिमुक्त धरामुक्त (गीति नाट्य) में जनतन्त्र में श्रम की महत्ता चित्रित है। १६—"राम की अग्नि परीक्षा"—में रामराज्य में ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु पर पुरुषोत्तम राम द्वारा अपने प्राण तक देकर मृत बालक को जिलाने की कथा है। इसमें लोक कल्याण के आदर्श की एक कल्पना मूर्तिमान हो उठी है। १७—शान्ति विश्वेदेवा—(प्रतीक गीति नाट्य) में युद्ध और शान्ति की अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठ-भूमि पर स्वर्ण दैत्य की अध्यक्षता में भयंकर असामाजिक शक्तियों के साथ इन्सानी जीवन का चरम लक्ष्य और जनमोहन की अन्तिम विजय दिखाई गई है। १८—मदनोत्सव—वसन्त का प्राचीन-नवीन ऋतु चित्र है। "बकुल मुकुल" वर्षा के मनोरम लोकोत्सव पर आधारित संगीत रूपक है। "अमर है आलोक" स्वतन्त्रता और जनमुक्ति की भावना से अभिभूत रूपक है। २१—"खून की रेखाएँ"—साम्प्रदायिक दंगों पर आधारित गीति नाट्य है। माथुर साहब की नवीनतम कृतियों में "लाउडस्पीकर (व्यंग्य), "मध्यस्था", बरातचढे"; "वसन्त की चाँदनी" (गीतिनाट्य), "बहती जा दामोदर" उल्लेखनीय हैं।

अन्य रेडियो नाटककार

दिल्ली के श्री हरिश्चन्द्र खन्ना का नाटक "अमर बेल" प्रकाशित हुआ है। समय-समय पर विभिन्न शैलियों के नाटक और रूपक प्रसारित होते रहते हैं। इनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने विदेशी नई पुरानी कलाकृतियों को भारतीय जामा पहना कर बड़ी सफलता से अपने नाटकों में उतारा है। उनके नाटकों के इस विदेशीपन को हम उनका गुण भी मान सकते हैं (और दोष भी)। खन्ना जी मूलतः अंग्रेजी साहित्य के ज्ञाता हैं। रेडियो में आने से पूर्व आप अंग्रेजी (विशेषतः अंग्रेजी ड्रामा) के प्रोफेसर थे। इनके नाटकों की कमजोरी संवादों में लक्षित होती है। बोलचाल की हिन्दी से अनभिज्ञ होने के कारण वे क्लिष्ट और सरल में भेद नहीं कर पाते। संवादों पर अनुवाद की सी छाप रहती है।

श्री स्वदेशकुमार के बच्चों की रेडियो पत्रिका "चमचम" में छोटे छोटे झल-कीनुमा कई नाटकों के अतिरिक्त, जिनमें केवल शुद्ध मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, छे बड़े नाटक लिखे हैं। पाँच रेडियो पर प्रसारित हुए हैं—१—हरी मिर्चें २—भूत ३—दो शेखचिल्ली ४—खजाना ५—वह यहाँ नहीं रहते। अपने नाटकों में आप पुरुषार्थ को प्रधानता देते हैं। भगवान से पूर्व

इन्सान को मान्यता देने में विश्वास करते हैं। केवल एक ही धर्म को मानते हैं—कर्त्तव्य। कर्त्तव्य निभाने में ही आत्मतुष्टि है। अपने इसी जीवन दर्शन और मान्यताओं को आप अपने नाटकों में उतारने का प्रयत्न करते हैं।

प्रो० जयनाथ "नलिन" ने न केवल प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना प्रधान नाटकों के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है, प्रत्युत रेडियो नाटकों के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य किया है। १—फिलास्फर २—मेहमान ३—कन्वेसिंग ४—सागर तट पर ५—फिल्मी कहानी ६—डिमोक्रेसी ७—चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी ८—मार मार कर हकीम (अनुवाद) ९—महालक्ष्मी १०—चोली ११—बाबू उधारचन्द १२—लाटरी (१९८४) १३—संवेदना सदन १४—शान्ति सम्मेलन १५—वर निर्वाचन १६—नेता (१९५३) आदि समस्या नाटक आपकी विशेष देन हैं। नलिन जी सफल व्यंग्य लेखक हैं। इनके अन्य नाटकों जैसे "विद्रोही की गिरफ्तारी"; "देश की मिट्टी"; "युद्ध के बाद" आदि की विशेषता घटनाओं की आकस्मिकता है, तीव्र सक्रियता है और सघन कौतूहल (Suspense) है। "विद्रोही की गिरफ्तारी" नाटक में विद्रोही कौन है, यह कौतूहल और जिज्ञासा भरा प्रश्न हमेशा हमारे सामने रहता है। "नलिन" जी के नाटकों की सक्रियता (Action) अभिनय आदि उछल कूद में नहीं, न आकस्मिक घटना या प्रवेश प्रस्थान में है; वह तो उनके अनुभावों में है। उनके संवाद अभिनय में सहायक हैं। अभिनय चरित्र प्रधान हैं, घटना प्रधान नहीं। इसीलिए संवाद के बीच-बीच में स्वर गति, भाषा आदि परिवर्तन के लिए निर्देश हैं। अनेक भावों का मिश्रण और एक साथ मिश्रित भावों का प्रकाशन भी इसी चारित्रिक अभिनय का प्रमाण है। लम्बे व्यंग्य नाटकों में शुष्क कटुता नहीं, प्रत्युत एक रागात्मक संवेदना की शीतल धारा बहती है। अनेक स्थलों पर नलिन ने मानवता के बहते घावों पर मरहम बनने के लिए यह रागात्मकता व्यंग्य का आवरण फाड़ स्वाधीन अन्तर्वृत्ति के रूप में भी प्रकट होती है।

पिछले वर्षों से हिन्दी रेडियो नाटकों और रूपकों का स्तर काफी ऊँचा उठा है और उठता जा रहा है। इधर नया कदम बढाने वालों में श्री ब्रजकिशोर नारायण, प्रभातजी, अर्जुन चौबे काश्यप, मोहनलाल महतो वियोगी, हंसकुमार तिवारी, विंध्याचलप्रसाद गुप्त प्रमुख हैं। श्री काश्यपजी का "सपनों का आसरा"; नारायण जी का "अकल्पित" "प्रभात" जी का "दीप-शिखा", विध्याचलप्रसाद गुप्त का संगीत रूपक "जीवन के सपने"; वियोगी जी

का "महाभिनिष्क्रमण", "रुद्र" जी का "तुलसीदास रूपक", हंसकुमार तिवारी का "काली बदरिया" अस्थाना जी का संगीत रूपक "हुई रात जूही मुस्काई" अच्छे नाटक रहे हैं। हिन्दी रेडियो नाटक का भविष्य उज्ज्वल है।

हिन्दी नाटकों पर छायावाद का प्रभाव

ससार के अन्य साहित्यवादों की तरह हिन्दी साहित्य में भी छायावाद एवं रहस्यवादी अपनी प्रमुखता लेकर आये। रहस्यवाद तो शुद्ध आध्यात्म को लेकर चला। कबीर, दादू, नानक आदि सन्तों में कविता द्वारा जो अज्ञात अनिवर्चनीय ईश्वर सत्ता की अभिव्यक्ति हुई उसे कविता के क्षेत्र में रहस्यवाद के नाम से पुकारा गया। वह बाद में एक तरह साधारण एव ससारी कवि की पहुँच के परे रहा। रहस्यवाद स्पष्टतः अनुभूति साधना तप का परिणाम था। इसलिए रहस्यवादी प्रवृत्ति का हिन्दी के कवियों में जहाँ तहाँ प्रयोग हुआ है, किन्तु छायावाद तो पूर्ण रूप से हिन्दी साहित्य पर छा गया है।

साहित्य तथा नाटकों पर छायावाद का प्रभाव किस रूप में पड़ा है उसको स्पष्ट करने से पूर्व छायावाद की अर्थ एव शब्दग्राहिता पर विचार करना होगा। वस्तुतः छायावाद का रूप कविता पर ही पड़ा हैं किन्तु चित्र पाठ्य शैली और प्रतीक पद्धति के विभिन्न प्रयोगों के कारण वह साहित्य के अनेक अगों कहानी, नाटक, उपन्यास पर भी अपनी छाप छोड़ गया है। जहाँ छायावाद का अर्थ रहस्य भावना से है, जिसमें कवि उस अनन्त और अज्ञान प्रियतम को आलम्बन बना कर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में अपने अन्तर की अभिव्यक्ति करता है, वहाँ छायावाद तुरीयावस्था अथवा समाधि दशा में नाना रूपकों एवं विचित्र अनुभूतियों को ग्रहण करता हुआ प्रकट होता है। दूसरा छायावाद काव्य शैली या विशेष पद्धति के अर्थ में है। अन्तिम प्रकार के छायावाद के सम्बन्ध में स्व० रामचन्द्र शुक्ल एक जगह पर लिखते हैं।

"सन् १८८५ में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी कहलाया। वे आपकी रचना में प्रस्तुतों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य कर के प्रतीकवाद शब्द का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वर प्रेम सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिये भी प्रतीक शैली की ओर वहाँ प्रवृत्ति रही। हिन्दी में छायावाद शब्द का जो

व्यापक अर्थ रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त इस प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में भी ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ, प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"

स्पष्ट है हिन्दी नाटकों में छायावाद की प्रतीक शैली अपनाई गई है। हिन्दी में छायावाद का प्रथम अवतरण करने वाले श्री जयशंकर प्रसाद थे। प्रसाद ने "लहर" और "आँसू" में इस प्रतीकवादी पद्धति को प्रचलित कर दिया था। बीच-बीच में वे कहानी और नाटक भी लिखते थे। इसलिए नाटक में स्वभावतः उस पद्धति का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया था फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह प्रतीकवादी पद्धति अर्थात् छायावाद का प्रभाव एक दम ही हिन्दी नाटकों पर जयशकर प्रसाद के द्वारा नहीं हुआ था। मुख्यतः इस वाद की छाया चाहे वह अपने पूर्ण रूप न हो, बगला साहित्य द्वारा प्रचलित हुई। द्विजेन्द्रलालराय तथा रवीन्द्रनाथ की रागात्मिक अभिव्यक्ति की अतिशयता ने बंगला साहित्य को यथेष्ट प्रौढ़ एव भावावेश को शैली से पूर्ण कर दिया था। डी० एल० राय के "शाहजहाँ", "भीष्म", "दुर्गादास", "सीता" तथा रवीन्द्रनाथ के "राजरानी" आदि नाटकों में इसी प्रकार की शैली प्रौढ हुई है। "प्रसाद" के नाटकों के प्रारम्भकाल में हिन्दी साहित्य पर डी० एल० राय के नाटकों का पूर्ण प्रभाव था। मेरा विश्वास है कि इसी भावावेक की शैली ने छायावाद की प्रतीकमयी एव लाक्षणिक शैली के निर्माण में सहायता दी है।

विषय को स्पष्ट करने के लिये द्विजेन्द्रलाल राय या "प्रसाद" की शैली का उदाहरण देना अनुचित न होगा। नाटकार डी० एल० राय "सीता" नाटक में वाल्मीकि के मुख से कहलाते हैं—

ऋषिवर! आप पूछते हैं कि प्रेम बड़ा या कर्त्तव्य। मैं मूर्ख हूँ। पर मेरी समझ में प्रेम उच्च है। प्रेम श्रेष्ठतर है। प्रेम राह दिखाता है और कर्त्तव्य उसी राह से चलता है। प्रेम विधान देता है और कर्त्तव्य उसका पालन करता है। महाभाग! प्रेम भ्रम नहीं है, प्रेम पागलपन का ख्याल व सपना नहीं है। प्रेम सत्य है, प्रेम पुण्य है। प्रेम कभी मिथ्या नहीं कहता। जहाँ धर्म है वहाँ प्रेम है। जहाँ पाप है वहाँ प्रेम नहीं रहता। प्रेम प्रभू है, और कर्त्तव्य उसका भक्त।"

भाषा की यह शैली स्पष्ट अभिधावादिनी हैं। इसमें जो शब्द हैं, उनका वही अर्थ है जो शब्द का होता है। इसके विपरीत "प्रसाद" की भाषा लाक्षणिक व्यंजना से पूर्ण है। एक उदाहरण लीजिये—

"स्कन्धगुप्त" नाटक में मातृगुप्त एक जगह कहता है—

मैं आज तक तुम्हें पूजता रहा। तुम्हारी पवित्र स्मृति को कंगाल की निधि की भाँति छिपाये रहा। मूर्ख! आह मैं मालिनी! मेरे शून्य भाग्याकाश के मन्दिर के द्वार खोलकर तुम्हीं ने उनींदी उषा के सदृश झाँका था और मेरे भिखारी संसार पर स्वर्ण बिखेर दिया था। तुम्हीं मालिनी, तुमने सोने के नन्दन का अम्लान कुसुम बेच डाला था।"

एक जगह मातृगुप्त कहता है:—"उस हिमालय के ऊपर प्रभात सूर्य की सुनहरी प्रभा से अलौकिक बर्फ का पीले पुखराज का-सा एक महल था। उसी से नवनीति की पुतली झाँक कर विश्व को देखती थी। वह हिम की शीतलता से सुसगठित थी। सुनहरी किरणों को जलन हुई। तप्त होकर महल को गला दिया। पुतली उसका मंगल हो। हमारे अश्रु की शीतलता उसे सुरक्षित रखे। कल्पना की भाषा के पख गिर जाते हैं। मौन नीड़ में निवास करने दो।"

ऊपर हमने दो नाटककारों की भाषा के उदाहरण दिये हैं। दोनों की भाषाओं पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि द्विजेन्द्रलाल राय की भाषा भावावेशमयी शैली की अभिधा से युक्त है। ठीक इसके विपरीत "प्रसाद" की शैली प्रतीक एव रूपक को लेकर चलती है। मातृगुप्त मालिनी से कहता है—

"मेरे शून्य भाग्याकाश के मन्दिर का द्वार खोलकर तुम्हीं ने उनींदी उषा के सदृश झाँका था"

इस वाक्य में पूरा एक रूपक बन गया है। शून्य भाग्य के आकाश को मन्दिर बनाया गया है। फिर उसका द्वार भी चाहिए। उनींदी उषा की आड़ में स्त्री रूप की कल्पना है। इसी तरह "मेरे भिखारी ससार पर स्वर्ण बिखेर दिया" भी वैसा ही सजीव रूपक है। इसी तरह दूसरे उदाहरण में हिमालय के ऊपर बर्फ के पहाड़ या चोटी को सूर्य की सुनहली प्रभा चमकाने पर पीले पुखराज के महल का रूपक बनाया गया है। महल में जीवित मनुष्य रहते हैं। उसमें नवनीत की पुतली उज्ज्वल नेत्रों वाली रमणी की कल्पना है।

आशय यह है कि श्री द्विजेन्द्रलाल राय तथा "प्रसाद" की भाषा में एक मौलिक अन्तर है। दो नाटककारों ने भावाभिव्यक्ति के लिये दो भाषा शैलियों को ग्रहण किया है। स्पष्ट है "प्रसाद" की शैली उत्कृष्ट एव आकर्षक है। इस शैली में प्रत्येक वाक्य में छायावाद अभिव्यक्त है जड़ को चेतन तथा चेतन को जड़ की अभिव्यक्ति देकर नाटककार ने भाषा को प्रांजल हृदयग्राही और सुसम्पन्न बना दिया है। प्रतीकवाद का यही लाक्षणिक प्रभाव "प्रसाद" तथा

उसके बाद आने वाले नाटककारों पर पड़ा है। उनमें मेरे नाटकों को स्थान दिया जा सकता है। "अम्बा", "सगर विजय" तथा "दाहर" की दशा में इसी प्रकार की अभिव्यक्ति हुई हैं। दो उदाहरण लीजिये—

"दाहर—आज प्रातःकाल से प्रतीक्षा के वक्षस्थल पर बैठा हुआ आशा निराशा के टाँके तोड़ रहा हूँ।"

"कृतघ्नता के क्रूर अग्निकाण्ड में नर-रक्त रंजित विभीक्षणों की आहुति दूँगा, अथवा स्वयं मृत प्रायः मृत भूमि के वक्षस्थल पर गिर कर स्वर्ग लाभ करूँगा।"

परन्तु नाटकों में भाषा का यह प्रवाह यथार्थवादी प्रवृत्तियों के कारण अधिक न टिक सका। "प्रेमी", पंत तथा सेठ गोविन्ददास के नाटकों में भाषा ने तीव्रता के साथ स्पष्टता, सीधेपन, की नीति को अपनाया। नाटकों का छायावादी प्रभाव केवल "प्रसाद" जी के नाटकों में अत्यन्त स्पष्ट है। उनके नाटकों के गीत तथा कवितायें भी इस पद्धति से मुक्ति नहीं हैः—

"चन्द्रगुप्त में अलका गाती है—

बिखरी किरण अलक व्याकुल हो विरत वदन पर चिन्ता लेख,
छाया-पथ मे राह देखती, गिनती प्रणय अवधि की देख
प्रियतम के आगमन पथ में उड़ न रही है कोमल धूल
कादम्बिनी उठी यह ढकने वाली दूर जलधि के कूल।
समय विहग के कृष्ण पक्ष मे रजत चित्र सी अंकित कौन
तुम हो सुन्दरि तरल तारिके, बोलो कुछ बैठो मत मौन।" आदि

"प्रसाद" जी का "कामना" नाटक पूर्णतः रूपक होते हुए भी छायावादी स्मृति है। सम्भव है कुछ लोग इस नाटक को "प्रबोध चन्द्रोदय" की तरह एक रूपक के रूप में स्वीकार करें, किन्तु वस्तु योजना, निर्वाह और अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह छायावादी नाटक है। पृष्ठ भूमि तो स्पष्ट ही छायावादी है।

"कामना" नाटक के प्रारम्भ में ही छायावाद की हरियाली दिखाई देने लगती है। कामना कहती है, "उषा के आगन में जागरण की लाली है। दक्षिण पवन शुभ्र मेघमाला का अंचल हटाने लगा। पृथ्वी के प्रांगण में प्रभाव टहल रहा है। क्या ही मधुर है और सन्तोष भी मधुर है। विशाल जलराशि के शीतल अंक मे लिपट कर आया हुआ पवन इस द्वीप के निवासियों को कोई दूसरा सन्देश नहीं सुनाता ···।"

एक दूसरी जगह "प्रसाद" लिखते हैं—"उदार प्रकृति बल सौन्दर्य और स्फूर्ति के फुहारे छोड़ रही है।"

"व्यभिचार ने तुम्हें स्त्री सौन्दर्य का चित्र दिखाया है और मदिरा उस पर रंग चढ़ाती है।"

"चन्द्र सूर्य की किरणों की तूलिका से अनन्त आकाश के उज्ज्वल पट पर बहुत से नेत्रों ने दीप्तिमान रेखाचित्र बनाये परन्तु उसका चिन्ह भी नहीं है।"

"जैसे खिले हुए ऊँचे कदम्ब पर वर्षा के यौवन का एक सुनील मेघ खण्ड छाया किये हो।"

छायावाद का दूसरा प्रभाव गीति नाट्यों एव भावनाट्यों में अत्यन्त स्पष्ट हुआ है। "मत्स्यगधा" गीतिनाट्य में मत्स्यगधा कहती है—

"देखो, सखि देखो, देखती हो अरे कैसा यह
मंजु वीणा पाणि शारदा का स्मय भावना सा
स्फटिक प्रफुल्ल फुल्ल धराधाम दीखता है।
मद मंद मारुत का प्राण सा निखर रहा
मान सा बिखर रहा शची के विलास-सा
मधुर! इस वेलाश दिनान्त में प्रभात सा
हुआ है। विशद चल वीचि माल जालियों
में घुलने लगी है साथ रक्तिमा समेट कर
आशाएँ हृदय की। मधु मधुरता
करता सा कोलाहल मुखरित हो-होकर
माधवी की यूथिका की मंजुश्री पुष्पराशि
मद के चषक से उढ़ेलती प्रभूत पूत
शोभित वनान्त में निशा का मुख खोला—
खोल देखा अरी देखा कैसा।"

"मत्स्यगधा" गीति नाट्य के उपर्युक्त पद्य में पूर्णतया लाक्षणिक तथा प्रतीक भावना से काम लिया गया है। उसके रूप में अनेकों जीवन के रूपक क्रमशः उपस्थित हो गये हैं।

छायावाद की परिणति दार्शनिक विचारों की ओर होती है। जीवन की तीव्रतम अनुभूति छायावाद में प्रकट होती है। लेखक प्रत्येक वाक्य उद्देश्य की तीव्रता को स्पष्ट करने के लिए उनके रूपक बनाता चलता है। प्राप्य की निष्पत्ति पर अंकुश रखता हुआ सयम से आगे बढता है।

छायावाद का एक और प्रभाव भी भाषा और अर्थ के अतिरिक्त पात्रों द्वारा प्राप्त हुआ है। "स्कन्दगुप्त" नाटक के मातृगुप्त देवसेना दोनों पात्र अपने प्रति जागरूक हैं। वैसे तो सभी पात्रों पर "प्रसाद" के इस सिद्धान्त की छाया लक्षित होती है।

छायावाद का प्रभाव "प्रेमी" के नाटकों में यत्र-तत्र दिखाई देता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे नाटककार की दृष्टि से सफल नहीं हैं। छायावाद केवल एक प्रभात है जो युग की भावना के संघर्ष से स्पष्ट हुआ है। उसका प्रत्येक नाटक में आना आवश्यक नहीं है।

एकाकी नाटकों में डा० रामकुमार वर्मा के नाटकों पर इसकी स्पष्ट छाप है। डा० वर्मा सम्भवत छायवादी कवि हैं। इसलिये "चारुमित्रा", "दस मिनट", "रेशमी टाई" आदि अनेक नाटकों में वे मूर्तिमात्र प्रतीकवादी हो उठते हैं। मेरा एक एकाकी "जवानी" भी कुछ कुछ इस पद्धति का है।

इतना होते हुए भी "प्रसाद" को छोड़कर शेष नाटककार छायावादी प्रभाव से एक तरह उन्मुक्त हैं। नाटकों में छायावाद ने भाषा को अभिव्यंजना सौन्दर्य दिया। उसको जो आभूषण पहनाया वह पिछले हजारों वर्ष से सर्वथा भूषित होने पर संस्कृत को भी नहीं मिला। उसी बल को लेकर हिन्दी यथार्थ होती हुई भी इतनी सशक्त हो गई है कि उसे अभिव्यंजना के लिये परमुखापेक्षी होने की आवश्यकता नहीं है। स्पष्ट ही भाषा को "प्रसाद" जी की यह देन अभूतपूर्व है।

—श्री उदयशंकर भट्ट

वर्तमान नाट्य साहित्य की आवश्यकताएँ

वर्तमान हिंदी-साहित्य सभी दिशाओं में अग्रसर हो रहा है। ललित-साहित्य में ही नहीं उपयोगी-साहित्य में भी उसने आशातीत उन्नति की है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से स्फूर्ति पाकर उसने केवल भाषा में ही अपनी शैली परिमार्जित नहीं की वरन् साहित्य के सभी क्षेत्रों में उसने पदार्पण किया। भारतेन्दु-युग से आगे चलकर पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के माध्यम से हिन्दी-साहित्य जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश प्राप्त करता गया आज तो उसका विस्तार युग की आवश्यकता से और अंग्रेजी-साहित्य के प्रभाव से भी बहुत अधिक हो गया है। विशेषकर जब हमारे स्वतंत्र देश ने हिंदी को राजभाषा के रूप में मान्यता दे दी है और वह शिक्षा के माध्यम में भी प्रयुक्त होने जा रही है तब हिंदी अपनी विस्तृत परिधि बनाने के लिए जो तैयारी कर रही है, वह उसके लिए वास्तव में अभिनन्दनीय है।

ललित-साहित्य के क्षेत्र में भी हिन्दी-साहित्य वेग से बढा है, किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि कविता, कहानी और उपन्यास में उसकी गति अच्छी रही है, किंतु नाटक और आलोचना में शिथिल, तो मेरी बात सत्य से अधिक दूर नहीं रहेगी। नाटक और आलोचना विस्तृत अनुभव और गंभीर अध्ययन पर विशेष रूप से आधारित हैं और इसके लिए गहरी साधना की आवश्यकता है। यों तो ललित-साहित्य के अन्य अंगों के संबंध में भी साधना की शर्त है, किन्तु नाटक और समालोचना में तो विशेष रूप से उसकी मान्यता है। साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा नाटक महान् और शोभा संपन्न भी है। 'काव्येषु नाटकं रम्यं' की बात तो प्रसिद्ध ही है। आज मैं आपके सामने नाटकों के सम्बन्ध में ही कहना चाहता हूँ।

हिन्दी के नाट्य-इतिहास की कथा अत्यन्त असंतोषप्रद है। हमारी कविता का इतिहास जितना प्राचीन और गौरवमय है, नाटक का इतिहास उतना

ही नया और साधारण है। उसका कारण यह है कि नाटक दृश्य काव्य है और इस रूप में वह सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित होकर जनता की सपत्ति है। मुसलमानों के शासन काल में नाटक को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल सकता था क्योंकि वे लोग भारतीय सस्कृति और उसके सार्वजनिक प्रदर्शन के बिलकुल ही विरुद्ध थे। फिर नाटकों के लिए एक सुसस्कृत मंच की आवश्यकता भी थी, जिसकी सभावना इन परिस्थितियों में हो नहीं सकती थी। अत अंग्रेजों के आने के पूर्व तक हमारा नाट्य-साहित्य एक मरुस्थल की भाँति स्पन्दनहीन ही पडा रहा। अन्य प्रान्तीय विभागों मे जहाँ यह शासन शिथिल रहा, वहाँ नाट्य-साहित्य की उन्नति हुई, और उन प्रान्तीय भाषाओं में नाट्य-साहित्य प्रगति करता रहा। उदाहरण के लिए मैथिल नाटकों का निर्देश किया जा सकता है।

अग्रेजों के आने के बाद परिस्थिति में सुधार हुआ और जीवन में प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर हुई। अनेक नाटक मडलियों की स्थापना हुई और उनके द्वारा अग्रेजी नाटकों के अनुवाद तथा अन्य फारस की कथाओं के आधार पर नाटकों का अभिनय होता रहा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस नाटक को हिन्दी-साहित्य में अनेक प्रयोगों के साथ उपस्थित किया और जनता की रुचि को इस अग की ओर आकृष्ट करने का सफल प्रयत्न किया। उन्होंने सस्कृत, अग्रेजी, वगला, प्राकृत आदि से नाटकों के अनुवाद हिन्दी में किए तथा अनेक परिस्थितियों एक ओर रसों के आधार पर नवीन नाटकों की रचना की। भारतेन्दु जी ने कुछ नाट ।लखे और कुछ अनुवादित किए और हिन्दी-साहित्य में नवीन परम्परा को जन्म दिया। भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों जैसे प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, श्रीनिवासदास, प्रेमघन ने भी भारतेन्दु से आदर्श ग्रहण कर नाट्य-साहित्य की रचना की। किन्तु ये नाटक संस्कृत नाट्य-शास्त्र की भाँति रसों पर ही आधारित हैं। इस युग में वगला नाटकों से भी वहुत अनुवाद हुए।

द्विवेदी-युग में जहाँ द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का वड़ा प्रभाव रहा वहाँ माधव शुक्ल, वदरीनाथ भट्ट, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, नारायणप्रसाद 'वेताव', राधेश्याम कथावाचक और पडित माखनलाल चतुर्वेदी ने भी नाट्य रचना में नवीन कदम बढ़ाया, किन्तु इस युग की अधिकाश रचनाओं पर पारसी कम्पनियों का प्रभाव आवश्यकता से अधिक है। इन नाटकों का इतना महत्त्व अवश्य है कि इन्होंने हिन्दी कथानकों को साहित्यिक दृष्टि से

रक्खा, भले ही उनकी अभिनयात्मक शैली कंपनियों की अभिनयात्मक-शैली के अनुरूप रही। किन्तु इस नाट्य-साहित्य ने आधुनिक नाटककार प्रसाद के नाटकों के लिए मार्ग अवश्य तैयार कर दिया।

प्रसाद जी की नाट्य-रचनाओं का काल सन् १९११ से आरंभ होता है। उन्होंने १३ नाटकों की रचना की जो अधिकतर ऐतिहासिक इतिवृत्तों से ही सम्बन्ध रखते हैं। प्राचीन इतिहास से सम्बन्ध रखने के कारण उनकी भाषा इतनी अधिक क्लिष्ट हो गई कि वे सर्व साधारण की समझ से दूर हो गए। जब तक हिन्दी जनता की रुचि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से परिमार्जित नहीं हो जाती, और भाषा सम्बन्धी उनका ज्ञान परिष्कृत नहीं हो जाता तब तक प्रसाद के नाटकों का रसास्वादन साधारण जनता कर सकेगी, इसमें सन्देह है। कथावस्तु में भी प्रसाद जी ने इतनी इतिवृत्तात्मकता रक्खी कि वह बिना कटे-छटे मंच पर उतारी नहीं जा सकती। प्रसाद के नाटक रस से सम्बन्धित रहते हुए भी मनोविज्ञान और द्वन्द्व से परिपूर्ण हैं।

प्रसाद से मार्ग-दर्शन पाकर इधर अनेक नाटककारों ने नाटक में बड़े सफल प्रयोग किए हैं इनमें सवश्री हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार प्रमुख हैं। इन लेखकों ने मनोविज्ञान और गीति-नाटकों में नये-नये प्रयोग कर नाटक साहित्य के भण्डार को भरने का प्रयत्न किया है। इधर एकांकी नाटकों की रचना भी प्रारम्भ हुई है। जिनमें कभी एक दृश्य में और कभी अनेक दृश्यों में जीवन के किसी सत्य या समस्या को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है। संक्षेप में यही नाट्य साहित्य का इतिहास है। इस इतिहास को देखकर हम वर्तमान नाट्य-साहित्य की आवश्यकताओं पर अधिक सुविधा के साथ विचार कर सकेंगे।

अभी तक नाट्य-साहित्य जो संतोषजनक विकास नहीं कर सका है, उसका मुख्य कारण रंगमंच का अभाव है जिसकी आवश्यकता नाट्य-साहित्य के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मैं नाटकों का महत्व उपन्यास की भाँति पढ़ लेने तक ही नहीं मानता; वरन् सार्वजनिक रूप से उसके अभिनय में मानता हूँ। अभिनय के लिए रंगमंच तो नितान्त आवश्यक है। रंगमंच का अर्थ केवल 'स्टेज' या अभिनय स्थान ही नहीं है। रंगमंच का संबंध एक राजनीतिक या सामाजिक कलात्मक संस्था से है, जो नाटक और अभिनय के प्रत्येक क्षेत्र में संपूर्ण ज्ञान वितरित कर सके। राज्य

की ओर से या समाज के द्वारा प्रचुर दान से वह पूर्ण सम्पन्न हो और विश्व-विद्यालय की भाँति वह विद्यार्थियों को रंगमंच के ज्ञान में पूर्णरूप से दीक्षित कर सके। एक निश्चित पाठ्यक्रम समाप्त करने के बाद वह विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र देकर उन्हें रंगमंच पर अवतरित होने का अधिकार दे। रंगमंच के क्षेत्र में वह अन्वेषण भी करा सके और एक ओर जहाँ अभिनय की कुशलता पाठ्य-क्रम में हो वहाँ मंच की व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान भी उसके अन्तर्गत हो वह नाटककारों को प्रोत्साहन देकर युग के अनुसार नवीन नाटकों की सृष्टि भी करा सके। संक्षेप में रंगमंच राष्ट्र के नाट्य-साहित्य का पूर्ण उत्तरदायित्व ले सके। अब हमारा देश स्वतंत्र है और अनेक योजनाओं में जिस प्रकार धन व्यय किया जा रहा है, उसी भाँति रंगमंच के निर्माण की ओर भी राष्ट्र का ध्यान जाना अत्यन्त आवश्यक है। नाटक राष्ट्रीय साहित्य का एक बलशाली अंग है और यदि राष्ट्र किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों या आदर्शों का प्रचार जनता में करना चाहता है, तो रंगमंच से अधिक सफल प्रयोग कोई दूसरा नहीं है। चित्रपटों की लोकप्रियता अवश्य बढती जा रही है और वे प्रचार के शक्ति-शाली साधन भी हैं, किन्तु हमारे चित्रपटों का स्तर अत्यन्त निम्न है और वे केवल मात्र मनोरंजन के प्रतीक हैं। आज जो अधिकांश चित्रपटों को असफलता मिल रही है, उसका प्रमुख कारण रंगमंच का अभाव भी है। एक सी प्रेम-कथा एक सा अभिनय और वह भी अस्वाभाविक और असंबद्ध। अतः यदि हम नाटकों के साथ चित्रपट को भी सुधारना चाहते हैं, तो हमें शीघ्र से शीघ्र राष्ट्रीय रंगमंच तैयार करना होगा। रंगमंच के ज्ञान से रहित हमारे यहाँ जो नाटककार नाटक रचना करते हैं, उन्हें तो उपन्यास ही लिखना चाहिए नाटक नहीं।

नाट्य-साहित्य की दूसरी आवश्यकता यह है कि वह हमारे सांस्कृतिक व्यक्तित्व को ठीक तरह से व्यक्त कर सकें। यह सांस्कृतिक व्यक्तित्व दो रूप ग्रहण कर सकता है। पहला तो वह हमारे ऐतिहासिक गौरव को स्पष्ट करे और दूसरा वह हमारे जीवन की समस्याओं को हमारे दृष्टिकोण से सुलझा सके हमारे ऐतिहासिक गौरव की अभिव्यक्ति प्रसाद जी के नाटकों में यथेष्ट हुई है। हमें प्रसाद जी द्वारा इंगित मार्ग को अधिक प्रशस्त करना है। ऐतिहासिक कथावस्तु को अभिनय के उपयुक्त बनाते हुए हमें उसे सर्वसाधारण की रुचि का विषय बना देना है। हमारे जीवन की समस्याएँ जटिल रूप धारण करती जा रही है। हमें उनके सुलझाने के लिए पश्चिम का दृष्टिकोण नहीं चाहिए। इस क्षेत्र में न तो हम पश्चिमी समाज का अनुकरण कर सकते हैं और न पश्चिमी

विचार-धारा का ही। पश्चिम का बुद्धिवाद हम अवश्य ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु हमारी समस्याएँ केवल तर्क और बुद्धि पर ही आधारित नहीं हैं, हमें उनके हल करने के लिए अपने परिस्थितियों और संस्कारों की शक्ति चाहिए। यदि नाट्य-साहित्य द्वारा हम अपने सांस्कृतिक व्यक्तित्व को राष्ट्र के सामने रखने में समर्थ हो सके तो हम वास्तव में अपने सच्चे उत्तरदायित्व का निर्वाह साहित्य में कर सकेंगे।

हमारी तीसरी आवश्यकता नाट्य-साहित्य में संगीत की सुरक्षा है। पहले जब नाटकों की रचना इस सिद्धात के आधार पर हुआ करती थी तब तो नाटक में संगीत का अग अनिवार्य रूप से रहना था। क्योंकि रसोद्रेकना के लिए सगीत (चाहे वह पृष्ठ-सगीत ही क्यों न हों) आवश्यक हो जाता था, किन्तु रस-सिद्धात का बहिष्कार होते ही सगीत भी नाटक से निर्वासित सा हो रहा है। अब तो चरित्र-चित्रण और अन्तर्द्वन्द्व ही नाटक के दो किनारे हो गए हैं, जिनमें कथानक का प्रवाह हुआ करता है। और इन संघर्षों में सगीत के लिए कम अवकाश रह गया है। राजदरबारों में कभी-कभी पाश्चात्य नर्त्तकियों के नृत्य की व्यवस्था अवश्य हो जाया करती है। और चित्रपट का संगीत? वह तो सगीत का सबसे बड़ा व्यंग्य है। चलती हुई धुनों में हाय, दिल के टुकड़े, जवानी की रेल, मुहब्बत, नदी का किनारा, या बरबादी जोड़ देने से ही हमारा संगीत लहराने लगता है जिनसे हमारे नवयुवकों और नवयुवतियों के दिल और दिमाग दोनों ही खराब हो जाते हैं। इस प्रकार के संगीत का रोकना 'सेंसर बोर्ड' का प्रथम कर्त्तव्य है। हमारे यहा संगीत एक अलग शास्त्र ही है। विविध मनोभावों के अनुरूप उसमें राग और रागनिया हैं। यह कितने क्षोभ की बात है कि जिस देश में सगीत इतना अधिक समुन्नत हो, उसमें 'लारी-लप्पा' और 'एडी ठप्पा' का सगीत प्रत्येक दिशा में गूंज कर हमारे समारोहों का भाग बने। मैं तो समझता हूं कि प्रत्येक फिल्म में शास्त्रीय संगीत के दो या तीन गाने अवश्य हों, जो बिना सगीत की गहरी बारीकियों, तानों और अलापों के स्वाभाविक और सहज ढंग से गाए जा सकें। संगीतज्ञों के अलाप जो कभी-कभी बिल्लियों के झगडने की तरह ज्ञात होते हैं उसमें न हों, पर राग या रागिनी का सहज रूप अवश्य ही रहना चाहिये। रगमच के द्वारा ये गीत बड़े अच्छे ढग से गवाये जा सकते हैं। और इस प्रकार हमारे इस शास्त्र की रक्षा जनता के द्वारा सहज ही हो सकती है। नाटककारों को गीति-रूपकों की रचना यथेष्ट मात्रा में करनी चाहिए

पं० उदयशंकर भट्ट इस क्षेत्र में अवश्य ही प्रयत्नशील हैं, किन्तु अन्य नाटककारों का ध्यान भी, इस ओर आना आवश्यक है।

हमारी चौथी आवश्यकता है जीवन की स्वाभाविक गति के हृदयंगम करने की। हमारे नाटकों में प्रायः अतिरजना हो जाती है। यदि किसी दुष्ट स्त्री या क्रूर पुरुष का चरित्र है, तो वह अपनी चरम स्थिति में उपस्थित किया जाता है, इसी भाँति पतिव्रता या साधु पुरुष का चरित्र भी कहीं-कहीं 'अति' से हास्यास्पद हो जाता है। हमें जीवन के क्रम का स्वाभाविक ढग से सजाना अनिवार्य है। इसी प्रकार यथार्थ और आदर्श की चरमता जहा एक ओर कुरुचि उत्पन्न करती है, दूसरी ओर वह अलौकिकता के रूप में उपस्थित होती है। हमें नाटक में तो तथ्य का समर्थन इस रूप में करना है कि वह समाज के लिए कल्याणप्रद हो।

एक विशेष बात में नाट्य-साहित्य के लिए आवश्यक समझता हूँ, वह है परिस्थितियों के अनुसार हास्य, विनोद, परिहास या व्यंग्य। नाटक में ये ऐसे आयुध हैं जो अपने वार में अचूक होते हैं, यदि उनका प्रयोग करने वाला सफल प्रयोक्ता हो। अनेक नाटककार हास्य या तो इतना पण्डित्य-पूर्ण या शास्त्रीय लिखते हैं कि वह स्वाभाविकता से दूर जा गिरता है, विनोद तो सवाद का प्राण है, किन्तु जब हमारे संवाद सिद्धातों पर चलते हैं तब उनमें विनोद के लिए स्थान ही कहाँ है? परिहास या तो फहड़ हो जाता है या अश्लील और व्यंग्य तो हमारे साहित्य में परोक्ष गाली का ही रूप है। हमारे नाटककारों को हास्य, विनोद, परिहास और व्यंग्य की शक्तियों को ठीक तरह से समझकर अपने नाटकों में इनका प्रयोग करना चाहिए।

यों तो नाट्य साहित्य में अभी कितनी ही बातों की आवश्यकता है किन्तु हम परिमित स्थान में सब बातों को स्वय कहने में असमर्थ हैं। हाँ, अन्तिम बात इतनी अवश्य कहना चाहता हूँ कि भाषा अत्यन्त सरल पात्रों के अनुकूल और शक्तिशालिनी हो। मैंने प्रायः नाटकों में सभी पात्रों को एक सी भाषा का प्रयोग करते देखा है। यह अस्वाभाविक और अप्रिय है। समाज में विविध वर्ग के व्यक्ति विविध भाषाओं के प्रयोग करते हैं और स्वाभाविक के नाते हमें उनकी भाषा का प्रयोग नाटक में करना चाहिए। जहा ऐतिहासिक या प्राचीन पात्र हैं उनकी भाषा मे आवश्यकतानुसार तत्सम-मता रक्खी जा सकती है।

आजकल समय का अभाव होता जा रहा है, अतः अपेक्षाकृत छोटे नाटक या एकांकी नाटकों की अधिक से अधिक सृष्टि होनी चाहिए। अभी हमें एकांकी की कला को निखारना है। इस क्षेत्र में आल इंडिया रेडियो से सहायता मिली है। इस सहायता का पूरा उपयोग हमारे यहां के नाटककारों को करना है।

इस प्रकार, रंगमंच, राष्ट्रीय व्यक्तित्व चेतना, संगीत, जीवन में तथ्य समर्थन हास्य, विनोद, परिहास और व्यंग्य तथा भाषा की सरलता, विविधता और प्रभावोत्पादकता हमारे नाट्य साहित्य की मुख्य आवश्यकताएँ हैं। क्या हमारे नाटककार इस ओर ध्यान देंगे ?

प्रमुख नाटककार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(१) **भारतेन्दु का महत्त्व**—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी नाटकों के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उनसे पूर्व जो हिन्दी नाटक थे, वे नाम-मात्र को ही नाटक कहे जा सकते थे। मौलिक नाटकों की बेहद कमी थी। श्री विश्वनाथसिंह कृत "आनन्द रघुनन्दन", गिरिधरदास का "नहुष" आदि मौलिक और राजा लक्ष्मणसिंह कृत "शकुन्तला" और जसवन्तसिंह कृत "चन्द्रोदय" आदि अनुवाद तथा कुछ नाटकीय काव्य मात्र उपलब्ध थे। स्थूल रूप से इन नाटकों को तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है १—ब्रजभाषा पद्य में संस्कृत से अनुवाद जिनमें गद्य का अभाव था। २—संस्कृत के गद्य अनुवाद ३—पारसी तर्ज के राम और कृष्ण सम्बन्धी दोहे चौपाइयों से पूर्ण पौराणिक नाटक। न इनमें किसी विशेष नाट्य शास्त्र का पालन था, न साहित्यिक सौन्दर्य। ये साधारण कोटि के दर्शक अथवा पाठक का मनोरंजन करते थे। इनमें साहित्यिकता अथवा कलात्मकता की अपेक्षा धार्मिकता और सस्ता मनोरंजन प्रधान था। एक दूसरी प्रकार के रंगमंचीय जन नाटक भारतीय समाज में प्रचलित थे, जिन्हें रास, रामलीला, साँग और नौटंकी आदि का नाम दिया जाता है। ये जनता में प्रचलित लोकप्रिय ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखे जाते थे। इनमें संगीत और पद्यमय कथोपकथन की प्रधानता रहती थी, रंगमंच की श्रेष्ठता का प्रश्न न था। इनका उद्देश्य आवेशमयी काव्य शैली में धार्मिक या वीर भाव उत्पन्न करना था। इस युग के प्रहसन (जैसे अपमानित का "इन्द्रसभा") सस्ते ढंग का मनोरंजन उत्पन्न करते थे। इन सब में गद्य तो नाम मात्र को होता था, प्रधानत. पद्य का ही प्रयोग रहता था। कभी-कभी थियेट्रिकल कम्पनियाँ विशेष रूप से अपनी रुचि का नाटक लिखवाया करती थीं, जिनका उद्देश्य केवल धनोपार्जन या सस्ता मनोरंजन मात्र था। पारसी नाटक कम्पनियों के प्रचार से नाटकीय वातावरण दूषित था। उर्दू मिश्रित हिन्दी शेर दोहे की परिपाटी, काव्यमय कथोपकथन और कुरुचिपूर्ण मनोरंजन

की प्रमुखता थी। ऐसे वातावरण में भारतेन्दु जी ने अपनी बहुमुखी नाटकीय प्रतिभा से साहित्यिक नाटक का सूत्रपात किया। उन्होंने अपने नवीन नाटकीय प्रयोगों, रूपान्तरों तथा मौलिक नाटकों द्वारा हिन्दी नाटक को एक नवीन दिशा की ओर मोड़ा। उनके पथ-प्रदर्शन से साहित्यिक परम्परा के हिन्दी नाट्यकारों की एक नवीन पीढी उठी, जिसने हिन्दी नाटक में विभिन्न रूपों (Types) के नये प्रयोग किए, तात्कालिक सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों को मुखरित किया और नाटकीय वातावरण को परिष्कृत करने का प्रयत्न किया। भारतेन्दु युग हिन्दी नाटक का सुदृढ आधार बना।

(२) भारतेन्दु का नाटक साहित्य—भारतेन्दुजी ने हिन्दी नाटक की तीन परम्पराओं (अनुवाद, रूपान्तर, मौलिक नाटक) मे पर्याप्त काम किया है। उन्होंने स्वयं कई मौलिक नाटक लिखे। "प्रेमजोगिनी" (१८७५) चन्द्रावली (१८७६) भारत जननी (१८७७) भारत दुर्दशा (१८८०) नीलदेवी (१८८१) और सती प्रताप (१८८३) विद्यासुन्दर (१६२५) तथा "सत्य हरिश्चन्द्र" अनूदित नाटकों में "रत्नावली" संस्कृत से अनूदित किन्तु अपूर्ण हैं। "पाखण्ड विडम्बना" (१६२६) श्री कृष्ण मिश्र कृत संस्कृत के "प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक के तीसरे अक का अनुवाद है। "धनजेय विजय" (१६३०) सस्कृत से अनूदित है। "मुद्राराक्षस" विशाखदत्त कृत सस्कृत नाटक का अनुवाद है। "कर्पूर मंजरी" राजशेखर कृत सट्टक का अनुवाद है और शृङ्गार रस से परिपूर्ण एक प्रेम कहानी पर आधारित है। "दुर्लभ बन्धु" (सम्वत् १६३७) शेक्सपीयर के Merchant of venice का सुन्दर अनुवाद है। इनके अतिरिक्त आपके कई प्रहसन भी बड़े मार्मिक बन पड़े हैं—"वैदिक की हिंसा हिंसा न भवति" (सम्वत् १६३०) पाखडियों द्वारा माँस मदिरा आदि सेवन करने वालों की दुर्दशा का चित्र है। इसमें कृत्रिम भक्ति की महिमा का भी प्रदर्शन है। "विषस्य विषमौषधम्" (सम्वत् १६३३) मौलिक भाण है। इसमें देशी राज्यों के अत्याचार तथा इस कारण उनके विलयन का सूत्रपात दिखाया गया है। "अंधेर नगरी" (सम्वत् १६३८) छः दृश्यों का प्रहसन है। बनारस में बंगालियों और हिन्दुस्तानियों ने मिलकर एक छोटा सा नाटक "समाज" दशाश्वमेध घाट पर किया था। उसी में अंधेर नगरी का प्रहसन जोड़ा गया था। कहते हैं इसे भारतेन्दु जी ने नाटक के पात्रों के अनुसार एक ही दिन में लिख दिया था। लोभ से होने वाली हानियों को बड़ा हास्य व्यंग्यमय चित्रण इसमें किया गया है। इस प्रकार भारतेन्दु जी ने विविध प्रकार (Types) विविध विषयक मौलिक और रूपान्तरित नाटक हिन्दी को दिये। इनमें प्राचीन

संस्कृत और अर्वाचीन पाश्चात्य नाटकीय शैलियों का उचित परिमाण में सम्मिश्रण है।

मूल रूप से हम इन्हें कई भागों में विभाजित कर सकते हैं १—शृंगार प्रधान रचनाएँ जैसे १—श्री चन्द्रावली, प्रेमयोगिनी, कर्पूरमंजरी इत्यादि २—समाजसुधार विषयक नाटक जैसे "भारतदुर्दशा", भारत जननी" ३—ऐतिहासिक आदर्शवादी नाटक जैसे—"मुद्राराक्षस" नीलदेवी, सत्य हरिश्चन्द्र ४—पौराणिक जैसे "पाखण्ड विडम्बना", रत्नावली, धनंजयविजय सती प्रताप आदि और ५—प्रहसन जैसे "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति", विषस्यविषमौषधम् और "अन्धेर नगरी" आदि। इन सब से उनकी विलक्षण नाटकीय प्रतिभा का ज्ञान होता है, कवित्व शक्ति यत्र तत्र प्रकट हुई है—पारसी कम्पनियों के विरुद्ध उनका विरोध और नए आदर्श रंगमंचीय नाटकों की स्थापना का प्रमाण मिलता है और पूर्वीय और पश्चिमी शैली के सम्मिश्रण के प्रयोग मिलते हैं। उन्होंने अपने नाटकों को रंगमंच के अनुकूल रखा और अभिनय के समस्त गुणों का ध्यान रखा। यही नहीं, उनके अभिनय में स्वयं भाग भी लिया। तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से हिन्दी साहित्य में नाटकों को एक निश्चित रूप दिया।

(३) भारतेन्दु की देन—हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु जी ने युगान्तर किया। उनका हिन्दी नाटक साहित्य में निजी ऐतिहासिक महत्त्व है। आलोचकों ने उनके ऋण को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। कुछ सम्मतियाँ यहाँ दी जाती हैं—

डा० सोमनाथ गुप्त के शब्दों में, "भारतेन्दु जी के सामने नाटक साहित्य सम्बन्धी कोई आदर्श उनकी भाषा में प्रस्तुत नहीं था। उन्हें स्वयं अपने आप अपना मार्ग प्रशस्त करना पड़ा। यह कार्य उन्होंने अनुवादों से, रूपान्तरित नाटकों तथा मौलिक नाटक लिख कर सम्पन्न किया। यदि जीवन का यथार्थ चित्रण नाटक में कुछ महत्व रखता है तो वह इनके नाटकों में वर्त्तमान है ..... उन्होंने नाटक की तीनों परम्पराओं को सुदृढ नींव पर रख कर सदा के लिए एक मार्ग निश्चित किया (२) प्रख्यात अथवा पौराणिक इतिवृत्त के साथ-साथ राजनीति, देश प्रेम, सामाजिक सुधार वर्तमान स्थिति आदि का नाटकीय प्रदर्शन करके जनता की रुचि को उस ओर आकर्षित किया और नाटक को जीवन का प्रतिबिम्ब और उनकी व्यंजना करने वाले माध्यम के रूप में स्थापित कर उसे आधुनिक नाट्य प्रणाली के उपयुक्त बनाया (३) गद्य और पद्य का रूप स्थिर कर नाटकों की भाषा को प्रांजल किया और उसे अभिव्यंजना के लिए

सबल बनाया (४) दृश्य काव्य में आवश्यक सगीत का पुनरुद्धार किया (५) प्राचीन सस्कृत परिपाटी को तात्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार ढाल कर उसे युगानुकूल बनाया (६) नाटक के नए रूपों-प्रहसन, सुखान्त दुखान्त आदि का समावेश करा कर नाटक साहित्य को नया रूप और जीवन प्रदान किया। अपने पूर्ववर्ती लेखकों की अपेक्षा नाटक की विभिन्न-रूपता का विकास किया। ७—अनेक नाटक कम्पनियों की स्थापना करा कर जनता की रुचि को सुसस्कृत करने का उद्योग किया और पारसी कम्पनियों के बुरे प्रभाव से उसकी रक्षा की। ८—अपने समकालीन लेखकों और मित्रों को प्रोत्साहन देकर नाटक साहित्य की क्षति पूर्ति का अथक प्रयत्न किया। इस प्रकार उनके समकालीन एव आगे आने वाले युग के लेखकों के लिए भारतेन्दु का नेतृत्व बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।"

(—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास पृष्ठ ८२)

आलोचक प्रो० जयनाथ "नलिन" एम० ए० के अनुसार भारतेन्दु की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

"भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों द्वारा बहुमुखी सृजन किया। देश भक्ति की सोई आग को जगाया, नई शिक्षा के स्वस्थ रूप को अपनाया। साहित्य शैली भाषा सभी की अनुपम रचना की। मौलिक प्रहसन और नाटक भी लिखे अन्य भाषाओं के सुन्दर अनुवाद भी किए। उनके अनुवाद बहुत सफल हैं और मौलिक नाटकों का सा आनन्द उनमें आता है"""""नाटकों की प्रेरणा है नवीन जागरण की ज्योति। देशभक्ति की भावना से ही सबल प्रेरणा पाकर भारतेन्दु ने अपने नाटक, काव्य, इतिहास आदि की रचना की'''कथानक और पात्रों की दृष्टि से उनके नाटक तीन प्रकार के हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या वर्तमान जीवन सम्बन्धी। रस की दृष्टि से वीर, शृंगार, हास्य, करुणा उनके नाटकों में पाये जाते हैं। फल की दृष्टि से सुखान्त तथा दुखान्त दोनों प्रकार के नाटक उन्होंने लिखे हैं.......जीवन के हर क्षेत्र से अपने नाटकों की सामग्री एकत्र की और उनमें जीवन की विविधता का भी चित्रण किया। भारतेन्दु की प्रतिभा सकुचित क्षेत्र में बँधी नहीं थी—उसका विस्तार मानव की जीवन धरती पर बहुत दूर दूर तक था। उनकी प्रतिभा, कला और कल्पना की सीमाएँ बहुत उदार थीं। एक ओर तो वह प्राचीन भारतीय भक्ति में विह्वल प्रेम रूपकों की रचना करते हैं, दूसरी ओर प्राचीनता की खिल्ली उड़ाते हैं। यही प्राचीन-नवीन का समन्वय उनकी कला की विशेषता है,"

(प्रो० नलिन कृत "हिन्दी के नाटककार" पृष्ठ ४४)

प्रो० ललितप्रसाद सुकुल के अनुसार "परम्परागत नाट्यकला निमित्तवाहिनी हो चुकी थी। १९ वीं शताब्दी के मध्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के हाथों में पड़कर हिन्दी के नाट्य साहित्य के प्रारम्भ का ही कारण नहीं बनी, वरन् सामयिक जातीय सुधार का सफल माध्यम भी बन सकी। आज के प्रायः सभी समालोचक और हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले एक मत हैं कि हिन्दी साहित्य में नाट्यकला के पुनर्जागरण का श्रेय भारतेन्दु को ही है। वह यदि राष्ट्रीयता के अनन्य भक्त थे तो भारतीय साहित्य के विविध अंग और उपांगों के भी अच्छे ज्ञाता थे। नाट्य रचना के क्षेत्र में उन्होंने जो कुछ भी हिन्दी साहित्य को दिया है वह नाट्यकला और कौशल की दृष्टि से भी एकांगी नहीं है। प्राचीन संस्कृत और प्राकृत नाटकों के हिन्दी अनुवादों के रूप में उन्होंने एक नहीं अनेक उच्चकोटि के पूर्ण नाटक हिन्दी के कोष में सजोये हैं, रूपकों और उपरूपकों के अनेक भेद उन्होंने प्रस्तुत कर दिये हैं। उन्हीं की प्रेरणा से उनके बाद भी हिन्दी में न जाने कितने नाट्य साहित्य के प्रणेता हुए।"

—"भारतीय नाट्य परम्परा के मूल तत्त्व"

(४) उनके नाटकों की विशेषताएँ—विचार और भाव पक्षों में भारतेन्दु जी में कई प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जैसे राष्ट्रीयता, समाजसुधार, सामयिक जीवन की आलोचना, ऐतिहासिक आदर्शवाद और पौराणिक पात्रों का चरित्र गौरव आदि। भारतेन्दु युग नए विचारों, पाश्चात्य शिक्षा, और प्रगति का युग था। देश में नव चेतना का प्रादुर्भाव हो रहा था। अंग्रेजी के पढ़ने से भारतीय समाज को अपने पिछड़ेपन पर क्षोभ हुआ। उन्होंने तीखी आलोचक दृष्टि से समाज और जीवन को देखा तथा समाज सुधार का प्रयत्न किया। अशिक्षा निवारण, बाल विवाहों की त्रुटियाँ, विधवा विवाह की उपयोगिता, तात्कालीन समाज और जीवन का चित्रण, मांस मदिरा सेवन की हानियाँ, भारत दुर्दशा का चित्रण मिलता है। उन्होंने सामाजिक, पौराणिक और ऐतिहासिक सभी क्षेत्रों से अपने नाटकों की सामग्री एकत्रित की है।

समाज सुधार और भारत की राजनैतिक धार्मिक स्थिति का चित्रण "भारतदुर्दशा" तथा "भारत जननी" आदि नाटकों में विशेष रूप से हुआ है। "भारतदुर्दशा" में भारतेन्दु जी ने एक आलोचक के नेत्रों से भारत के दुर्दशा के कारणों पर दृष्टि डाली है और अतीत गौरव का दिग्दर्शन कराया है, उसके उन्नयन के उपाय चित्रित किए हैं। इसके अतिरिक्त इसमें राष्ट्रीयता और भारत की एकता आदि का ओजपूर्ण वर्णन है। "भारत जननी" में भी भारत की गिरी हुई अवस्था का चित्रण है। "अन्धेर नगरी" में तत्कालीन सामाजिक

राजनैतिक तत्कालीन दशा को लेकर हास्यपूर्ण व्यंग्य तथा आक्षेप किए गए हैं। "प्रेमयोगिनी" में काशी की वास्तविक दशा का वर्णन है। "विषस्य विषमौषधम्" में देशी राज्यों के अत्याचारा तथा इस कारण उनके विलयन का सूत्रपात मिलता है। "वैदिकी हिंसा" में पाखण्डियों द्वारा मांस मदिरा आदि सेवन की त्रुटियाँ दिखाई गई हैं। इन सभी नाटकों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपों में देश की दयनीय दशा के प्रति उनकी करुणा मिलती है; समाजोत्थान की उत्कट लालसा और कुरीतियों के निवारण के उद्योगों की स्पष्ट झलक है।

दूसरी वृत्ति राष्ट्रवाद है। उनके नाटकों में देश प्रेम की प्रेरणा भरी है। "भारत जननी" के सूत्रधार के ये शब्द देखिए—"भारत भूमि और भारत-सतान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारतजननी की इतिकर्त्तव्यता है और आज जो यह आर्यवंश का समाज यह खेल खेलने को प्रस्तुत है, उसमें से एक मनुष्य भी यदि हम भारत भूमि के सुधारने में एक दिन भी यत्न करे तो हमारा परिश्रम सफल है।" देश का हित सदा उनके जीवन का मूल मन्त्र रहा। उसमें व्याप्त महगी, रोग, अतिवृष्टि, फूट, कलह, आलस्य, हिन्दू मुसलिम वैमनस्य, कायरता, खुशामद, टैक्स आदि देखकर उनके मर्मस्थल में चोट लगती थी। सम्पूर्ण "भारत दुर्दशा" नाटक तत्कालीन समाज में फैले हुए दोषों के चित्रण से भरा है। इसमें नाटककार ने भारत, दुर्दैव, दुर्दशा, सत्यानाश, निर्लज्जता, मदिरा, अन्धकार, रोग, आदि को पात्रों का मूर्त रूप प्रदान कर हिन्दुस्थान की गिरी हुई दशा का जो चित्र खींचे हैं, उन्हें देखकर किस भारत प्रेमी के हृदय को आघात न पहुँचेगा! पहले गीत से ही उनका विलाप प्रारम्भ हो जाता है और नाटक के मूल स्वर पर प्रकाश पड़ता है—

"आवहुँ सब मिलि कै रोवहु भारत भाई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥"

नाना धर्मों के मिथ्याचार ने देश को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित कर कैसी दयनीय दशा कर दी है इसका वर्णन सत्यानाश के निम्न वचनों में देखिए—

"रचि बहु विधि के शाक्य पुरातन माँहि घुमाए
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए
जाति अनेक करी नीच अरु ऊँच बनायो
खान-पान सम्बन्ध सबन को बरजि छुड़ायो
जन्मपत्र विधि मिले व्याह नहिं होन देत अब
बालकपन में व्याहि प्रीतिबल नास किया सब।"

उपर्युक्त दोनों नाटकों के अतिरिक्त "नीलदेवी" में भी देश प्रेम, स्वदेश भक्ति और समाज के कल्याण की भावना है। "नीलदेवी" में जहाँ एक ओर मुसलमानों की रणनीति तथा धर्मान्धता, क्षत्रियों की वीरता, शठ के प्रति शठ्य नीति का चित्रण किया है, वहाँ दूसरी ओर देश प्रेम से पूर्ण वीरता के भी मंजुल भाव हैं। एक स्थान पर कहा गया है :—

"सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु वीरवर भारत की सब आसा॥
अब सुख-सूरज को उदय नहीं इत ह्वै है।
सो दिन फिर इत अब सपनेहुँ नहिं ऐहैं॥
स्वाधीन पनो बल धीरज सबहिं नसैहैं।
मंगलमय भारत-भुव मसान ह्वै जै है॥

नाटककार भारत की उन्नति की कोई आशा नहीं देखता। वह निराश है। अप्रत्यक्ष रूप से भारत के उद्धार की चिन्ता देश के नर नारियों को वीर निर्भय, प्रतिभाशाली बनाने की आकांक्षा उसके हृदय में है।

तृतीय विचारधारा प्रेम सम्बन्धी है। भारतेन्दु जी के कई नाटक प्रेम से परिपूर्ण कथानकों पर आधारित हैं—विद्या सुन्दर, चन्द्रावलि आदि। "विद्या सुन्दर भारतेन्दु जी के शब्दों में "विशुद्ध हिन्दी के नाटकों के इतिहास में चौथा स्थान रखता है और खड़ी बोली का दूसरा नाटक है। इसमें चित्रित प्रेम गुण-श्रवण से उत्पन्न होने वाले प्रेम की पद्धति दिखाई गई है। मुख्य नायिका विद्या अपने प्रेमी सुन्दर के गुण सुन कर उससे प्रेम करने लगती है। पूर्वा-राग में वियोग से पीड़ित हो छटपटाने लगती है। धीरे २ यह प्रेम विवाह में विकसित हो जाता है प्रो० नलिन का यह मत सही है, "विद्यासुन्दर" का प्रेम सूफी ढग का पूर्वानुराग है। यही प्रेम में परिवर्त्तित हो जाता है। अन्त में विवाह इस प्रेम का सुखद परिणाम होता है। विद्यासुन्दर का प्रेम बहुत हलका रह गया है। इसमें सूफियों के प्रेम जैसी सघनता, तड़प और विरह—व्यथा नहीं आ पाई है।" ×

"चन्द्रावली" प्रेम तथा भक्ति का अनन्य उदाहरण है। "चन्द्रावली" में सच्चे प्रेम का चित्र खींचा गया है। इसकी प्रमुख नायिका चन्द्रावली तथा नायक श्रीकृष्ण हैं। कुल मर्य्यादा की अवहेलना कर चन्द्रावली श्रीकृष्ण के प्रेम में पागल हो जाती है। इसमें कृष्ण के उपासकों की पुरानी पद्धति के अनुसार प्रेम चित्रण किया गया है। प्रेम सम्बन्धी भावों का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है।

× देखिए प्रो "नलिन" कृत "हिन्दी नाटककार" पृष्ठ ५१

भारतेन्दु जी का प्रेम सागर इसमें स्थान स्थान पर उमड़ा है यहाँ तक कि कहीं २ तो अस्वाभाविकता तक आ गई है।

चौथी विचार धारा हास्य-व्यंग्य सम्बन्धी है। गम्भीर से गम्भीर तथा उत्तम हास्य-व्यंग्य प्रधान प्रहसन दोनों ही प्रकार की रचनाएँ उनकी लेखनी से प्रसूत हुई हैं। हास्य के क्षेत्र में वे शिष्ट व्यंग्य प्रधान नाटकों के निर्माता हैं। यह हास्य कई प्रकार का है। कहीं हास्य की मृदुल फुहार है, तो कहीं व्यंग्य का चुभता हुआ बाण। समाज, व्यक्ति धर्म माँस-मदिरा पान आदि पर उन्होंने मधुर व्यंग्य किए हैं। "अंधेर नगरी" में तत्कालीन राजनैतिक अन्धेरपन पर व्यंग्य है तो "वैदिकी हिंसा" में पाखण्डियों द्वारा माँस-मदिरा सेवन पर व्यंग्य प्रहार है। दोनों प्रहसन अपने-अपने ढग के सफल व्यंग्य हैं "भारत दुर्दशा" में तत्कालीन अवस्था पर व्यंग्य है। इसमें समाज के खोखलेपन, दिखावा, दम्भ, आदि की गिरी हुई दशा दिखाई गई है। उनके नाटकों में अनेक वर्गों, स्थितियों और सामाजिक अवस्थाओं के पात्र हैं जैसे राजा, मन्त्री, वैद्य, पंडित, काजी, मुल्ला, सिफारिशी, व्यापारी पन्डे, गुंडे, लुच्चे, कुंजड़े राजनैतिक कर्मचारी आदि किन्तु उनकी एक खूबी यह है कि सब का चरित्र पृथक् पृथक् प्रत्येक पात्र के अनुकूल है। चरित्र चित्रण में यथार्थवादिता और मनोवैज्ञानिक सत्यता है।

भारतेन्दु जी ने स्वयं लिखा है कि—"इन नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य होते हैं यथा १—शृंगार २—हास्य ३—कौतुक ४—समाज संस्कार ५—देशवत्सलता।" स्वयं उन्होंने इनका पालन किया। उन्होंने रस को सर्वोपरि माना है। कुछ ऐसा विधान है कि एक नाटक में एक ही रस की प्रधानता है। किसी में प्रेम का चित्र है तो किसी में देशभक्ति की लहर। "सत्य हरिश्चन्द्र" में करुण रस का सागर लहरा रहा है। "चन्द्रावली" में शृंगार रस अपने पूरे जोर पर है; "वैदिकी हिंसा" और "अन्धेर नगरी" हास्य रस प्रधान रचनाएं हैं। काव्य के प्रयोग से उन्होंने इन रसों का अच्छा परिपाक किया है। काव्य की अपूर्व छटा दिखाई देती है।

अभिनेयता भारतेन्दु के नाटकों का गुण है। अभिनेयता उनकी नाट्यकला का प्राणवान तत्व है। उन्होंने दृश्यों की रचना रंगमञ्च की आवश्यकताओं के अनुसार की है। दृश्यों का क्रम देखने से विदित होता है कि स्वयं वे नाटकों के अभिनय में दिलचस्पी रखते थे। अभिनय की दृष्टि से "विद्यासुंदर", 'नीलदेवी' और "सत्य हरिश्चन्द्र" का क्रम आता है। पद्यात्मक सम्वाद, स्वगत के प्रयोग और लम्बे कथोपकथन अभिनय में बाधा उपस्थित करते हैं। फिर भी अधिकांश

नाटक अभिनय में सफल हैं। भाषा की दृष्टि से ये आधुनिक गद्य से परिपूर्ण हैं जिसमें कवित्व का माधुर्य है।

टेकनीक (तन्त्र) की दृष्टि से भारतेन्दु ने न तो पूरी तरह सस्कृत नाट्य-शास्त्र का ही पालन किया है, और न पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का ही। उनके नाटकों का झुकाव सस्कृत की ओर है, किन्तु वे नवीनता की ओर उन्मुख हैं। नए पुराने नाटक शास्त्र में उन्हें जो उत्तम तत्व प्रतीत हुए, उन्हें उन्होंने ग्रहण किया। उन्होंने पुरानी परिपाटी को तोड़ने के सम्बन्ध में स्वय लिखा है—

"अब नाटक में कहीं "आशी" प्रभृति नाट्यालकार, कहीं प्रकरी, कहीं विलोमन, कहीं सफेट, कहीं पचसधि, वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आव श्यकता नहीं रही। सस्कृत नाटक की भाँति हिन्दी नाटक में इनका अनुसधान करना, वा किसी नाटकाग में इनको यत्न पूर्वक रख कर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है क्योंकि प्राचीन लक्षण रख कर आधुनिक नाटकादि की शोभा सपादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ जाता है।"

" · नांदी रचनादि विषय के नियम हिन्दी में प्रयोजनीय नहीं हैं।" उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि भारतेन्दु क्रान्तिकारी नाटककार थे। वे नए प्रयोग कर हिन्दी नाटक का पथ प्रशस्त कर रहे थे। फिर भी उनके नाटकों में अनेक पुराने तत्व, कृत्रिम प्रयोग मिलते हैं। जैसे पद्यात्मक सवाद, गानों की प्रचुरता, स्वगत, सूत्रधार का प्रयोग भरत वाक्य आदि। भारतेन्दु जी के नाटकों में प्राचीन तथा नवीन नाट्यकलाओं का सामजस्य है। कथोपकथन और रस निरूपण मे प्राचीनता के साथ नवीन विषय, सामाजिक क्रान्ति की विचारधारा और पाश्चात्य दृष्टि का चरित्र चित्रण पाया जाता है। उनके चरित्र आदर्श हैं—जैसे चन्द्रावली में आदर्श प्रेमिका, हरिश्चन्द्र में दानशीलता, नीलदेवी में आदर्श वीर नारी, सूर्यदेव धीरोदत्त नायक, और अमीरखल नायकों के आदर्श हैं। जहाँ प्राचीन नाटकों की भाँति उन्होंने राजा रानी मन्त्री आदि चित्रित किए हैं, वहाँ हमारे समाज में रहने वाले मध्यवर्ग के व्यक्तियों का भी चित्रण किया है। पाश्चात्य नाटकों की एक विशेषता मानव का अन्तर्द्वन्द्व है। "सत्य हरिश्चन्द्र" में चौथे अक में राजा हरिश्चन्द्र के हृदय में कर्त्तव्य और भावना का द्वन्द्व सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक है। कार्य व्यापार की दृष्टि से भी "सत्य हरिश्चन्द्र" सर्वश्रेष्ठ नाटक है। विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र में सघर्ष प्रारम्भ होकर चरम सीमा पर पहुँचता है और अन्ततः सत्य तथा धर्म की विजय होती है। "नील-देवी" के वस्तु सगठन में नवीनता है। दृश्य विधान पाश्चात्य शैली का है। उद्देश्य भी नवीन है जैसे—"हमारी गृह देवियाँ भी अपनी वर्तमान दीनावस्था

को त्याग कर कुछ उन्नति प्राप्त करें।" नीलदेवी के माध्यम द्वारा भारतेन्दु जी ने भारतीय देवियों को वीर बनने की प्रेरणा दी है। तात्पर्य यह है कि उनके नाटकों में प्राचीन और नवीनता का सामंजस्य है।

५—नाटकों के दोष :—श्री अवध उपाध्याय के शब्दों में, "भारतेन्दु जी के सब नाटक कविता भार से दब से गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि नाटकों में भी कविता होनी चाहिए, परन्तु नाटकों में और भी कई बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। कथानक की रोचकता की अपेक्षा इन नाटकों में काव्य की छटा ही अधिक दिखाई पड़ती है। भारतेन्दु जी के नाटकों में तथा साधारण कहानियों में विशेष अन्तर ही नहीं दिखलाई पड़ता। वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए था। मानव हृदय के गूढ़ तथा अव्यक्त भावों का चित्रण भारतेन्दु जी के नाटकों में नहीं पाया जाता। तथापि इनके सब नाटकों का जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा.... ...इसमें सन्देह नहीं कि भारतेन्दु जी हिन्दी नाटकों के जन्मदाता कहे जा सकते हैं परन्तु वे उच्चकोटि के नाट्यकार नहीं माने जा सकते। भारतेन्दु जी ने उस समय नाटक लिखना प्रारंभ किया था जब हिन्दी में न तो कोई अच्छे गद्य लेखक ही थे और न कोई नाट्यकार ही था। इसलिए हम लोग भारतेन्दु जी के नाटकों में तो नाटक के सर्वश्रेष्ठ गुणों के पाने की आशा ही कर सकते हैं और न उनमें नाटक के ये गुण मिलते ही हैं। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों में न तो संस्कृत नाटकों का ही अनुकरण किया है और न अंग्रेजी नाटकों का; न तो उन्होंने बंगला नाटकों का ही बिल्कुल अनुकरण किया है और न किसी विशेष कम्पनी ही का। उन्होंने इन सब का प्रयोग किया है।"

उनके नाटकों में "अंकों" तथा "दृश्यों" के प्रयोग के विषय में कोई स्पष्ट नियम नहीं है। जैसे "अन्धेर नगरी" तथा "भारत दुर्दशा" में छोटे छोटे छै अंक हैं जबकि भारतेन्दु जी का तात्पर्य दृश्यों से है। कुछ दृश्य बहुत छोटे हैं। "प्रेम जोगिनी" में पात्र नियोजन त्रुटिपूर्ण है। हर गर्भाङ्क में नवीन पात्रों का प्रवेश है। प्रतीक रूपकों में अमूर्त पात्रों का अभिनय कठिन है। पढ़ने में तो आनन्द आता है पर उनका वैसा सफल अभिनय संभव नहीं है। अनेक संवाद बड़े बड़े काव्य-बोझिल हो गए हैं। "विषस्य विषमौषधम्" में संवाद बहुत लम्बे और श्रोताओं को ऊबा देने वाले हैं। लम्बे संवादों के कारण कार्य व्यापार (Action) की कमी हो गई है। पात्र रंगमंच पर निर्जीव से खड़े रहते हैं एक बोलता जाता है। भाषाओं—उर्दू, ब्रज और खड़ी बोली का पुनः पुनः बदलना भी प्रभाव को शिथिल करने वाला है।

"चन्द्रावली" नाटिका—भारतेन्दु जी की "चन्द्रावली" प्रेम तथा भक्ति का अनन्य उदाहरण है। उनके सब नाटकों में "सत्य हरिश्चन्द्र"; "चन्द्रावली" और "भारत दुर्दशा" सर्व श्रेष्ठ कला कृतियाँ हैं। "मुद्राराक्षस" नामक अनुवादित नाटक भी व्यापक हैं किन्तु प्रेम, भक्ति और काव्य माधुर्य की दृष्टियों से "चन्द्रावली" सर्वश्रेष्ठ नाटिका है। प्रेम का बड़ा ही मर्म स्पर्शी विश्लेषण इसमें हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वय भारतेन्दु जी ने इसे बड़े मनोयोग पूर्वक लिखा हो। उनकी आत्मा पूर्ण तन्मयता से इसमें रमी है। जनता में इस नाटिका की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगता है कि इसका अनुवाद सस्कृत तथा ब्रज भाषाओं में भी हो गया है।

"भारतेन्दु जी का प्रेम सागर "श्री चन्द्रावली" में स्थान स्थान पर उमड़ा पड़ता है। यदि इसमें पर्य्याप्त सजीवता होती, यदि इसमें अस्वाभाविकता न होती, यदि इसमें थोड़ा भी चरित्र चित्रण होता, यदि इसमें प्राकृतिक दृश्यों का मानवजीवन से सम्बन्ध होता, तो वास्तव में यह हिन्दी का एक अमूल्य रत्न होता। तथापि "श्री चन्द्रावली" का स्थान भारतेन्दु जी की मौलिक नाटिकाओं में, यदि सर्वश्रेष्ठ नहीं, तो बहुत ऊँचा अवश्य है।"×

इस नाटिका की सबसे बड़ी विशेषता उसका काव्य-वैभव है। कवि भारतेन्दु का हृदय जैसे स्थान स्थान पर उमड़ पड़ता है; काव्य की प्रधानता का आभास प्रारम से ही लग जाता है। प्रस्तावना का दोहा—

"भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर
जयति अलौकिक घन कोऊ, लख नाचत मन मोर॥"

बहुत सुन्दर बन पड़ा है। भावों की उत्कृष्टता के साथ रस तथा अलंकारों का भी मजुल सहयोग है। इस दोहे का प्रयोग अन्यत्र भी किया गया है। प्रथम अक में चन्द्रावली और ललिता का कथोपकथन काव्य से भीगा हुआ है। नारद जी के दो पद "गोपिन की सरि कोऊ नाहीं" तथा "ब्रज के लता पता मोहि कीजै" मर्म-स्पर्शी गीत हैं। उनका कवि हृदय इन गीतों में अनायास ही बह निकला है। गोपियों के प्रेम का बड़ा मधुर वर्णन है। द्वितीय अक में प्रेमिका की वास्तविक दशा का सजीव चित्रण है। प्रेम की गहनता दर्शनीय है। चतुर्थ अक में योगिन के पद यमुना वर्णन, कलहसों का वर्णन कवि हृदय का सुन्दर चित्रण है। भावों को स्पष्ट करने के लिए भारतेन्दु जी ने अवसर ढूढे हैं। अवसर प्राप्त होते ही काव्य-सरिता प्रवाहित कर दी है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से इस नाटिका का महत्त्व बहुत है। इसे काव्य ही मानें तो उत्तम रहेगा।

× श्री अवध उपाध्याय

नाट्यशास्त्र की दृष्टि से इसका निर्माण प्राचीन संस्कृत परिपाटी पर हुआ है। प्रारंभ में ब्राह्मण आशीर्वाद देता है। सूत्रधार अभिनय का संकेत देता है। प्रस्तावना, स्वगत, निष्कम्भक अति काव्यमय प्रयोग, आदि संस्कृत नाटकों के आधार पर किया गया है। आशीर्वात्मक दोहे, प्रस्तावना और काव्य के प्रयोग आदि निकाल दें तो भी नाटिका को हानि नहीं पहुँचती। आधुनिक नाटकों में इस प्रकार की प्रस्तावनाओं की आवश्यकता नहीं समझी जाती। वे तुरन्त प्रारंभ होते और गति पकड़ लेते हैं। इस नाटिका का कथोपकथन दोषपूर्ण है। लम्बा, अति साहित्यिक, और अस्वाभाविक है। कवि ने चन्द्रावली के हृदय का वर्णन तो किया है किन्तु उनमें सहज स्वाभाविक नहीं है कृत्रिमता है। वर्णन की प्रधानता है पर आन्तरिक द्वन्द्वों का उद्घाटन नहीं हो पाया है। नाटक की दृष्टि से कविता का महत्त्व नहीं है। पात्रों की संख्या, विशेषतः सखियों की संख्या बहुत है। भारतेन्दु जी के स्वकथन बहुत लम्बे हो गये हैं। चौथे अक के प्रारम में श्रीकृष्ण योगिक का रूप धारण करके आते हैं और पद में विस्तार से स्वयं अपना ही वर्णन करते हैं तो हास्यास्पद लगता है नाटिका का अत भी नाटकीय ढंग से नहीं हुआ है। इन दोषों के होते हुए भी भारतेन्दु की काव्य कला की छाप "श्री चन्द्रावली" पर है।

नाट्यकार 'प्रसाद' का महत्व *

भारतेन्दु युग में हिन्दी-नाटकों की रचना का आरम्भ भी हुआ और प्रसार भी। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, श्री निवासदास प्रभृति अनेक कृतिकारों के निरंतर प्रयास के परिणामस्वरूप एक से एक सुन्दर रचनाएँ उपस्थित हुईं। प्रयोग का विस्तृत क्षेत्र पाकर नाटक-रचना का स्वरूप भी कुछ परिष्कृत होने लगा और विषय विन्यास में भी उतार-चढ़ाव दिखाई पड़ने लगा। हिन्दी के तत्कालीन नाटकों का गठन भविष्य की भव्यता का आभास देने लगा था और बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में जो थोड़े से नाटक निकले उनमें नाटकीय तत्वों का सयोजन अधिक कौशलपूर्ण पद्धति से किया गया। इस प्रकार इस शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों में लिखे गये विभिन्न नाटकों ने आगामी पीढ़ी के प्रौढ रचनाकारों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था और विविध प्रकार की भूमियों तक पहुँचने का सकेत भी उपस्थित कर दिया था।

हिन्दी की नाट्य रचना का द्वितीय उत्थान ई० सन् १६२० के उपरान्त ही मानना चाहिये। विषय सग्रह के विचार से भी और रचना विधान की दृष्टि से भी। इस युग में लिखने वालों का स्वरूप-सगठन भले ही पहले आरम्भ हो चुका था पर उनका परिमार्जित रूप बाद में ही देखने को मिला। इस समय के कृतिकारों में स्वर्गीय जयशकर प्रसाद का कृतित्व एव व्यक्तित्व अद्वितीय और उन्मेषवर्धक थे। यों तो 'सुदर्शन', 'कौशिक', 'उग्र', बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जी० पी० श्रीवास्तव आदि अन्य अनेक मौलिक लेखकों ने अपनी कृतियों से साहित्य का भण्डार भरने में योग दिया था पर जो महत्त्व 'प्रसाद' जी को प्राप्त हुआ वह सर्वथा स्पृहणीय था। भारतेन्दु जी के उपरान्त नाट्यकारों में इतनी प्रौढ शक्ति, भव्य कल्पना, दिव्य प्रतिभा और रचना-पटुता अन्य किसी में नहीं दिखाई पड़ी। 'प्रसाद' जी अपने क्षेत्र में नेता बनकर आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हुए।

*"सरस्वती सवाद" से उद्धृत

वाणी की दिव्य विभूति के रूप में जो सम्पूर्ण साहित्यिक सर्जना होती है उसका मूलमंत्र है 'प्रतिभा इस दैवी शक्ति का प्रभाव उन विभिन्न उपादानों पर पड़ता है जिनके संयोजन से काव्य की निर्मित सिद्धि होती है काव्य का मुख्य उपादान है। विषय, विषय के निर्वाचन और निर्वाह में यदि प्रतिभा का पूरा-पूरा योग मिल जाय तो भूत, भविष्य तथा वर्तमान के सभी विषय हस्तामलकवत् अतीव सुस्पष्ट और सजीव हो उठते हैं। प्रतिभा भूत के गहन वन के भीतर घुस कर उसके अंतःकरण में विराजमान सभी सुन्दरताओं की झाँकी पा लेती है। एक ओर वह कवि के मानस को परितृप्त करके उसे प्रेरणा प्रदान करती है दूसरी ओर सहृदय, श्रोता अथवा पाठक को अनुरंजित करती है। जीवन और जगत् के अन्तराल में से अनुरंजनकारी सुन्दरताओं को बीन-बटोर कर प्रतिभा इस रूप में सजा देती है कि उस सृष्टि से मानव को लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है।

इस प्रतिभा का अभूतपूर्व चमत्कार 'प्रसाद' जी में दिखाई पड़ा। उनकी साहित्यिक पूर्णता का मुख्य कारण वही है। युगधर्म के अनुरूप विषय का निर्वाचन करने में उनकी प्रतिभा ने बड़ा काम किया। जिस समय देश की आकांक्षा राजनीतिक स्वातन्त्र्य की ओर थी, और सारे राष्ट्र के भीतर आत्म-गौरव की भावना जग रही थी उस समय 'प्रसाद' जी ने उद्दीपन विभाव के रूप में भारतीय इतिहास के उन प्रकाण्ड दृश्यों और व्यापारों की ओर देश-वासियों का ध्यान आकर्षित किया जिनके अनुकथन मात्र से उत्साह ग्रहण किया जा सकता था। उनके नाटक भारतीय गौरव, शक्ति उत्साह और पराक्रम के प्रतीक हैं। उनमें ऐसे उदात्त पात्रों के इतिवृत्त उपस्थित किये गये हैं जो भारतीय सस्कृति और आदर्शों के सच्चे प्रतिनिधि हैं, जिनसे किसी भी युग और देश की जनता प्रेरणा ग्रहण कर सकती है।

जिस समय 'प्रसाद' जी की नाटक रचना की शक्ति अपने पूरे प्रसार में थी उस समय (ई० सन् १९२०-३१) भारतीय राजनीति के क्षेत्र में त्यागमय पराक्रम और अद्भुत प्रयोग सामने रखे जा रहे थे। जन-जन और कण-कण में आत्म गौरव की अनुभूति और उत्साहपूर्ण क्रियाशीलता की वृद्धि आवश्यक थी। जागरूक भविष्यद्रष्टा के रूप में 'प्रसाद' ने अपने युग की आकांक्षा को पहचाना, उनके पोषण-संवर्धन में उनकी प्रतिभा ने योग दिया। युग के अनुरूप उसने विषय की व्यवस्था की। अन्धकाराच्छन्न प्राचीन ऐतिहासिक वृत्तों के निविड़ अन्तराल में उलझे सूत्रों को लेकर उस अपूर्व निर्माण-क्षमता ने एक से एक आकर्षक और प्रभावशाली कार्यावली सामने रखी। उसी प्रतिभा की चिर-

संगिनी स्मृति स्वरूपा कल्पना ने वृत्तों के टूटे-फूटे अंशों को जोड़ने में सहायता की। इस प्रकार दूरस्थ विगत, अमर कवि का माध्यम पाकर 'जनमेजय', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' इत्यादि के रूप में साकार और सजीव हो उठा। कवि हृदय की सगति युग-धर्म से पूरी-पूरी बैठ गई।

प्रसादजी के नाटकों का विशेष महत्व इसलिए भी है कि उन्होंने सस्कृत की प्राचीन नाट्यकृतियों की परम्परा में अपने स्वरूप को ढालने का अपूर्व प्रयास किया। उनके समय तक हिन्दी में जो मौलिक नाटक लिखे गये थे उनमें इतिवृत्त और यथातथ्यता का व्यावहारिक रूप इतना प्रवेश पा गया था कि काव्य-तत्व दुर्बल और गद्यतत्व प्रबल पड़ चला था। इसलिए उसमें सवेदनशीलता की योग्यता कम होती जा रही थी और स्थूलता उमड़ी आ रही थी। 'प्रसाद' ने अपने नाटकों में प्रगीतात्मक काव्य-प्रणाली को दीप्त करके हिन्दी नाटकों को पुनः भारतीय नाट्य-रचना की प्राचीन धारा में मिला दिया और पूर्वा पर प्राचीन-नवीन में अविच्छिन्नता स्थापित कर दी। उनके वस्तु विन्यास में कर्म व्यापारों के शोधन में और पात्रों की हृदयगत भावनाओं में जो कविता भरी मिलती है वह सस्कृत की प्राचीन नाट्यकृतियों के अधिक समीप मालूम पड़ती है। इस प्रकार 'प्रसाद' जी की प्रतिभा ने कालगत दूरी को हटाकर सुदूर पड़ी शृंखला से वर्तमान को नियोजित किया।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि 'प्रसाद' में महत्व की वस्तु है—नवनवोन्मेष-शालिनी और अपूर्व निर्माण क्षमा प्रतिभा। उसी का दिव्य प्रसार नाटकों में रहने से वे इतने सजीव और सवेदनशील हो सके। उसी के परिणाम स्वरूप कवि विषय के निर्वाचन और निर्वाह में इतना सफल हो सका है तथा उसी के बल पर उसे साहित्यिक अमरता प्राप्त हो सकी है।

प्रसाद के नाटकों की भूमिका*

प्रसाद का व्यक्तित्व मूलतः दार्शनिक था। जीवन की आकस्मिक आपदाओं ने उन्हें किशोरावस्था में ही गम्भीर प्रकृति का बना दिया था। स्वभाव से भी वे आत्मनिष्ठ तथा एकान्तप्रिय (Reserved) थे। स्कूलों के अध्ययन से भी वे वंचित रहे, घर पर ही उनकी सारी शिक्षा हुई। इससे भी एकान्तप्रियता को सहारा मिला, स्वाध्याय और मनन की प्रवृत्ति बढती गई। इतिहास और दर्शन उनके प्रिय विषय बन गये। काव्य के मूल में दर्शन की प्रधानता है, नाटकों में इतिहास की। एक में दृष्टिकोण अन्तर्मुख (Subjective) है, दूसरे में वहिर्मुख (Objective)। प्रसाद का साहित्य इस प्रकार दोनों कोटियों का है। कहानियाँ भी मनोवैज्ञानिक, विशेष-कर व्यक्ति के ही अन्तर्द्वन्द्वात्मक मनोविज्ञान को लेकर चलने वाली, होने के कारण पहली कोटि में गिनी जानी चाहिए और उपन्यास सामाजिक होने के कारण दूसरी कोटि में। "राष्ट्रनीति, दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है" पर्णदत्त के मुख से यह स्वीकार करते हुए प्रसाद ने "क्या" और "कौन" को पीछे छोड़ कर "था" और "है" को नाटकों में अपनाया है। उनका नाट्य-साहित्य शुद्ध लौकिक है प्रत्यक्ष को लेकर चलने वाला। उनमें लोक संग्रह का प्रयत्न है, राष्ट्र के उद्बोधन की आकांक्षा है।

विषय (Subject matter) के विचार से प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक हैं, पर शैली में कवित्व का आग्रह बना रहा है। इतिहास के आधार ने राष्ट्रीय भावना का प्रसार किया है, मनुष्य की सनातन प्रवृत्तियों को अध्ययन करने का अवसर दिया है, कवित्व के आधार ने शैली को एक प्रकार की भव्यता प्रदान की है। कवित्व का अतिरेक हो जाने पर नाटकीय गुण का ह्रास भी हुआ है। मूल रूप में, इतिहास का अन्वेषण और कवित्वमयी शैली, नाटककार प्रसाद की ख्याति के मुख्य कारण हैं।

---

* सरस्वती संवाद से उद्धृत

रूपकों में इतिहास की योजना एक से अधिक उद्देश्यों को लेकर की गई है, जिनमें से इतने उद्देश्य या प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं—

१ अतीत-दर्शन, २. विद्वत्तापूर्ण गवेषण, ३. मौलिक मानव-वृत्तियों का अध्ययन, ४. राष्ट्रीयता और स्वदेश-प्रेम की भावना।

१. अतीत दर्शन—अतीत का प्रेम और आदर मानव प्रकृति में बद्धमूल है वर्तमान से ऊबने पर अतीत में उसे सुख और विश्राम मिलता है। अतीत में विचरण करने पर किसी दिव्य और आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति होती है। रोमान्टिक कवियों पर जिस "पलायन वृत्ति" (Escapism) का आरोप किया गया है वह मानव प्रकृति का ही एक अङ्ग है। **प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में उसी पलायन सुख का अनुभव किया है।** काव्य में क्षितिज की ओर, और नाटकों में अतीत की ओर वे कुछ पाने की आशा से दौड़ते हैं—"ससार में ही नक्षत्र से उज्ज्वल किन्तु कोमल स्वर्गीय सगीत की प्रतिभा तथा स्थायी-कीर्ति सौरभ वाले प्राणी देखे जाते हैं। उन्हीं से स्वर्ग का अनुमान कर लिया जा सकता है।"

अतीत का दर्शन कोरी भावुकता ही नहीं है। इसमें जीवन के लिए मूल्यवान पाठ और प्रेरणा मिलती है। वह पाठ है आत्मावलोकन। इतिहास का सग्रह इसी उद्देश्य से होता है। प्रसाद ने भी अतीत की आलोचना से वर्तमान को सुधारने का पथ निर्दिष्ट किया है।

२. गवेषण—इन ऐतिहासिक रूपकों का उद्देश्य केवल साहित्य निर्माण ही नहीं है, विद्वत्तापूर्ण गवेषण भी है। पुरातन युग के इतिहास के सम्बन्ध में प्रसाद की खोजें मूल्यवान सिद्ध हुई हैं। उन्होंने 'लुप्त' इतिहास का पुनर्निर्माण किया है, युगों की सन्धियों पर प्रकाश डाला है। इतिहास के विद्वानों की मडली में इसीलिए उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ है। इतिहास के अध्ययन में उन्होंने भारतीय साहित्य, पुराण और स्मृतियों से प्रामाणिक आधार सग्रहीत किये हैं इस प्रकार विशुद्ध अध्ययन का प्रेम इनके मूल में निहित है।

३ प्रवृत्तिनिरूपण—इतिहास और साहित्य में अन्तर यह है कि प्रथम में मानव-जीवन का बहिरग झलकता है, द्वितीय में उसका अन्तरग। अतः इन नाटकों में मानवीय कार्यों और लौकिक घटनाओं के मूल में रहने वाली प्रवृत्तियों का विश्लेषण है, अन्यथा इतिहास को साहित्य का स्वरूप कैसे प्राप्त होता है? मौलिक वृत्तियों में से प्रेम, प्रणय, करुणा, क्षमा, त्याग, बलिदान आदि सत् पक्ष की, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिहिंसा, प्रलोभन, छल, स्वार्थ आदि असत्

पक्ष की और महत्वाकांक्षा, उत्साह आदि उभय पक्ष की वृत्तियों का स्वरूप विभिन्न पात्रों द्वारा प्रकट किया गया है। चाणक्य की महत्वाकांक्षा और प्रतिहिंसा महान् हैं, अनन्त देवी और भटार्क की निम्न और नीच है।

४. राष्ट्रभावना—भावपक्ष के अन्तर्गत, ये नाटक अपनी राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम के लिए सर्वाधिक मूल्यवान हैं। किसी जाति को निरन्तर आगे बढाने का सबसे सुगम सफल उपाय उसके इतिहास को उसके समक्ष प्रस्तुत करते रहना है। इतिहास का अध्ययन जातीयता के विकास में और विश्व की प्रगति के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने में सहायक होता है। प्रसाद के नाटकों में हमारी जातीय सबलताएँ और दुर्बलताएँ दोनों ही व्यक्त हुई हैं। हिन्दी में राष्ट्रीय साहित्य का जो आन्दोलन भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ उसका पूर्ण विकास भारतेन्दु के नाटकों में दिखाई देता है। काव्यगत राष्ट्रीयता कल्पनात्मक और भावनात्मक ही रही है, पर इन नाटकों को इतिहास का आधार मिलने से राष्ट्रीयता का यथार्थ और व्यावहारिक स्वरूप हृदयंगम होता है। स्कन्द, बन्धुवर्मा, गोविन्द गुप्त, पर्णदत्त चन्द्रगुप्त, सिंहरण, चाणक्य, जयमाला, कमला, अलका, मन्दा आदि राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम के विविध प्रतीक रंगमंच से उतर कर हृदय में स्थायी वास-सा पा लेते हैं। उदाहरण देखकर सिद्धान्त को समझना सरल होता है। इसलिए नाटकगत राष्ट्रीयता काव्यगत से अधिक लोकोपयोगी और मूल्यवान है। नाटकों में अत्यन्त प्रभावशाली राष्ट्रगीतों की योजना भी प्रसाद ने की है जिनके जोड़ की राष्ट्रीय कविता हिन्दी में कम ही मिलती है।

इस प्रकार ऐतिहासिकता के धरातल पर प्रसाद के नाटकों का भाव-पक्ष प्रस्फुटित हुआ है। इतिहास के आधार पर मानव प्रकृति का विवेचन, जातीयता का स्वरूप निर्देश, स्वदेश-प्रेम की भावना और अपनी भौतिक दुर्बलताओं का दमन करते हुए भौतिक सबलताओं के विकास के साथ विश्व की प्रगति में आगे बढने का सन्देश मिला है।

अब देखना यह है कि नाटकीय तत्वों अर्थात् कथावस्तु, पात्र, देशकाल आदि पर इतिहास प्रेम का कहाँ तक प्रभाव पड़ा है।

प्रसाद में नाटकीय तत्व कथावस्तु में इतिहास के साथ कल्पना का सम्मिश्रण है। कल्पना का अंश जोड़ने में एक प्रवृत्ति प्रधान रही है। वह है युद्ध आदि की प्रधान कथा के साथ प्रणय की एक कल्पित कथा बराबर जोड़ी गई है। इसलिए पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का तो लोप नहीं हुआ है और

स्वतन्त्र रसात्मक व्यक्तित्व साथ में जुड़ गया है। प्रत्येक नाटक में एक प्रणय कथा है। युद्ध और विजय के साथ उस प्रणय की भी पूर्ति अथवा विध्वंस होता है। प्रत्येक नाटक में प्रणय की सफलता और विफलता के चित्र दिखाये गये हैं, स्कन्द गुप्त में केवल विफलता के चित्र हैं पर अन्यत्र सफलता के भी हैं। वस्तुतः प्रणय सम्बन्ध दृष्टिकोण निराशावादी ही था, प्रणय को एक अभाव और अपूर्ति मान कर ही प्रसाद चले हैं। आपका और सिंहरण अथवा चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया, अजात और वाजिरा, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के सफल प्रणय व्यापार केवल आनुषांगिक हैं, घटना का दूसरा पक्ष प्रकट करने के लिए ही हैं। प्रसाद उन्हें सत्य नहीं मानते, सत्य है देवसेना, कोमा और मालविका का प्रेम, मातृगुप्त का प्रेम—"धुआँ उठेगा, और तुम्हारी मूर्त्ति, धुंधली होकर सामने आवेगी।"

कथावस्तु में उत्साह और प्रेम की दो धाराएँ समानान्तर चलती हैं। एक आशा का संदेश देती है दूसरी निराशा का। आशा और निराशा के सम्मिलत बिन्दु पर ही सुख दुख मिश्रित नाटकों का अन्त होता है। प्रसाद की यह सामंजस्यवादी प्रवृत्ति "सुख दुख की आँख मिचौनी", जिसे काव्य में समरसतावाद का नाम मिला है, उनके नाटकों में भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। हर्ष का अविराम प्रवाह प्रसाद को सहन नहीं होता, बीच-बीच में आत्महत्या के प्रसंग इसीलिए आते रहते हैं। हो सकता है अभाववादी बौद्धदर्शन ने यह प्रवृत्ति उनके नाटकों को प्रदान की हो।

इससे स्पष्ट है कि प्रसाद ने अपने नाटकों में इतिहास का सत्कार मात्र किया है, उसकी दासता को स्वीकार नहीं किया। इतिहास के स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए भी उन्होंने अपनी रुचि और अपने व्यक्तित्व तथा संस्कारों का बहुत सा अंश अपने नाटकों के निर्माण में ढाला है। उनका दर्शन-प्रेम और काव्यानुराग पृथक नहीं रह सका है। न केवल शैली में, वरन् विषय प्रतिपादन में भी दर्शन और काव्य की प्रवृत्ति ने प्रायः अनुचित हस्तक्षेप किया है।

ऐतिहासिकता के कारण कथावस्तु में अभीष्ट सरलता का अभाव है। तत्कालीन समग्र इतिहास को बटोरने के प्रयत्न में अनावश्यक प्रसंग, अति विस्तार और जटिलता आ गई है। कहानी को समझने में बुद्धि को प्रयास करना पड़ता है और यह एक नाटककार की असफलता है।

पात्र—इतिहास और कल्पना के समन्वय में पात्रों के विचार से भी एक

दोष प्रसाद में आ गया है। प्रायः उनके नाटकों के नायक इतिहास से भिन्न हो गये हैं। यहाँ तक कि ऐतिहासिक और नाटकगत व्यक्तित्व की मैत्री असम्भव प्रतीत होती है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय इतिहास का उज्ज्वल रत्न है पर प्रसाद के नाटक में वह असमर्थ और परावलम्बी है। शील और विनम्रता का कृत्रिम बाना प्रसाद ने अपनी कल्पना से उसे पहिना दिया है। उसका सारा ऐतिहासिक गौरव नष्ट हो गया है। स्कन्दगुप्त की प्रशंसा में उन्हें अपनी ओर से अनेक प्रशंसात्मक वाक्य कहने पड़े हैं, क्योंकि अपनी कल्पना से निर्माण किये हुए उसके व्यक्तिगत एकान्त जीवन मे अनोखी दुर्बलताएँ उन्होंने दिखाई हैं। स्कन्दगुप्त की उदासीनता वृत्ति दिखला कर न उन्होंने कोई ऐतिहासिक बात प्रकट की है, न नाटकीय चरित्र को ही कोई काव्यता प्रदान की है।

स्त्रियों के प्रति उनका पक्षपात सा रहा है। पुरुष को वे कठोरता, प्रति-हिंसा अथवा महत्वाकांक्षा का प्रतीक मानकर इससे गम्भीर हैं। जिन पुरुष पात्रों में ये दोष नहीं हैं वे अस्थिर और दुर्बल हैं। जो दुर्बल भी नहीं हैं, ऐसे अपवाद थोड़े हैं, वे अपनी विजय का सुख नहीं भोगते। वन्धु वर्मा पर्णदत्त आदि मरकर ही गौरव पाते हैं। स्त्री पात्रों में अनन्त देवी और छलना भी पौरुष के कारण भयावनी हैं, उनमें नारीत्व नहीं है। किसी भी कारण हो प्रसाद की नारी सृष्टि पुरुषों की अपेक्षा भव्य है। स्कन्द की अपेक्षा देवसेना, चन्द्रगुप्त और सिंहरण की अपेक्षा अलका, चन्द्रगुप्त द्वितीय की अपेक्षा ध्रुव-स्वामिनी अधिक तेजस्वी और स्फूर्तिमयी है। शिव की अपेक्षा शक्ति और कृष्ण की अपेक्षा राधा की भी यही स्थिति कुछ सम्प्रदायों के अनुसार है। इस कल्पना का भी इतिहास के साथ मेल नहीं है। यद्यपि वीराङ्गनाओं के उदाहरण इतिहास में अनेक हैं पर उनका इतिहास भी उनके साथ है।

प्रायः पुरुष पात्रों में अधिकाश ऐतिहासिक हैं और स्त्री पात्रों में अधिकांश कल्पित। इतिहास के पात्रों के प्रति उनको मोह और ममता है। ऐतिहासिक होने के कारण प्रसाद के पात्र वर्गों में विभाजित हो गये हैं। प्रायः सभी पात्र राजकुल से सम्बन्धित अथवा उच्चवर्ग के हैं। राजपरिवार की दास दासियों और सैनिक आदि भी उच्च वर्ग में ही हैं। मध्यम और निम्न वर्ग की संस्कृति का प्रकाशन प्रसाद के नाटकों में नहीं है। दूसरे दृष्टिकोण से भी प्रसाद के पात्र वर्गगत (Types) ही हैं। उन्हें कुछ विशेष वृत्तियों के प्रकाशन का ही अभ्यास है, यथा भावुक प्रेमी प्रेमिकायें, प्रतिहिंसा और महत्वाकांक्षा के दोल

पर झूलने वाले स्त्री और पुरुष, दार्शनिक महात्मा कल्पनाशील कविहृदय युवक, प्रचण्ड कूटनीतिज्ञ, विलास-जर्जर सम्राट आदि।

इतिहास से उन्हें महत्त्वाकांक्षा की प्रवृति नियोजित करने का अवसर बार बार मिला है और सचमुच महत्त्वाकांक्षा के प्रतिनिधि पात्र उनके नाटकों में सबसे अधिक आकर्षक हैं, भले ही अनुकरणीय नहीं है। उनकी कल्पना ने प्रणय के भिन्न-भिन्न रूप प्रदर्शित किये हैं। प्रायः उनकी महत्वाकांक्षा प्रतिहिंसा से प्रबुद्ध हुई है—चाणक्य, भटार्क, ध्रुव स्वामिनी और छलना ऐसे ही पात्र हैं। इसकी महत्वाकांक्षा में अधिक वेग है। केवल मात्र साम्राज्य-लिप्सा और अधिकार प्राप्ति की आकांक्षा के चित्र अपेक्षाकृत मन्द हैं—अजात शकराज आदि। अनन्त देवी भी इसी कोटि में है पर उसका तेज प्रखर है।

कथोपकथन—ऐतिहासिकता का प्रभाव कथोपकथनों पर भी है। राष्ट्रीय उत्साह और उत्कट स्वदेश प्रेम की व्यजना के लिये ओजस्वी कथोपकथन हैं। पर कल्पना वाले अश के लिये जिसमें प्रणयकथा चलती है माधुर्यपूर्ण भावुक संवाद और स्वगत कथन हैं।

देशकाल—ऐतिहासिक होने के कारण ही प्रसाद के नाटकों में राजनैतिक वातावरण अधिक है, सामाजिक कम। सामाजिक वातावरण केवल धार्मिक पक्ष को लेकर ही दिखाई पड़ता है, सास्कृतिक दर्शन नहीं हैं। कुछ सम्बोधनात्मक शब्दों के अतिरिक्त उस काल के वेश, भूषा या भोजन अथवा वैयक्तिक रुचि विशेष का सकेत प्रायः इनमें नहीं मिलता है। धर्म उस काल में राजनीति के साथ-साथ चल रहा था। अतः धार्मिक वातावरण अर्थात् धार्मिक परिस्थितियों का बोध प्रायः सभी नाटकों में कराया गया है। हिन्दू राजनीति के साथ भारतीय धर्म का इतिहास, ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का सघर्ष, प्रसाद के नाटकों में बड़ा सजीव है।

देशकाल की एक विशेषता सभी नाटकों में प्रमुख है। प्रायः सधिकालीन इतिहास को ही चुना है अर्थात् एक राज्य कुल माध्वस और दूसरों के उदय होने के बीच की घटनाएँ लेकर ही ये नाटक लिखे गये हैं। इस प्रकार महाभारत काल से लेकर सम्राट हर्ष तक के युग की कड़ियों को अपने नाटकों में प्रसाद ने सग्रहीत किया है।

रस—वीर रस की प्रधानता ऐतिहासिक के कारण है। कल्पित कथा में रतिभाव का प्रसार मात्र है जो शृङ्गार रस भी अवस्था तक पहुँचा हुआ प्रतीत नहीं होता पर ऐतिहासिक कथा वीर रस से परिपूर्ण है। अधिकांश

नाटक वीर रस प्रधान है। षडयन्त्र, युद्ध और विजय की घटनायें प्रधान हैं, शेष गौण हैं।

उद्देश्य—आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रधान स्वर राष्ट्रीयता है। मध्य युग का अधिकांश साहित्य धार्मिक था, वर्तमान युग में धर्म और राष्ट्रीयता को एक ही मानकर चलने का प्रयत्न किया गया है। प्रसाद के नाटकों में धार्मिक संघर्षों के दृश्य यही व्यंजित करते हैं कि मनुष्यता सबसे बड़ा धर्म है, क्षमा, करुणा आदि पवित्रतम साधनाएँ हैं और राष्ट्रीय गौरव की रक्षा सबसे बड़ा पौरुष है। गुप्त जी की भारत-भारती में जो बिगुल बजा था।

"हम कौन थे, क्या होगये हैं।
और क्या होंगे अभी।"

उसका नाटकीय निरूपण प्रसाद ने अधिक सफलता से किया है—

"हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयंप्रभासमुज्ज्वला स्वतन्त्र पुकारती।"

प्रसाद के नाटकों के भावपक्ष में कार्य करने वाली कुछ प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया गया है। कलापक्ष में भी प्रसाद के नाटकों की कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ हैं।

शैलियों का समन्वय—जिस प्रकार अतीत और वर्तमान का समन्वय विषय पक्ष में है उसी प्रकार रचना शैली में भी संस्कृत नाटकों और पश्चिम से प्रभावित हिन्दी नाटकों की परम्परा को सम्मिश्रित कर दिया है। रस विचार, अवस्थाओं, सन्धियों, अर्थ प्रकृतियों द्वारा वस्तुयोजना, आदर्श की रक्षा नेता के गुण आदि में भारतीय शैली का ध्यान रक्खा है, पर प्रस्तावना, प्रवेशक, विष्कभक, आकाशभाषित, भरतवाक्य, वर्जित दृश्य आदि नियमों को जर्जर रूढ़ि समझ कर त्याग दिया गया है। पात्र निरूपण में योरोपीय 'व्यक्ति वैचित्र्य' के सिद्धान्त की झलक नायक की दुर्बलताओं द्वारा उसके जीवन में दुःखान्त का संचार (ट्रेजेडी की कल्पना) अन्तर्द्वन्द्वात्मक चरित्रांकन पद्धति, आदि नवीन प्रवृत्तियों को भी ग्रहण किया है।

कवित्व—जिस प्रकार भावपक्ष अथवा विषय-निरूपण में इतिहास की प्रधानता समस्त नाटकीय तत्वों में दृष्टिगोचर होती है उसी प्रकार शैली में कवित्व का संस्पर्श सर्वत्र है, भाषा, पात्रों की प्रकृति और संस्कृति, तथा परिस्थितियों की कल्पना आदि में काव्य रुचि के आग्रह से ही प्रणयकथा और भावुक प्रकृति का प्रसार उनके नाटकों में है। स्त्री और पुरुष, प्रतिहारी और परिचारिका,

कूटनीतिज्ञ मन्त्री और महत्वाकांक्षी सम्राट तक सभी भावुकता के रग में रगे हुये हैं।

भाषा पर कवित्व का प्रभाव तीन रूपों में है—मधुर शब्द-योजना लाक्षणिक प्रयोग और उपमा रूपक आदि की योजना। दीर्घ कथोपकथन गद्यगीत तक पहुँच जाते हैं। लाक्षणिक प्रयोगों से सरस सूक्तियाँ अनायास बन गई हैं और उपमा रूपक आदि के प्रयोग से पात्र और परिस्थितियों की व्याख्या अच्छी हुई है।

प्रकृति का प्रासगिक समावेश भी कवित्व के आग्रह से हुआ है। कुछ तो पात्र ही ऐसे हैं जिन्हें कवि ने अपना प्रकृति-प्रेम दान किया है और जो एक सास में प्रकृति के दृश्य अकित कर देते हैं, कहीं छायावादी ढग से जीवन और प्रकृति को बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से अकित किया है और वही भाषा की लाक्षणिकता तथा अलकार योजना में प्रकृति अप्रस्तुत रूप से अकित हुई है।

हास्य-व्यंग्य:—प्रसाद की गम्भीर रुचि में हास्य को अवकाश कम था, पर व्यग का समावेश अधिक हुआ है। निष्प्रयोजन शुद्ध मनोरजनात्मक हास्य प्रसाद में नहीं है, व्यग के साथ सप्रयोजना आलोचनात्मक हास्य है।

अभिनय—साहित्यकार को यह लोकरुचि का उपासक कम, शासक अधिक मानते थे। लोक की रुचि का नियमन करना साहित्यकार का भी उत्तरदायित्व है। अतः उनका दृष्टिकोण सास्कृतिक है मनोरञ्जनात्मक नहीं। साहित्यकार की भाषा सीखने की गरज लोक को भी होना चाहिये। भाषा की सरलता से ही काम नहीं चलता कबीर और जायसी जैसे लोक भाषाभाषी कवि भी सभी हिन्दी भाषियों के लिए सुगम नहीं है। साहित्यकार की साधना से लाभ उठाने के लिए लोक को भी कुछ साधना करनी होगी। इस विचार से अपने नाटकों की भाषा और भाव का स्वर उन्होंने अधिक सरल और नीचा नहीं किया है। इसके अतिरिक्त कुशल अभिनेताओं पर भी बहुत कुछ निर्भर है। जटिल और क्लिष्ट भाषा भी वाचिक अभिनय की कुशलता और इगितों से सुबोध बन जाती है। एक महत्वपूर्ण बात यह भी विचारणीय है कि नाटक का महत्व केवल दृश्यात्मकता में ही नहीं है, यह श्रव्य भी हो सकता है। नाटक के सुनने तथा पढ़ने में भी तो आनन्द आता है। उसी का जब अभिनय करना हो तो काँट छाँट की जा सकती है। विश्वविख्यात शेक्सपियर के नाटक ज्यों के त्यों रगमच पर नहीं लाये गये हैं, आवश्यक परिवर्तन के बाद ही अभिनेय बने हैं। अतः प्रसाद के

नाटक उनके अपने दृष्टिकोण से अभिनेय हैं, वे अपने अनुरूप रंगमंच विशेष की अपेक्षा रखते हैं।

उपसंहार—डा० नगेन्द्र ने प्रसाद के नाटकों पर उपसंहार का वाक्य बहुत ही उपयुक्त कहा है 'इन नाटकों का महत्व असम है। एक ओर पाठक जहाँ उनके दोषों को देखकर विक्षुब्ध हो उठता है, तो दूसरी ओर उनकी शक्ति और कविता से अभिभूत हुये बिना नहीं रह सकता। ये नाटक अंशों में जितने महान् हैं सम्पूर्ण रूप में उतने नहीं।' संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रसाद ने नाटकों के रूप में जो साहित्य दिया है वह हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु है। भले ही उनकी शैली अनाटकीय हो पर उनका सन्देश अप्रतिम है।

प्रसाद के नाटक

प्रसाद के नाटक हमारे नाट्य इतिहास में सम्मानित स्थान के अधिकारी हैं। अपने पूर्व से चली आती हुई पारसी रंगमंच की परम्परा और भारतेन्दु युगीन नाट्य कला की पृष्ठभूमि पर उन्होंने जो विशिष्ट निर्माण किया उसकी विकास प्रक्रिया उनके नाट्य साहित्य में अंकित है। डी० एल० राय ने उन्हें नई दिशा का संकेत दिया जिससे हिन्दी संसार इस काल तक अपरिचित था और उनकी प्रकृति प्रदत्त स्वच्छन्द मौलिक चित्त प्रवृत्ति ने हिन्दी नाट्य जगत को एक नये मोड़ पर ला खड़ा किया।

इतिहास की घटनाओं का अनुवर्तन करने में पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग नाटककार नहीं कर सकता। प्रसाद की प्रतिभा इस कसौटी पर कसी जाकर ही निखरी। उन्होंने इतिहास का बंधन स्वीकार करते हुए भी ऐसे पात्रों और चरित्रों की योजना की जो शत प्रतिशत ऐतिहासिक नहीं है। नाटकीय पात्रों में व्यक्तित्व स्थापन या चरित्र निरूपण का यह प्रयत्न हिन्दी नाटकों के विकास की ऐसी कड़ी है जो प्रसाद को असाधारण महत्व प्रदान करती है।

स्वतन्त्र नाटककार की हैसियत से उनकी पहली विशेषता है उनका काव्यत्व उनका कवि-व्यक्तित्व उनकी सारी कृतियों में उपस्थित है। वाक्यावलियों में प्रसाद शैली की छाप कुछ ऐसी लगी हुई है कि भ्रम की संभावना ही नहीं। उनके संवादों का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है जो साधारणतः किसी अन्य नाटककार की कृति में नहीं मिलता। उनके चरित्रों की सृष्टि, विशेषकर उनका नायक प्रसाद जी के कवि जीवन के आदर्शों का प्रतिनिधि है। उनके नाटकों का साँचा ही काव्यात्मक है और इसलिए कवित्व प्रधान भाषा और गद्य गीत शैली के संवाद की रचना उनके लिए साधारण वस्तु बन गई है।

उनके नाटकों की दूसरी प्रमुख विशेषता उनकी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्कर्ष की साधना को दृष्टि पथ में रखकर निर्मित हुआ। उनका नाट्य साहित्य अनोखी ऊंचाइयों पर पहुँच गया है। चन्द्रगुप्त नाटक में बहुत से पात्रों का निर्माण उस काल के सांस्कृतिक चित्र को सर्वांगीण एवं पूर्ण रूप की प्रतिष्ठा

देता है। फिर भी उन्होंने सस्कृति के नाम पर परम्परा का गुणगान अन्ध-श्रद्धा से नहीं किया, सभी स्थलों पर उसे 'ऐतिहासिक' आधार पर स्थापित करके ही स्वीकार किया है। उनके ध्रुवस्वामिनी नाटक में विवाह-विच्छेद पर उनकी दृष्टि उन्हें स्पष्ट रूप से सस्कृति की सजग द्रष्टा घोषित करती है।

प्रसाद का तीसरा गुण है उनका ऐतिहासिक अध्ययन और इस विषय में उन्होंने अपने समकालीन कलाकारों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। इन्द्र को सर्वप्रथम ऐतिहासिक सम्राट के रूप में उपस्थित करते हुए वे एक नाटक लिखना चाहते थे किन्तु उनके असामयिक निधन से यह कार्य न हो पाया। इतिहास की विवादास्पद समस्याओं को सुलझाने का उनका प्रयास अपने क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण है।

उन्होंने सस्कृति को विभिन्न मानवीय अर्जन का समन्वय माना जो कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में अर्जित मानव श्रम का नवनीत है। उनका कथन था कि भारतीय जीवन-दर्शन का आशावादी रूप समन्वय की भित्ति पर आधारित होकर ही इतना उन्नत हो सका है। अतः जातीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को विराट चित्ररूप देकर उपस्थित करने का आग्रह उनके नाटकों में दिखाई देता है। जीवन के सभी क्षेत्रों के उल्लेख का यह प्रयास जहाँ सांस्कृतिक रूप दर्शन का श्रेय लेता है वहाँ रेखाचित्रों और रगों के विनिमय का व्यापार नाट्य वस्तु को अतिशय शोभावान और आकर्षक बना देता है। किन्तु इससे कभी-कभी नाटक की कथा वस्तु पर औपन्यासिक रंगत चढ़ जाती है। वस्तु-सकलन की सीमा का अतिक्रमण इसी प्रक्रिया का परिणाम है।

प्रसाद जी मनोवैज्ञानिक शिल्पी थे; उन्होंने चरित्र निर्माण के क्षेत्र में असाधारण कलात्मक सौष्ठव का परिचय दिया। उनका उत्कर्ष इसी क्षेत्र में है और यह निर्विवाद सत्य है कि दूसरा कोई लेखक ऐसे निर्माण में समर्थ नहीं हो सका। उनके नाटक भाव प्रधान या रस प्रधान नहीं हैं। श्रेष्ठ नाटक में वस्तु, नेता और रस का समन्वय होना चाहिए। यह नाटक का आदर्श है जिसके समीप पहुँचने की साधना ही नाटककार का साहित्यिक श्रम है। प्रसाद का सबल पक्ष चरित्र निर्माण का है; उन्होंने इस क्षेत्र में अपने अद्वितीय साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी चरित्र सृष्टि में स्थिर एव चल दोनों प्रकार के प्रतिनिधि हैं। स्थिर चरित्रों के गुणों का उभार नाटक में नियोजित विभिन्न परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होता है; किन्तु चल चरित्रों में मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघात की आवश्यकता होती है। पात्रों की मनोभावना अपने परिस्थिति चक्र से संघर्ष करती है और इस प्रकार इस

विरोध से उनकी चरित्रगत विशेषताओं में निखार आता है। ऐसे पात्र जीवन-संग्राम के सैनिक होते हैं जिनका क्षत-विक्षत शरीर भी हमारी प्रशंसा पर अनायास अधिकार कर बैठता है। नाटकों की पुरानी रूढ़ियों में सद्वृत्ति परायण पात्र कभी दुश्चरित्र होते नहीं दिखाए गए हैं। दुश्चरित्र को सद्वृत्ति सम्पन्न करने की योजना भी कम ही है।

प्रसाद के पात्र जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से आए हुए आत्म चेतना से उद्वेलित संघर्ष रत व्यक्ति हैं और उनका चित्रपटल एक विशालता को अपनी सीमा रेखाओं में बाँधकर चलने में समर्थ है।

प्रसाद द्विजेन्द्रलाल राय की भाँति मध्ययुगीन सामन्ती परकोटे में ही घिर कर नहीं रह गए। उन्होंने सुदूर अतीत के पात्रों को अपनी पैनी दृष्टि से परखा और उन युगों की समस्त सामाजिक एवं दार्शनिक-वैचारिक क्रांतियों के साथ उन्हें हमारे समक्ष ला खड़ा किया। इतिहास से संस्कृति का ऐसा अपूर्व योग अन्यत्र नहीं मिलेगा। प्रत्येक नाटक में प्रसाद का मुख्य पात्र भारतीय संस्कृति की विकासोन्मुख धारा को प्रवाह देता है। वह युग की सांस्कृतिक समस्याओं का प्रतीक भी है जिसके माध्यम से नवनिर्माण की सूचना प्रसाद हमें देते हैं।

प्रसाद जी के नाटकों में मनोवैज्ञानिक रहस्योद्घाटन भी विशेष महत्व रखता है। 'कामना' की रचना उनकी इस रुचि की परिचायक है जिसमें सन्तोष एवं विवेक का व्यक्तिकरण करके घटना विरोध एवं नाट्य सुलभ संघर्ष द्वारा इन वृत्तियों का उत्कर्ष दिखाया गया है। साहित्य के इतिहास की दृष्टि के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी कि मनोवृत्तियों को प्रतीकात्मक आवरण में उपस्थित करके सुलझाने का प्रसाद का यह प्रयास संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय के पश्चात सब से गौरवशाली है।

प्रसाद जी ने नाटकों के समय की अवधि अधिक रखी है किन्तु उसका उद्देश्य साहित्य में इतिहास का यथातथ्य चित्रण और दीर्घ समय के अन्तर्गत चरित्रों की मनोवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों का निरूपण है। अतः प्रसाद का नाटकीय रंगमंच पात्र-बहुल होने के साथ-साथ समय-बहुल भी हो गया है।

नारी चित्रण में प्रसाद का कौशल सराहनीय है। उनकी नाटकीय नारियों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर जहाँ नारी के आदर्श की कल्पना का स्वर्ग साकार है वहाँ उसका सम्पूर्ण मानवीय आकर्षण एवं रमणीयता से युक्त जगत् उद्घाटित है और साथ ही नारी का प्रतिरोध और प्रतिहिंसा से भरा रणस्थल भी दृष्टिपथ में आ गया है। उनकी नारी पुरुषों की भाँति वर्ग के साँचों में ढलकर निर्मित नहीं हुई। पुरुष पात्रों की

अपेक्षा नारी पात्रों के चित्रण में प्रसाद ने अधिक कलात्मक उत्कर्ष एव मनोवैज्ञानिक विशिष्टता का परिचय दिया है।

'विशाख' प्रसाद जी की नाट्य कला का शैशव प्रयोग है; उसकी अपरिपक्व-टेकनीक को इसी दृष्टि से देखना सगत होगा। उसमें गीतों का बाहुल्य नाटक के गम्भीर प्रभाव को कम कर देता है। प्राचीन आख्यानों का 'प्रेम त्रिकोण (एक नारी और उसके दो पुरुष प्रेमी) इसमें चित्रित है। जिसे इतिहास का जामा पहना कर पेश किया गया है। नेपथ्य का प्रयोग है जो आधुनिक दृष्टि से त्याज्य है। कथानक या संवादों के बीच बीच पात्र बोलते-बोलते पद्यात्मक हो जाते हैं जिसको पारसी रगमंच का प्रभाव कहा जायगा। भाषा एव सवाद की अनुप्रास योजना भी पारसी स्टेज से आई है। राज दरबार के चित्र में परम्परा का निर्वाह है। विदूषक सस्कृत नाटक की जीवनहीन प्रतिलिपि है। व्यग एव छींटा-कशी में पिष्टपेषण है। राजमहल के षडयन्त्रों का दर्शन हमें तिलस्मी रहस्यों की याद दिला देता है। चन्द्रलेखा को भूत प्रेत लीला द्वारा वश में करने की वस्तु-योजना प्रसाद की आरम्भिक नाट्य स्थिति का परिचय देती है। प्रेममूलक द्वन्द्व पर आधारित ऐसा वस्तु विकास प्रसाद के परवर्ती किसी नाटक में नहीं है।

विशाख की वस्तु योजना जटिल नहीं सरल है और पर्याप्त रूप से नाटकीय भी। घटनाएँ गतिशील हैं एवं नाटकीय गुण से परिपूर्ण। तीसरे अंक का नाग जाति का आक्रांश और महल को घेर लेने का दृश्य प्रभावशाली है। चन्द्रलेखा और विशाख का विरोध बड़ी शक्तिशाली सत्ता से है अतः आकर्षक है। हत्याओं की योजना गम्भीर तत्व के अभाव की सूचक हैं। चरित्र चित्रण में मनोभावनाओं का वैशिष्ट्य नहीं दिखाया गया। प्रथम परिचय में प्रेम का रोमान्टिक टेकनीक अपनाया गया है। विशाख की निर्भीकता चन्द्रलेखा के प्रेम की आधार शिला पर ही स्थित है और इस प्रेम की सीढी को निकाल देने पर विशाख आकर्षण हीन हो जाता है। विशाख के समान ही चन्द्रलेखा भी प्रसाद की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला से अछूती रही। उसकी चरित्र रेखाएँ विरल और भूली-भूली सी हैं, उन्हें पुष्ट करना और उनमें रग भरना आवश्यक था। यद्यपि चन्द्रलेखा ही समस्त नाटकीय घटना चक्र की केन्द्र बिन्दु है, परन्तु उसका व्यक्तित्व नाट्य-योजना द्वारा प्रस्फुट नहीं हो पाया। बौद्ध पात्र ऐतिहासिकता की रक्षा करने में प्रहरी का कार्य करते हैं। प्रेमानन्द पर आधुनिक युग के आदर्शों की छाया है।

'राज्य श्री' में प्रसाद का नाटकीय वस्तु विन्यास एक कदम आगे बढ़ा है

किन्तु नाटक में विशिष्ट केन्द्र बिन्दु का अभाव, घटनाओं की आकस्मिक विलक्षणता, और प्रेम त्रिकोण सूत्र यहाँ भी प्रसाद के आरम्भिक प्रयोगों की सूचना देते हैं। शांतिदेव अतृप्त वासनाओं का साधु है जो आगे चलकर विकट घोष-दस्यु का रूप धारण कर लेता है। ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व वाले पात्रों की योजना विस्मय लाने के लिए की गई है। सुरमा का चरित्र भी कौतूहल की सृष्टि करता है। प्रेमियों को मदोन्मत्त बनाने की यह पद्धति 'मागन्धी' में भी है। स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ तक प्रसाद अपनी तारुण्य-वृत्तियों को ही प्रस्तुत कर रहे हैं। अभी गाम्भीर्य और जीवन का बहुमुखी दृष्टिकोण तथा कर्त्तव्य निष्ठा उद्भूत नहीं हुई है। बाद की नाट्य निर्माण शक्ति ने प्रसाद के नाटकों को 'नाटक' (Heroic comedy) बनाया है। इन पिछले नाटकों के प्रायः सभी पात्र एक गम्भीर स्तर पर विशिष्ट लक्ष्य को लेकर काम करते हैं। प्रसाद जी के आरम्भिक नाटकों की 'महापुरुष' या महात्मा विषयक प्रक्रिया भी 'राज्यश्री' में उसी रूप में है। विशाख के प्रेमानन्द की भाँति 'राज्यश्री' के दिवाकर मित्र का प्रवेश, उसका क्रिया कलाप तथा उसी के संसर्ग से नाटक की सुखात्मक समाप्ति, यह प्रसाद की आरम्भिक नाट्य योजना का साँचा यहाँ भी पाया जाता है। राज्यश्री का भाग्यजन्य उत्थान पतन विस्मयबोधक है। हत्याओं की संख्या एवं भौतिक संघर्ष का बाहुल्य सीमा का अतिक्रमण करता प्रतीत होता है। चारित्रिक संघर्ष के लिए ऐसी योजना आवश्यक नहीं। मानसिक और चारित्रिक संघर्ष उनके पिछले नाटकों में इस रूप में आए हैं कि घटना प्रधान उछल कूद और शारीरिक संघर्ष की आवश्यकता नहीं रही है।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि प्रसाद के प्रारम्भिक नाटक बौद्ध,दर्शन के निवृत्ति परायण सन्यास मार्ग पर आधारित हैं जब कि उनके बाद के नाटक कर्त्तव्य-निष्ठ प्रवृत्ति-परायण संघर्षरत और कर्ममार्गी चरित्रों को प्रस्तुत करते हैं।

'अजातशत्रु' नाटक से ही प्रसाद का वास्तविक चरित्र चित्रण कौशल आरम्भ होता है। अजातशत्रु पात्र-बहुल नाटक है, तथापि उसमें कतिपय मार्मिक चरित्र रेखांकित हुए हैं। प्रखर और प्रस्फुट चरित्र चित्रण के लिए पात्रों का आधिक्य बाधक होता है। अजातशत्रु में प्रसाद ने अन्तर्द्वन्द्व की प्रणाली का भी प्रयोग किया है। श्रेष्ठ अन्तर्द्वन्द्व अपने साथ घटनाचक्रों का निर्माण करता चलता है किन्तु अजातशत्रु में ऐसा कलात्मक सामंजस्य-चरित्र और घटना का सह-निर्माण नहीं हो सका है। विशेष परिस्थितियों में चरित्रगत परिवर्तन तो सभी नाटकों में संभव है, किन्तु एक ही क्षण पात्र के मन में उठनेवाला विरोधी भावों का उद्वेलन, जो नाटक की गतिशीलता का आधार भी हो, वास्तविक

अन्तर्द्वन्द्व है। अजातशत्रु का चरित्र भी उत्थान पतन की रेखाओं से अंकित है किन्तु यह चरित्र विकास अन्तर्द्वन्द्व की श्रेणी में नहीं आ सकता। यह बाह्य घटना चक्र का परिणाम है आन्तरिक भाव-उर्मियों के विद्रोह का नहीं।

पूछा जाता है कि अजातशत्रु का नायक कौन है? इस प्रश्न का उठना ही किसी श्रेष्ठ नाटककार की कला के लिए प्रशसनीय वस्तु नहीं है और कदाचित यह प्रसाद के चरित्र चित्रण की एक कमी की ओर सकेत करता है। अजातशत्रु धीरोदात्त पात्र नहीं है, अतः समीक्षक इस आधार पर सन्देह करते हैं कि शास्त्रीय कसौटी पर नायक पूरा नहीं उतरता। किन्तु यह दृष्टिकोण न्याय-संगत नहीं क्योंकि जब प्रसाद जी ने उस प्राचीन शास्त्रीय कला को ही नहीं अपनाया, तब उनकी रचना का मूल्यांकन उसी पैमाने पर क्यों किया जाय! भारतीय नाटक का लक्ष्य रस की सृष्टि रहा है और उसके लिए पात्रों का द्वन्द्व अनिवार्य नहीं। किन्तु पश्चिमी नाटकों में पात्र विरोधजीवी होते हैं और यही शैली अजातशत्रु के निर्माण में प्रयोगान्वित हुई है। उसका चरित्र एक विरोध से आरम्भ होता है और विरोध परिहार में परिणत होता है। अतएव भारतीय लेन्स के सहारे यह विदेशी सृष्टि अस्वाभाविक उपज ही दिखाई देगी। दूसरा तर्क यह है कि अजातशत्रु के चरित्र में वह प्रवेग नहीं जो एक नायक के लिए अपेक्षित है। उसमें आत्मशक्ति का अभाव है और वह प्रत्येक स्थिति में एक अन्य पात्र द्वारा ही अनुशासित होता है। नायक में ऐसी निरी-हता उचित नहीं, उसमें कतिपय व्यक्तिगत विशेषताओं का होना आवश्यक है किन्तु अजातशत्रु मोम की शलाका की भाँति भिन्न भिन्न साँचों में ढलकर रूप बदलता हुआ स्टेज पर एक नकारात्मक स्थिति ही ग्रहण करता है। इस दृष्टि से उसके नायकत्व पर सन्देह करना ठीक भी लगता है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रसाद इस समय एक नई प्रणाली का अभ्यास कर रहे थे अतः कुछ दुर्बलताएँ और दोष आ गए है। अजातशत्रु में प्रसाद का उद्देश्य एक कुसंगति में पड़े राजकुमार का संस्कार और सुधार है। अनुचित प्रणा-लियों से पोषित एक राजकुमार का नवनिर्माण—यह लक्ष्य यथेष्ठ महत्त्वपूर्ण है और नाटकीय क्षमता भी रखता है। यह बात दूसरी है कि प्रसाद ने जो रूप-रेखा उस पात्र को दी उसे वे पूर्णतः प्रभावशाली नहीं बना सके। यह भी सभव है कि प्रसाद उस पात्र विशेष को उपयुक्त व्यक्तित्व नहीं दे पाए किन्तु ये प्रासं-गिक त्रुटियाँ हैं; मौलिक नहीं।

बिम्बसार और छलना को भी नायक पद देने का प्रस्ताव कतिपय समीक्षक करते हैं इसलिए कि बिम्बसार ही फल का भोक्ता है। छलना नाटक का घटना

चक्र घुमानेवाली सबसे क्रियाशील चेतन और प्रभावशील नारी है। किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि नाटक में संघर्षरत होकर फल प्राप्ति से वंचित रह जानेवाला मुख्य पात्र नायकत्व से नहीं हटाया जा सकता। बिम्बसार नाटक के मुख्य संघर्ष का सैनिक नहीं और नाटक में छलना भी परदे के पीछे से ही अजातशत्रु को राजनीतिक उलझावों में नचाती रही है अतः निष्कर्ष स्पष्ट है कि अजातशत्रु ही नाटक का नायक है।

'स्कन्दगुप्त' की कलात्मकता प्रसाद के अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक ऊँची है। कोरे राजनीतिक या ऐतिहासिक घटना चक्र के गुम्फन से नाटक में मानवीय मनोभावना नहीं आ सकती। प्रसाद ने यह तथ्य पूरी तौर पर स्कन्दगुप्त में ही समझा। ऐतिहासिक एवं राजनीतिक पक्ष के साथ ही साथ पारिवारिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों का मिलाप करके समन्वय उपस्थित करने की चेष्टा प्रसाद की कला को 'स्कन्दगुप्त' नाटक में विशेष महत्त्व प्रदान करती है।

चरित्र चित्रण में पूर्ण नाटकीय विस्तार और व्यापकता है और काश्मीर से लेकर लंका तक के पात्रों की उपस्थिति भारतभूमि की विराट झाँकी देती है। ऐतिहासिक सत्य की प्रमुखता ने स्कन्दगुप्त को नाट्य कला की दृष्टि से थोड़ी हानि पहुँचाई है। चरित्र चित्रण का आधार सजीव विरोध है जिसके निर्माण में कृति के सन्तुलन और अंग विन्यास की शिल्प क्रिया का श्रेय उनके राज्यश्री और अजातशत्रु नाटकों के आरम्भिक प्रयोगों को है। स्कन्दगुप्त जैसे पात्र का विजया और देवसेना दोनों की ओर झुका रहना और चुनाव को शीघ्र ही निर्णीत न कर सकने की दुर्बलता दिखाना प्रसाद के मार्मिक मनोवैज्ञानिक अनुभव का द्योतक है। देवसेना और विजया का चारित्रिक संघर्ष स्वाभाविक एवं कला का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन है। परम्परा की लीक पर रखकर इन दोनों ही चरित्रों को भले और बुरे की दो बधी बँधाई कोटियों में नहीं रखा जा सकता।

'चन्द्रगुप्त' का कथानक महाकाव्य की भाँति वर्षों का समय लेता है। स्कन्दगुप्त की भाँति उसमें चरित्रगत वैविध्य कम है। स्कन्दगुप्त का दार्शनिकता मिश्रित वीरत्व जो उक्त नाटक के आकर्षण का आधार है इसमें नहीं है। चन्द्रगुप्त का चरित्र कोरे वीरत्व का उत्कर्ष लिए ऐसी भूमि पर खड़ा हो गया है जिसमें किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक और नाटकीय अभिसंधि के लिए अवकाश पाना कठिन हो गया है।

चन्द्रगुप्त का टेकनिकल साँचा बहुत कुछ महाकाव्योचित है। चाणक्य का महत् व्यक्तित्व महाकाव्य के नेता की भाँति विरोधी पक्ष को बहुत अधिक

शिथिल बना देता है। चन्द्रगुप्त के महाकाव्योचित औदात्य ने नाटकीय संघर्ष के विकास में बाधा पहुँचाई है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त के अपराजेय चरित्रों के कारण नाट्य सुलभ अन्तर्द्वन्द्व या घात प्रतिघातों द्वारा कथा वस्तु को अपेक्षित उलझाव एव गति नहीं मिल पाई है।

अजातशत्रु के समान इसमें नायिका का पद भी साहित्यिक वाद विवाद का विषय बन गया है। कार्नेलिया नाटक के आरम्भ में आकर अपना परिचय देकर फिर अन्त में एक बार ही अपने दर्शन देती है। नाटक के प्रमुख महत्व-पूर्ण स्थान पर वह अधिकार नहीं कर सकी है। इस दृष्टि से सफलता अलका को मिली है। कल्याणी का प्रयास भी नाटक मे पर्याप्त दूरी तक संभावित नायिका पद पाने का रहा है। उसकी आत्महत्या का अश अस्वाभाविक है। जान पड़ता है कि उसे अपना नायिकात्व कार्नेलिया को देने के लिए ही ऐसा करने पर विवश होना पड़ा है।

चाणक्य की असाधारण बौद्धिकता का सामजस्य उसकी प्रेम वृत्ति से किए जाने का प्रयास भी कलात्मक कसौटी पर खरा नहीं उतर सका है, क्योंकि दो विरोधी तत्वों के एक ही स्थल पर समाहार उपस्थित करने के कलापूर्ण उपक्रम के लिए कथावस्तु में जिस विस्तार की आवश्यकता थी उसका निर्वाह चन्द्रगुप्त की कथावस्तु में सभव नहीं था। प्रसाद का राक्षस मुद्राराक्षस के राक्षस के साथ एक समानान्तर रेखा पर खड़े होने में असमर्थ है।

'चन्द्रगुप्त' चरित्र प्रधान नहीं काव्योपजीवी नाटक है जिसमें भाव प्रवणता का पक्ष विशेष सबल और पुष्ट है।

'ध्रुवस्वामिनी' नवीन शैली का प्रयोग है। यथार्थवादी आलोचक उसमें विशेष सन्तोष लाभ कर सकने में समर्थ होंगे। समस्या नाटक के रूप में यह 'इब्सोनियन' और 'शेवियन' प्रभाव प्रसाद की नाट्य सृष्टि की नई दिशा का सकेतक है। अपनी प्रयोग-कालीन अवस्था में यह समस्या नाटकपूर्ण बौद्धिक जामा पहनकर नहीं आ सका है और नाटककार के विशुद्ध दार्शनिक या विचारक के रूप में उपस्थित न होने से शैली के इस प्रयोग ने एक स्वतन्त्र अस्तित्व ही ले लिया है। वह प्रसाद की प्रौढ कृति नहीं कही जा सकती क्योंकि इसका निर्माण स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त के विकास क्रम की शृंखला की आगामी कड़ी नहीं है। किन्तु शैली विषयक एक स्वतन्त्र प्रयोग इसमें अवश्य है।

'जनमेजय का नाग यज्ञ' की कथा वस्तु का भार सभालने का सामर्थ्य एक उपन्यास में ही हो सकता था। नाटक के चौखटे में वह लम्बे प्रकरणवाली बिखरी-बिखरी दार्शनिकता सभल नहीं सकी है।

'कामना' और 'एक घूँट' मनोवृत्तियों की स्वात्मगत विशेषताओं के उद्-घाटक नाटकीय चित्र हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद की नाट्यकला का विकास नाट्य प्रयोग-शाला के अनुसन्धान कार्य पर आकर रुक जाता है। यदि प्रसादजी के चिर-स्मरणीय व्यक्तित्व को हमारे बीच रहकर कुछ दिनों और लेखनी का अधिकार मिलता तो कदाचित वे आज के बुद्धि-विशिष्ट समस्या चित्रों को अपनी प्रयोग-शाला में परख कर नये रूप में उपस्थित कर जाते और हमें भी, आज के अत्याधुनिक नाटक को स्वदेशी लिबास में देखने का अवसर मिलता।

प्रसाद के नाटकों का शरीर जहाँ पूर्ण साहित्यिक है, वहाँ उसका मन अनिवार्यतः ऐतिहासिक है और उसकी आत्मा विशुद्ध सांस्कृतिक है। इतिहास ने जो प्रश्न उठाए उनका समाधान उन्होंने साहित्य के माध्यम से किया। अतीत के विशाल चित्रपट पर किया गया उनका यह अद्वितीय तूलिका श्रम हिन्दी नाट्य इतिहास के पचास वर्षों के लम्बे मार्ग पर एक आलोक स्तम्भ की भाँति रहेगा और नाट्यकला के नए पथिकों का सदैव उपयोगी दिशाज्ञान देता रहेगा।
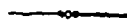
स्कन्दगुप्त

'स्कन्दगुप्त' स्व० जयशंकर 'प्रसाद' का पाँच अंकों में प्रस्तुत ऐतिहासिक नाटक है। हिन्दी में नाटक औरों ने भी लिखे हैं, पर्याप्त सफल नाटक, परन्तु ऐतिहासिक नाटक प्रस्तुत करने का प्रायः पहला और सुन्दर प्रयास प्रसादजी ही ने किया। अतीत को खोलने, उसके पुनर्निर्माण और शालीनीकरण का जितना प्रयत्न उन्होंने किया, उतना किसी और ने कभी नहीं किया। उनका इतिहास का अध्ययन भी इतना गहरा है कि उसमें त्रुटियाँ तो कम हैं ही, अतीत उनके नाटकों में जैसे मूर्तिमान हो उठता है। उस अतीत को रूपायित करते समय जिस भाषा का उन्होंने उपयोग किया है, वह उसे व्यक्त करने में पर्याप्त सहायक होती है।

प्रसाद ने नाटक अनेक लिखे हैं; अजातशत्रु, नागयज्ञ, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त आदि परन्तु इनमें स्कन्दगुप्त को साहित्यमर्मज्ञों ने विशेष सराहा है, यद्यपि 'चन्द्रगुप्त' को अनेक आलोचकों ने प्रसाद की प्रधान और सुन्दरतम् कृति माना है। यहाँ हम 'स्कन्दगुप्त' के गुण-दोषों पर विचार करेंगे।

जहाँ तक ऐतिहासिकता का विचार है, प्रसाद जी की व्यंजना-शक्ति श्लाघ्य है। नाटक का विषय प्रायः पूर्णतः ऐतिहासिक है, उसके अधिकतर भाग ऐतिहासिक हैं, उससे इतिहास के—गुप्त शासन के—अनेक सांकेतिक (टेक्निकल) शब्दों का व्यवहार हुआ है। नाटक की प्रधान घटना-स्कन्दगुप्त का आक्रमणकारी हूणों से युद्ध—का संकेत स्कन्दगुप्त के अभिलेखों (शिला और स्तम्भलेख) में मिलता है—हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्या धरा कम्पिता। भीमावर्तकरस्य (जिस स्कन्दगुप्त की भुजाओं के युद्ध में हूणों से टकरा जाने से भँवर बन गया)। इस उद्धरण के अतिरिक्त दो और उन्हीं अभिलेखों से दिए जा सकते हैं, जिनका नाटककार ने पर्याप्त उपयोग किया है और जिनका यथास्थल निर्देश किया जायगा। वे निम्नलिखित हैं—क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा (जिस स्कन्दगुप्त ने साधारण सैनिकों की भाँति युद्धकाल में सूखी भूमि

पर सो कर रातें बिताई); विहाय सर्वान्मनुजेन्द्रपुत्रान् लक्ष्मी स्वय य वरयञ्चकार (बारी-बारी से सारे राजपुत्रों के गुण-दोषों को परखकर, फिर उन सभी को छोड़कर लक्ष्मी ने स्वय जिस स्कन्दगुप्त को वरा)।

इस नाटक के ऐतिहासिक प्लाट (वस्तु) या घटना-चक्र में भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग गुप्त-साम्राज्य के अन्तिम वैभव को निरावरण किया गया है। गुप्त-साम्राज्य को उत्तर-पच्छिमी चीन से आने वाले उन विकराल हूणों ही की एक लहर ने नष्ट किया था, जिनकी दूसरी लहर ने विशाल रोमन साम्राज्य की कुछ ही पहले रीढ़ तोड़ दी थी। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ने एक बार उन्हीं हूणों से भारतभूमि की रक्षा के लिए कमर कसी थी और उस दिशा में प्रभूत परिश्रम प्रयत्न और तप किए थे। पिता कुमारगुप्त के रहते युवराज के पद से उसने नर्मदा तीर के गणतान्त्रिक पुष्यमित्रों को हराया था। इस युद्ध के प्रति सकेत भी नाटक के आरम्भ में मिलता है। परन्तु, नाटक की प्रधान घटना हूण युद्ध ही से सम्बन्ध रखती है।

उसी ऐतिहासिक घटना-चक्र के बीच षड्यन्त्र और कुचक्र भी हैं। सम्राट् कुमारगुप्त की छोटी रानी अनन्तसेना अपने प्रेमी सेनापति भटार्क से मिलकर स्कन्दगुप्त से गुप्त-साम्राज्य का सिंहासन छीनकर अपने बेटे पुरगुप्त को दे देना चाहती है। युद्धक्षेत्र विशेषतः दो हैं—मालव सौराष्ट्र में और गान्धार (सीमाप्रान्त) में। नाटक के विशेष स्थल हैं—मालवा की राजधानी उज्जयिनी, मगध की राजधानी कुसुमपुर (पाटलिपुत्र-पटना) और सिंधु पार कुभा (काबुल नदी) के तटवर्ती गाधार का प्रदेश। आरम्भ ही में कुमारगुप्त के मरते ही स्कन्द की माता और पटरानी (प्रधान राज-महिषी) देवकी को मारकर अनन्तदेवी और भटार्क साम्राज्य पुरगुप्त को दे देना चाहते हैं, पर स्कन्दगुप्त के आ जाने से दोनों की रक्षा होती है। स्कन्द को मालवा का सामन्त राजा बधुवर्मा अपना मालवा अर्पित कर देता है। स्कन्द वहीं सम्राट् बनता है और षड्यन्त्रकारियों का न्याय करता और उन्हें उदारतापूर्वक मुक्त और पुरस्कृत करता है। युद्ध में पहले तो स्कन्द की विजय होती है, फिर भटार्क के विश्वासघात से गुप्त-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जाता है। विजया (विजय के रूप में लक्ष्मी) बार-बार उसका वरण करना चाहती है, पर वह उसे त्याग कर चिरसगिनी मालवराज बन्धुवर्मा की बहन देवसेना का अनुराग स्वीकार करता है, पर पत्नीरूप में नहीं। उस दिशा में तो वह देवव्रत भीष्म की भाँति ही आजीवन अविवाहित रहने का व्रत लेता है। वह पुरगुप्त को अपने बाद, साम्राज्य समर्पित कर देता है। उसकी मृत्यु के धोखे में उसकी माँ देवकी मर जाती हैं।

यही थोड़े में इस नाटक की कथा है, विशेषतः युद्ध की जिसमें गोविन्दगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित आदि अनेक वीरों का स्कन्दगुप्त को सहयोग मिलता है। उस युद्ध के प्रसग में भी रोमांचक प्रणय, त्याग आदि के अनेक स्थल सुन्दर बन पड़े हैं।

गुप्त-कालीन सांकेतिक शब्दों के उल्लेख की ओर ऊपर सकेत किया जा चुका है। उनका प्रयोग लाक्षणिक रूप से हुआ है, जैसे महाप्रतिहार, महादंड-नायक, दण्डनायक, कुमारामात्य अधिकरण, परम भागवत, परम भट्टारक आदि कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त, पुरगुप्त, गोविन्दगुप्त, पृथ्वीसेन, पर्णदत्त, चक्रपालित, बधुवर्मा, भीमवर्मा भटार्क, शर्वनाग, धातुसेन, खिगिल, प्रख्यातकीर्ति आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इसी प्रकार अनन्तदेवी भी। देवकी उपमा के रूप में एक अभिलेख में स्कन्द की माता कही गई है। शेष नाम कल्पित हैं।

एकाध स्थलों पर कुछ ऐतिहासिक दोष भी नाटक में आ गए हैं। जैसे, कुमारगुप्त प्रथम अक (पृ० ११) पर कहता है—"जगद्विजेता सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस से उस प्रान्त को मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने लिया था।" यह वक्तव्य अनाक्रॉनिज्म (anachronism) अर्थात् 'कालविरुद्ध दूषण' उपस्थित करता है। यह सही है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस से हिन्दुकुश के इधर के प्रान्त जीते थे, परन्तु यह आज की ऐतिहासिक खोज से जाना गया है। किसी पुराण अथवा भारतीय साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता। वह केवल विदेशी ग्रीक आदि प्रमाणों से जाना गया, जिसका ज्ञान कुमारगुप्त को किसी प्रकार नहीं हो सकता था। इसी प्रकार वंधुवर्मा का अपनी पत्नी जयमाला को वंधुवर्मा का मालवा का राज्य दे देना और फिर उसका उसे स्कन्दगुप्त को दे देना (पृ० ८१) इतिहास के विरुद्ध आचरण है। नारी भारतीय राज्यप्रणाली के अनुसार गद्दी पर नहीं बैठ सकती थी। उसमें तभी अपवाद हो सकता था, जब पति मर गया हो और उसके गर्भ में बालक हो। उसके अनुसार न तो बधुवर्मा अपना राज्य अपनी पत्नी को दे सकते थे और न पत्नी परिणामतः स्कन्दगुप्त को। वस्तुतः राज्य देने का कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि मालवा को तो स्कन्दगुप्त के पितामह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों से छीनकर पहले ही गुप्त-साम्राज्य में मिला लिया था। शर्वनाग को नायक से विषयपति (प्रांत का शासक) बना देना भी कुछ बहुत उचित नहीं जान पड़ता। इतिहास में शर्वनाग अन्तर्वेद (गंगा-यमुना के बीच के दोआब) का विषयपति (प्रान्त-शासक) अवश्य था, पर वह साधारण नायक से एकदम

विषयपति हो जाय, यह तनिक अनैतिक प्रतीत होता है। राजा बना तो किसी को कुछ भी सकता था पर उसके लिए कार्यभार वहन करने की योग्यता भी तो अपेक्षित है। सो माता की हत्या का प्रयत्न करने वाले को स्कन्दगुप्त का दंड देने के बदले प्रान्त का गवर्नर बना देना चाहे कुछ अनुचित न माना जाय, पर उसे निम्नस्तरीय स्थिति से एकदम प्रान्त का शासक बना देना क्या शासन की दृष्टि से उचित माना जा सकता है? यह प्रश्न उठ सकता है, विशेषकर इस-लिए कि जूनागढ़ वाले स्कन्दगुप्त के शिलालेख से प्रमाणित है कि सौराष्ट्र का शासक चुनने में स्कन्द को कैसे दिनरात चिन्ता करनी पड़ी थी। इसी प्रकार पृथ्वीसेन आदि का, बनी स्थिति सँभालने का प्रयास किए, आत्महत्या कर लेना कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इससे भीतरी कलह मिट सकती थी। क्योंकि पहले तो वह कलह मिटी भी नहीं, पुरगुप्त की ओर से षड्यन्त्र चलते ही रहे। यह तो गुप्तसाम्राज्य के उत्तराधिकार में कोई नई बात नहीं थी। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े भाइयों को हराकर गद्दी पर बैठे थे। चन्द्रगुप्त ने तो भाई को शायद मारकर उसकी गद्दी के साथ उसकी पत्नी ध्रुवदेवी भी छीन ली थी।

नाटक में कुछ ऐसी बातें भी आ गई हैं, जो अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं—जैसे, सारे स्त्रीपात्रों का कहीं से कहीं पहुँच जाना। विजया मालवा से झट कुसुमपुर (पटना) पहुँच जाती है और वहाँ से गन्धार (अफ़ग़ानिस्तान की सरहद पर)। गन्धार तो जयमाला, देवसेना, देवकी और कमला मालवे से और रमा अन्तर्वेद से पहुँच जाती हैं। मालवे से कुसुमपुर प्रायः बारह सौ मील है और गन्धार दो हजार मील से भी ऊपर। आखिर, उन दिनों, आने-जाने के आज के से साधन तो थे नहीं, फिर इतनी जल्द इतनी दूर लोग क्योंकर पहुँच जाते थे, यह समस्या है। उसी प्रकार सेना की आवश्यकता के लिए गन्धार में भूमि खोदते ही रत्नगृह (पृ० १५७) का प्रकट हो जाना भी कुछ अस्वाभाविक ही लगता है।

पात्र-पात्रियों की सख्या भी 'स्कन्दगुप्त' में अत्यन्त अधिक है। तीस से भी अधिक। यह सही है कि ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों की संख्या अधिक हो सकती है, पर केवल अपेक्षाकृत ही, इतनी अधिक नहीं। नाटक खेलने में इससे असुविधा होती है। पात्रों की एक फौज ही तैयार करनी पड़ती है, जो साधा-रण तौर पर आसान नहीं। यहाँ हम केवल प्रधान पात्रों के चरित्र पर सवि-स्तार विचार करेंगे। पहले स्कन्दगुप्त। स्कन्दगुप्त सम्राट् कुमारगुप्त की बड़ी

रानी से जन्मा, त्यागी, कर्मठ, कर्त्तव्यपरायण मगध (गुप्त) साम्राज्य का युवराज है। उसका जीवन तप और त्याग का है। इतिहास के स्कन्दगुप्त के अनुकूल ही समुचित उसका चरित्र नाटक में उतर आया है। उसमें तनिक कहीं तृष्णा या वासना नहीं, साम्राज्य के लिए भी नहीं। हाँ, मातृभूमि का रक्षक होने के नाते वह साम्राज्य की विदेशी हूणों से रक्षा अवश्य करना चाहता है और उस निमित्त अथक प्रयत्न करता है। वह माता और गुरुजनों के प्रति श्रद्धावान् है और अपने आचरण, सम्बोधन आदि से उनके प्रति विनीत आचरण करता है। इससे वह सभी का प्रिय पात्र है। उसकी राज्य के प्रति तृष्णाहीनता और स्वार्थ के प्रति उदासीनता औरों को व्यंग्य तक करने पर बाध्य करती है। वह हृदय से दयावान् है और माता की रुचि के अनुकूल दड देते समय भटार्क और शर्वनाग को बन्धनमुक्त कर देता है। और फिर एक को मगध का सेनापति और दूसरे को अन्तर्वेद का विषयपति बना देता है। विजया के रूप में राजलक्ष्मी उसका बार-बार वरण करती है, पर वह उसे त्याग देता है। वह सम्राट् होकर भी साम्राज्य के ऐश्वर्य के प्रति उदासीन है, अपने विलासी पिता कुमारगुप्त की सर्वथा प्रतिमूर्ति, वैसे ही जैसे देवसेना के प्रति अनुरक्त होकर भी विवाह से प्रतिकूल। वस्तुतः नाटककार ने स्कन्दगुप्त और देवसेना को पुराणों के दृष्टिकोण से चरित्र में ढाला है। शिवपुत्र स्कन्द (कुमार) का जन्म इसलिए हुआ था कि वह तारकासुर और दैत्यों का नाश और देवताओं की रक्षा कर सके। देवताओं की सेना का सचालक होने से पौराणिक स्कन्द का एक दूसरा नाम 'सेनानी' भी था। पौराणिक देवता स्कन्द (सेनानी) निर्विवाह ही रहा, केवल देवसेना का पति। इसी प्रकार चूँकि ऐतिहासिक स्कन्दगुप्त का विवाह नहीं हुआ था, प्रसाद ने भी प्रिय पात्र होते हुए भी स्कन्दगुप्त का विवाह नहीं कराया, यद्यपि देवसेना पत्नी के स्थान पर बनी रही। वह सम्बन्ध, निश्चय, धूमिल है, पर उस पौराणिक स्थिति का प्रसाद ने स्कन्द और देवसेना के सम्बन्ध में सफल निर्वाह किया है। इसी निर्वाह के कारण देवसेना का व्यक्तित्व भी खुलकर सामने नहीं आता, कुछ काल्पनिक धुँधला-सा बना रहता है। वह भी स्कन्द ही की भाँति क्वारी बनी रहती है। स्वाभाविक ही है, क्योंकि देवसेना का सम्बन्ध सिवा स्कन्द के और किसके साथ हो सकता था ? देवसेना स्वप्निल है; गाने का उसे रोग है।

स्कन्द के साथ ही विजया के पात्रत्व पर विचार करना भी उचित होगा। विजया का चरित्र स्पष्ट है, शक्तिम। उस पर आलोचकों ने सही ध्यान नहीं

दिया है। उसकी विलासप्रियता को धिक्कारा है, उसकी प्रणय-चंचलता की ओर संकेत किया है। यह सही है कि इस प्रकार का चरित्र विजया का है, पर वह अकारण नहीं, नाटककार की गलती से नहीं, नाटककार ने जानबूझ कर उसे वह रूप दिया है और अपने उस कार्य में सफल भी वह खूब हुआ है। स्कन्द-गुप्त के स्तम्भलेख की एक पंक्ति है—विहाय सर्वान्मनुजेन्द्रपुत्रान् लक्ष्मी स्वयं यं वरयञ्चकार (लक्ष्मी ने सारे राजपुत्रों को बारी-बारी से पहचानकर स्वयं जिस स्कन्दगुप्त को वरा)। विजया राजलक्ष्मी है, लक्ष्मी ही की तरह चंचल, अस्थिर। धनकुबेर (सेठ) की बेटी है। मालव-राजपरिवार के साथ पहले बँधी-बँधी-सी सामने आती है, पर जब स्वयं मालवा की कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं वह मगध के गुप्तसाम्राज्य के अन्तर्गत है, तब वह क्यों उस स्वतंत्रताहीन मालवा से सम्बद्ध रहे? वह तत्काल मगध के गौरव की ओर देखने लगती है। एक बार उसकी नजर मगध के प्रवीर सौराष्ट्र के शासक पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित पर पड़ती है। वह कहती—"वीर हृदय है (चक्रपालित) प्रशस्त वक्ष है, उदार मुखमंडल है।" (पृ० ५२), पर वस्तुतः इसका हृदय मगध के सही उत्तराधिकारी स्कन्द की ओर लगा है और वह उनके सौन्दर्य से आकृष्ट हो जाती है, पर षड्यन्त्रों के केन्द्र पुरगुप्त के सम्भावित भविष्य की ओर देखने से भी वह नहीं चूकती। कहती है (पृ० ६७) "यदि आज राजाधिराज कहकर युवराज पुरगुप्त का अभिनन्दन कर सकती।" पर उस शक्तिहीन, लिबलिब, पियक्कड़ के प्रति भला उसका स्नेह तनिक भी कैसे टिक सकता था? उसके प्रतिकूल शक्तिम समृद्ध, अनन्तदेवी का प्रणयी और उस अर्थ मगध का व्यावहारिक शासक, मागध सेना का सेनापति भटार्क शीघ्र उस लक्ष्मी को अपनी ओर खींच लेता है। और अन्त में जब वह स्कन्द का पराक्रम देखती है, उसकी सम्भावनाएँ देखती है, तब फिर वह उसे अपने को समर्पित कर देती है। इस प्रकार बारी-बारी से वह शक्ति और अभिजात्य की ओर जाती है और अन्त में स्कन्द ही की होना चाहती है। पर, स्कन्द तो देवसेना का था, एकमात्र म्लेच्छों से देश की रक्षा करने वाली सेना का पति, भला वह उसे वरण कैसे करे? वह लक्ष्मी से विवाह नहीं करता, साम्राज्य नहीं लेता, सो भला लक्ष्मी को कैसे स्वीकार करे? सो, विजया चंचल लक्ष्मी है।

पर्णदत्त को हम अधिक तो नहीं देख पाते हैं, पर, जितना देख पाते हैं, उतने से भी उसकी सूदन, वयोवृद्ध, कर्त्तव्यपरायण काया स्पष्ट हो आती है। चक्रपालित, उसका पुत्र, नाटक का प्रबल पात्र है, स्कन्द और साम्राज्य का एकान्त सेवक, स्पष्टभाषी और वीर। उदारहृदय, उदार मुखमंडल, प्रशस्त वक्ष-

वाला, वास्तविक पुरुष। पिता का सही पुत्र। पृथ्वीसेन कर्त्तव्यपरायण मंत्री है, जो औरों के साथ गृहयुद्ध के भय से आत्महत्या कर लेता है। गोविन्दगुप्त सम्राट् कुमारगुप्त का छोटा भाई है, जो सब प्रकार से साम्राज्य की सेवा करता है, देवसेना को लेकर देश की रक्षा के लिए भीख तक मांगता है। कुमारगुप्त की विलासिता उसे असह्य है, पर, स्कन्दगुप्त से उसे आशा होती है और वह उसकी सब प्रकार की सहायता करता है, उसे 'आर्य-चन्द्रगुप्त' की प्रतिमूर्ति मानता है। वयोवृद्ध है, पर, कर्मठ और जागरूक है। पर्णदत्त और वह रंगमंच पर बहुत नहीं आते, पर, जितना थोड़ा भी उनका उल्लेख हुआ है, उसी से उनकी सबल आकृति स्पष्ट हो आती है।

बन्धु वर्मा, मालवा का राजा, मगध का सामन्त-मित्र है। स्कन्दगुप्त और साम्राज्य की सेवा निष्ठा से करता है। अपना राज्य अपने आप स्कन्दगुप्त को अर्पित कर देता है। वह देश को हूणों से बचाने के लिए सब प्रयत्न करता है। सर्वत्र लड़ता है। उसका भाई भीमवर्मा उसका अनुकूल वीर सहचर है। बन्धु वर्मा की पत्नी जयमाला निर्भीक क्षत्राणी है और सदा लड़ने और अपनी रक्षा आप करने को उद्यत रहती है। जैसे पति बन्धुवर्मा लड़ता हुआ वीर गति पाता है, वैसे ही वह भी पति के मरने पर उसके शव के साथ सती हो जाती है। शर्वनाग वीर और स्वामिभक्त है, पर, मद्य पीने पर उसकी वृत्ति बदल जाती है। सोना उसे खींचने लगता है और वह षड्यन्त्रकारियों का अस्त्र बन जाता है। पर, बाद में स्कन्दगुप्त द्वारा मुक्त और उपकृत होकर वह उदार, कर्त्तव्यपरायण और स्वामिभक्त बन जाता है। उससे कहीं अधिक सजीव चित्रण उसकी पत्नी रमा का हुआ है। वह निर्भीक कर्त्तव्य पालने वाली नारी है। भेद की बात झट समझ जाती है। पति को हत्या से विरत करने का प्रयत्न करती हुई मारने-मरने को तैयार हो जाती है। देवकी के प्रति उसका बड़ा मोह है और अपने स्वामी के प्रति बड़ी घृणा और भारी क्षोभ।

भटार्क का चित्रण शक्तिम हुआ है। वह कुमारगुप्त की दूसरी पत्नी अनन्तदेवी का प्रणयी है, उसके बेटे पुरगुप्त को सम्राट् बनाने के लिए षड्यन्त्र करता है। बार-बार स्कन्दगुप्त और स्वदेश के विरुद्ध द्रोह करता है और विदेशियों को भारत पर चढ़ा लाता है। वैसे वीर और सशक्त है। उसकी माँ कमला साध्वी है, स्कन्दगुप्त के प्रति अनुरक्त, जिसे अपने पुत्र के आचरण से लज्जा होती है और जो उसके विरुद्ध न्याय चाहती है। पर, नाटककार ने जो भटार्क को उसका मनोरम पुत्र बनाया है, उसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि ऐसी बात

नहीं कि ऐसा पुत्र पथभ्रष्ट जननी ही से उत्पन्न हो। विभीषण और जयचन्द आखिर प्रकृत माँ ही के औरस पुत्र थे। अनन्तदेवी का चित्रण भी स्पष्ट हुआ है, मोटी, गहरी रेखाओं द्वारा। उसका अपना व्यक्तित्व है। वह अपने पुत्र को सिंहासन देना चाहती है। उसके लिए भली प्रकार के षड्यन्त्र करती है, हत्या तक करने पर उद्यत है। सपत्नी देवकी से घृणा करती है। भटार्क को प्रणयी केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बनाती है, जो विजया के प्रति भटार्क के सम्बन्ध में प्रगटित उसके वक्तव्य से स्पष्ट है। पर, उसके जिस पुत्र पुरगुप्त के लिए ये सब षड्यन्त्र होते हैं, वह पियक्कड़ और लिजलिजा है, साम्राज्य के लिए सर्वथा अयोग्य।

मुद्गल विदूषक है। कुछ जागरूक जरूर है, पर, उसका गठन संस्कृत के विदूषकों की परम्परा में हुआ है, जिससे उसका हास्य अधिकतर खाने तक ही सीमित रहता है। धातुसेन सिंहल का राजकुमार है, जो भारत देखने आया हुआ है। भारत और गुप्त साम्राज्य की शालीनता में उसकी बड़ी निष्ठा है, विलास से घृणा भी और वह कुमारगुप्त की विलासिता के सम्बन्ध में अनन्त-देवी के विरुद्ध उत्कट व्यंग्य करता है। हँसोड़ है, पर, उसकी हँसी में व्यंग्य भरा है। विभीषण और सुग्रीव का संकेत कर वर्तमान पर व्यंग्य करता है। वह मातृगुप्त का मित्र है। वही कुमारदास भी है, कालिदास का मित्र। प्रसाद दो कालिदास मानते हैं, जिनमें से एक, मातृगुप्त, उनकी राय में, स्कन्दगुप्त का समकालीन काश्मीर का शासक मातृगुप्त है। पर, इस धारणा के लिए कोई प्रमाण नहीं है। प्रपचबुद्धि क्रूरकर्मा कापालिक है, जो बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए कुछ भी कर सकता है, भटार्क, अनन्तदेवी आदि के साथ स्कन्दगुप्त के विरुद्ध षड्यन्त्र करता है। इस दिशा में स्वदेश के शत्रुओं को भी देश पर चढ़ा लाने में कोई आपत्ति नहीं। देवसेना की बलि देने तक को वह तैयार हो जाता है। भयानक है। प्रख्यातबुद्धि महाबोधि विहार का स्थविर है, स्नेहशील और दयावान्। ब्राह्मणों और बौद्धों के झगड़ों को सुलझाने के लिए यज्ञ में अपनी आहुति तक दे देने को तैयार हो जाता है। प्रपचबुद्धि के ठीक उल्टा है। हूण सेनापति खिंगिल का चरित्र साफ निखर नहीं पाया।

अब नाटक की भाषा पर कुछ विचार। साधारणतः भाषा कठिन होकर भी जो समझ सके उसके लिए सुन्दर है। उसमें प्रवाह है। कई स्थान तो खासे सुन्दर बन गए हैं, जैसे—"स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ट शांति मरण है।" (पृ० २१) "पवित्रता की माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुख, पुण्य

की कसौटी है पाप" (पृ० ४८)। कड़वेपन को संकेत करता नाटककार कहता है—"ऊँह, हृदय तक लकीर खिंच गई।" (पृ० ५६)

भाषा, जैसे ऊपर कहा जा चुका है, प्राचीनता के अनुकूल संस्कृतनिष्ठ है। प्रजा के अर्थ में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग (पृ० ४) किया गया है, जो संस्कृत में भी सदा नहीं होता। लौटने के स्थान पर नाटककार 'प्रत्यावर्तन' का व्यवहार अधिक उचित समझता है। 'आर्य' अनवधानतावश ही एकाध बार लिखा गया है, वरना, अधिकतर वह 'आर्य्य' है, जैसे—'सूर्य्य', 'कर्म्म', 'बधुवर्म्मा' आदि। एकाध स्थल पर भाषा की भूल भी लक्षित होती है—जैसे, कुमारगुप्त को 'प्रौढ' (पृ० ४) और 'वृद्ध' (पृ० २१) दोनों कहा गया है। आकाश को इसी प्रकार स्तमित, जिसे स्तमे-रत खड़ा न होने के कारण स्तब्ध कहना अधिक उचित होगा। इसी प्रकार 'पराग की चहल-पहल' बहुत अच्छा प्रयोग नहीं है, 'पराग की महमह' जैसा कुछ होना चाहिए था। काली पुतली की नवनीत से उपमा दी गई है (२०), 'शव-चिता' (२६) में 'शव' अनावश्यक है, क्योंकि हिन्दी में चिता का प्रयोग केवल एक ही अर्थ में होता है, प्रस्तुत अर्थ में। 'जीर्ण कलेवर क्रिया-कंकालों में क्या धरा है' में कलेवर और ककाल दोनों एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। ककाल की 'पंजरप्रदर्शिनी शक्ति जीर्णकलेवर कहने से कम हो जाती है। 'प्रत्येक हरी-हरी पत्ती' में एक हरी निरर्थक है। 'राज्याभिषेक का प्रकरण होगा' (५५) में प्रकरण वाक्य को व्यंग्यात्मक बना देता है, जो नाटककार को इष्ट नहीं है। 'प्रकरण' या तो अध्याय हुआ या नाटक। दोनों अर्थों में यह कहना नाटककार या बधुवर्मा को इष्ट नहीं। बुद्ध के लिए उस काल में कोई बौद्ध विशेषतः भिक्षु 'गौतम' नहीं कहता। या तो बुद्ध कहता या तथागत, जो सदा प्रस्तुत होता था। स्कन्दगुप्त का साम्राज्याभिषेक हो चुकने पर भी देवसेना उसे 'युवराज' (६६) ही कहती है। बधुवर्मा का अपने मुँह से अपने को 'मालव वीर' (११८) कहना अच्छा नहीं लगता। 'भगवान् ने प्राणिमात्र को बराबर बनाया है' (१३३) यह तब के बौद्ध का वाक्य नहीं हो सकता। वे नास्तिक थे और भगवान् का नाम नहीं लेते थे। सम्बोधनों के प्रयोग में भी अनवधानता हुई है, क्योंकि कहीं तो हिन्दी तरीक़े से 'सेनापति' कहा गया है, कहीं संस्कृत के अनुसार 'सेनापते!' ऐसे ही कहीं 'शिरोमणि' कहीं 'शिरोमणे!' एक असावधानी मच-निर्देशन में है। 'किवाड़ तोड़कर स्कन्दगुप्त घुस आता है, (७०)। किवाड़ बन्द करने का सकेत कहीं नहीं है और तुरन्त ही पहले उसी द्वार से हत्यारे घुसे हैं।

अब तनिक नाटक की नाटकीयता और रंगमचीय सफलता पर विचार करें। हमारी सम्मति में, रगमच की दृष्टि से स्कन्दगुप्त अथवा प्रसाद के अन्य अधिकाश नाटक भी असफल हैं, खेले जाने के अयोग्य। उनमें साहित्यिक सौन्दर्य (मेरिट) जरूर है, पर, वे केवल पढने के काम के हैं। कोई नाटक-कम्पनी उन्हें अपने आप स्वाभाविक रूप से खेलने को उद्यत न होगी, न हुई है। कोई अगर एक बार खेल भी ले, तो दूसरी बार सम्भवतः उसे पर्याप्त दर्शक नहीं मिलेंगे। ये नाटक मुख्यत पाठ्यक्रम की पुस्तकें हैं। इस असफलता का कारण क्या है?

नाटक, जैसा कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में कहा है। 'प्रयोग-प्रधान' (प्रैक्टीकल आर्ट) कला है, 'चाक्षुष प्रयत्न'—आँख से देखने की चीज है, पढ़ने की नहीं। और उसके प्रयोगप्रधान होने के कारण उसकी शक्ति उसी अनुपात में प्रदर्शित होती है, जिस अनुपात में वह समझा जाय। इस समझे जाने में भाषा की कठिनता बड़ा अवरोध पैदा कर देती है। भाषा इन नाटकों की इस मानी में कृत्रिम है कि वह कहीं बोली नहीं जाती, जिससे वह आशुग्राह्य नहीं हो पाती।

गाने स्कन्दगुप्त के ऐसे नहीं, जो सामान्य दर्शकों को स्पर्श कर सकें। अव्वल तो उनमें और कविताओं में कोई अन्तर ही नहीं है। कई घटिया क़िस्म के भी हैं। अधिकतर काफी लम्बे हैं—१२-१४ से ३०-३० पक्तियों तक के। उनका भला क्या असर हो सकता है? और पृ० १५ पर जो गाना—न छेड़ना उस अतीत स्मृति से दिया है, वह तो हमारी राय में, किसी स्तर का नहीं कहा जा सकता।

पात्रों की बहुलता भी 'स्कन्दगुप्त' को खेलने में विघ्न डालेगी। फिर प्राचीनता को मूर्तिमान् करने के लिए केवल अनुकूल भाषा ही की आवश्यकता नहीं होती, उससे कहीं अधिक अनिवार्य तत्कालीन वेश-भूषा हो जाती है, जिसका अन्दाज नाटककार और खेलने वाले दोनों को प्रायः नहीं हो सकता।

अन्त में एक बात और कह देनी आवश्यक जान पड़ती है कि अतीत के शालीन गौरव ही को निरावरण करना नाटककार का ध्येय नहीं होना चाहिए। उसके राम और रावण दोनों पक्षों को जब खोलकर रखा जाय, तभी अतीत के स्वरूप की रक्षा की जा सकती है। प्रसाद ने भारतीय इतिहास के

स्वर्णयुग की शालीनतामात्र को सराहा है, उस काल के पतनशील समाज का रूप भुला दिया है जिसमें अछूतों की दयनीय संख्या नगरों से बाहर रहती थी और, जैसा कि फाहियान ने लिखा है, नगरों में प्रवेश करते समय लकड़ियाँ बजाती आती थी, जिससे स्वर्ण दूर हट जायँ और उनके स्पर्श से पतित न हो जायँ। इससे अतीत अपने सर्वांग रूप में दर्शक या पाठक के सामने नहीं आ पाता। दण्डी ने अपने 'दशकुमारचरित' में इसके विपरीत समाज को यथावत् सही रूपायन किया है।

'प्रसाद' का चन्द्रगुप्त*

महाकवि जयशकर प्रसाद की प्रतिभा यों तो साहित्य की सभी धाराओं को गतिशील बनाने वाली थी, परन्तु नाटक के क्षेत्र में उनकी देन सर्वाधिक महत्व रखती है। नाटक के द्वारा उन्होंने भारत की शताब्दियों से विस्मृत सस्कृति को पुनजाग्रन किया है। समस्त विश्व के बीच भारत की शान गरिमा और विकसित आध्यात्मिकता का शखनाद किए बिना इस ऋषियों के देश की महत्ता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं किया जा सकता था। यह कार्य भारतेन्दु ने भी किया था परन्तु भारतेन्दु की दृष्टि एक ओर सरकार की कृपा पर जाती थी और दूसरी ओर अपनी अधोगति की ओर। उनके मन में एक क्षेत्र उत्पन्न होता था पर यह देश-जाति के कर्णधारों के प्रति व्यक्त की गई भर्त्सना में बदल जाता था। फिर भारतेन्दु भक्त थे अतएव उनकी आत्मा सुधारवादी थी। इसके विपरीत प्रसाद आधुनिक युग के विश्वासों में पले थे। उन्हें भी देश-जाति की पतितावस्था सताती थी पर वे सुधार में विश्वास नहीं रखते थे। वे तो अधःपतित जनता के समक्ष ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे, जिसे वह आदर्श की भाँति अपना सके और अपनी हीनता को दूर करने का उपाय सोच सके। यही कारण है कि उनकी दृष्टि इतिहास की ओर गई और इतिहास भी उस काल का जिस काल में भारत ने सुख-समृद्धि की चरम सीमाओं का स्पर्श किया था। गुप्त काल भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ काल है। प्रसाद ने इसी पर अपनी दृष्टि जमाई और सयोग की बात देखिए कि उस काल के राजवशों के आतरिक विग्रह तथा उन पर विदेशियों के आक्रमण की योजनाओं ने अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य से विकल और अग्रेजों की गुलामी से पीड़ित भारत की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर दिया। सच्चे साहित्यकार की अभिव्यक्ति की प्रकृति कुछ ऐसी ही होती है।

चन्द्रगुप्त नाटक प्रसाद के उत्कृष्ट और श्रेष्ठ नाटकों में गिना जाता है। इसकी कथावस्तु सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने से लेकर चन्द्रगुप्त मौर्य

* "सरस्वती संवाद" वर्ष २ अक ४ से उद्धृत।

के सम्राट होने तक विस्तृत है। 'मुद्राराक्षस' में केवल नंदवंश के नाश और चन्द्रगुप्त के सम्राट होने की ही कथा है। यों 'चन्द्रगुप्त' का कथापट 'मुद्राराक्षस' से दूना है। प्रश्न यह है कि प्रसाद ने क्यों इसे इतना लम्बा समय दिया जिसके कारण आलोचकों को यह कहने का अवसर मिला कि प्रसाद लम्बे कथानक की गतिविधि को सँभाल नहीं पाये हैं और उन्हें पात्रों को या तो गला घोंटकर मार देना पड़ा है या जमीन फाड़कर निकालना पड़ा है। इस लम्बे कथा-काल के लिए प्रसाद की और भी आलोचनाएँ की गई हैं। लेकिन आलोचक यह भूल जाते हैं कि नाटकों की एक नई शैली को जन्म दिया था और उनके समक्ष कोई आदर्श नहीं था। भारतेन्दु काल में समस्यायें भले ही नाटकों में उठादी गई हों, पात्रों के चरित्र-विकास पर वहाँ कुछ नहीं है। जैसे उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र ने चरित्र प्रधान उपन्यासों को जन्म दिया वैसे ही नाटकों में चरित्र-विकास पर दृष्टि रखकर प्रसाद चले। हिन्दी के इतने विकास के बाद यदि हम नया पथ निर्माण करने वालों की कुछ त्रुटियों को लेकर हम उनकी प्रतिभा में दोष निकालें तो निकालने से हमें रोकने वाला कोई नहीं है पर यह उचित नहीं है। प्रसाद ने लम्बी कथा दो कारणों से चुनी। देश की जो अवस्था उनके समय में थी कि एक ओर अंग्रेजों का दमन-चक्र चला रहा था दूसरी ओर मुसलमान और हिंदू साम्प्रदायिक मतभेदों में फँसे थे, प्रसाद के लिए भी विचारणीय थी। उनको भी उससे पीड़ा होती थी। गाँधीजी की प्रेम पर आधारित राजनीति के प्रति उनमें तनिक भी श्रद्धा नहीं थी क्योंकि उस विषय पर परिस्थिति में चाणक्य की आवश्यकता थी जो कहता था 'महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है।' ऐसा ही व्यक्ति शत्रुओं से देश को बचाने और आन्तरिक विग्रह को मिटाने में सफल हो सकता था। 'गाँधीजी की आगे बढ़ो और फिर पीछे हट जाओ' वाली वह नीति, जिसका अर्थ था कि जहाँ हो वहीं खड़े रहो और केवल वेश बदलते रहें। प्रसाद को नितान्त अस्वीकार थी, इसलिए उन्होंने चाणक्य की स्पष्ट नीति और उसकी सफलता की झलक देने का प्रयत्न किया। लम्बी कथा चुनने में ही यह सम्भव था कि देश की पूरी परिस्थिति का चित्र आसके। इसमें यदि पात्रों को मारना या जमीन फ़ाड़कर निकालना पड़े तो कोई चिन्ता की बात नहीं है क्योंकि ध्येय की पूर्ति के लिए कुछ न-कुछ तो बलिदान करना ही पड़ता है।

प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता को लेकर भी उनकी बहुत कटु आलोचना की जाती है। स्वर्गीय श्री-हरिकृष्ण जोहर का तो यहाँ तक कहना था कि प्रसाद को नाटक लिखने ही नहीं चाहिए थे क्योंकि उनके नाटकों में गीतों

और कवित्वपूर्ण संवादों तथा दार्शनिक विचार धारा की इतनी भर मार रहती है कि नाटक में उनके कारण अस्वाभाविकता आ जाती है। चन्द्रगुप्त नाटक के सम्बन्ध में भी अधिकांश लोगों का यही विचार है, जो स्वर्गीय जौहरजी का था। लेकिन यह विचार विवेक हीनता का परिचायक है। प्रसाद ने जान बूझकर ऐसा किया है। यह नहीं कि वे संस्कृत नाट्य शास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ हों। उनके संस्कृत नाट्य शास्त्र के गहन अध्ययन का पता तो उनकी 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, नामक पुस्तक से चलता है, जिसमें उन्होंने रंगमंच पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। रंगमंच पर वध और हत्यायें युद्ध आदि वर्जित दृश्यों को दिखाना, कवित्वपूर्ण संवादों और गीतों का समावेश करना और दार्शनिक प्रवृत्ति का बार-बार परिचय देना इसलिए आवश्यक था कि रूढ़ियों को तोड़ कर नये जीवन की अभिव्यक्ति की दिशा को आलोकित करना था। भारतेन्दु काल में हमारा साहित्य रीतिकालीन रूढ़ियों और नवीन संभावनाओं के बीच झूल रहा था। भारतेन्दु तथा उनके मण्डल के लेखक तथा कवि सुधार के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे थे पर जनता भी किसी की सुनती ही न थी। प्रसाद जी ने इस अनुभव से लाभ उठाया और अपनी अभिव्यक्ति को एकदम नया रूप दे दिया। यह अनायास हो गया क्योंकि उन्हें क्रांति करनी थी। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में गीतों की संख्या १३ है और कवित्वपूर्ण संवाद भी अनेक हैं। प्रसाद ने अपनी इस शैली द्वारा नाटक को गाम्भीर्य और स्थायित्व देने की चेष्टा की। किसी विद्वान का यह कथन उनके नाटकों पर खूब लागू होता है कि स्थायी साहित्य के लिए दार्शनिक और धार्मिक विचार-धारा अनिवार्य है। प्रसाद के चन्द्रगुप्त में पाण्ड्यायन की दार्शनिकता और गीति-संवाद उनके नाटक को स्थायित्व प्रदान करते हैं और उसे सर्वकालीन रचना बनाते हैं, यह एक ऐसा सत्य है, जिसे स्वीकार किए बिना छुटकारा नहीं है।

चन्द्रगुप्त नाटक पहला राष्ट्रीय नाटक है जिसमें नारी को प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। जीवन संग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिए नारी के प्रेम और बलिदान दोनों की आवश्यकता है। चाणक्य जैसा कठोर और कूटनीति का पुतला भी सुवासिनी के प्रेम को नीधि छिपाये है। चन्द्रगुप्त एक ओर कार्नेलिया और दूसरी ओर कल्याणी तथा मालविका से घिरा है। उधर अलका है, जो 'हिमाद्रि तुंग शृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' की ध्वनि गुँजाती हताश देश को जीवित ज्वालामुखी बना देती है। वह अपने पिता को देशद्रोही से देश भक्त बना देती है। माला के दानों में व्याप्त धागे की भाँति चन्द्रगुप्त

का घटना चक्र नारी के इंगित पर या उसकी मूक इच्छा पर चलता है। प्रसाद ने ऐसा इसलिए किया है कि नारी को या तो हमने 'विकार' समझ कर ठुकरा दिया या विकास के लिए उसका उपयोग किया। जीवन में उसकी कुछ उपयोगिता है, इसे हमने समझा ही नहीं। 'चन्द्रगुप्त' में पहली बार नारी की व्यापक शक्ति का परिचय मिलता है। जीवन संग्राम में प्रतिक्षण नारी पुरुष की सहयोगिनी हो सकती है, यह 'चन्द्रगुप्त' से पता चलता है। उसके बिना मनुष्य का जीवन नीरस और अरुचिकर हो जाता है, इसे प्रसाद ने अनुभव किया था इसलिए उसे इतना महत्त्व उन्होंने दिया। एक बात और चन्द्रगुप्त में नारी की व्यापक शक्ति का परिचय तो है पर वह मर्यादा-हीन कहीं नहीं दिखाई देती। यही उनकी नारी के प्रति भारतीय दृष्टि है।

प्रसाद को हम जब पढ़े तब साहित्य की जड़ीभूत कसौटी पर उन्हें न कस कर उनकी भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति भक्ति-भावना का परिचय पाने की दृष्टि से पढ़े। वे अपने युग से इतने आगे थे कि पुरातन मान्यताएँ उन्हें छूने में समर्थ नहीं थी। उन्होंने देखा तो अतीत की ओर पर उसमें देश की वर्तमान समस्याओं का हाल ढूँढ निकाला। 'चन्द्रगुप्त' से अच्छा नाटक इस दृष्टि से उनका कोई दूसरा नहीं है। यह युग के प्रति उनके उत्तरदायित्व-निर्वाह का प्रमाण है और कला की दृष्टि से सफल है। आरम्भ से लेकर अन्त तक कहीं भी नाटक वीरत्व की उच्च-भूमि से नीचे नहीं उतरा। उसमें युगानुकूल समस्याओं के समाधान का ऐसा प्रयत्न है, जो अपनी गम्भीरता और दिव्यता में महान् है। वह हिन्दी-साहित्य की समृद्धि का सूचक है। उसे इसी दृष्टि से हम अत्यन्त सफल कृति मानते हैं।

अजातशत्रु की नाट्य-कला*

'अजातशत्रु' में 'प्रसाद' ने प्रायः सभी नाटकीय तत्त्वों का सफल निर्वाह किया है।

उनके पात्रों में सामान्य कुचक्री व्यक्तियों से लेकर गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति भी विद्यमान हैं और उन सभी के व्यक्तित्वों का विकास परिस्थितियों के अनुसार अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है। बिम्बसार के हृदय में मानव-पात्र के प्रति व्यापक-सहानुभूति रही है और उन्होंने सदैव विश्व प्रेम की भावना को प्रश्रय प्रदान किया है। उनके जीवन के अन्तिम परिच्छेद में शान्त रस के अनुकूल परिस्थितियों का विशेष विकास हुआ है। वैसे उनका व्यक्तित्व प्रायः चिन्तन प्रधान ही रहा है और उन्होंने व्यक्ति तथा समाज के प्रति अपनी धारणाओं को विशेष रूप से उद्भावित किया है। वे कहते हैं—

'मनुष्य व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में मरता है। अपनी नीची किन्तु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे सन्तोष नहीं होता, नीचे से ऊँचे चढना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या!'

गौतम बुद्ध शान्ति के अमर प्रतीक हैं और उनका व्यक्तित्व प्रारम्भ से अन्त तक सरल, शुद्ध तथा स्नेहमय रहा है। उन्होंने अपने सन्देश द्वारा समग्र नाटक की कथावस्तु पर यथोचित नियन्त्रण रखा है। वे जीवन के निश्छल प्रतिपादन में विश्वास रखते हैं और उन्होंने अपने अनुयायियों को सदैव मानवीय दुर्गुणों से बचने की शिक्षा दी है। उन्होंने सृष्टि और मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार का अत्यन्त निकट से अध्ययन किया है और चिन्तन द्वारा अपने अनुभव को और भी गम्भीर स्वरूप प्रदान किया है। बिम्बसार के प्रति कही गयी उनकी निम्नलिखित उक्ति अपने आप में कितना व्यापक सत्य लिए हुए है।—

'शीतल वाणी—मधुर व्यवहार में क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते।'

---

* "सरस्वती संवाद" वर्ष २ अंक ११ से उद्धृत

भिक्षु देवदत्त महात्मा गौतम बुद्ध का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी है। उसके हृदय में उनके प्रति निरन्तर तीव्र डाह वर्तमान रहता है और वह उनके कार्यों पर कभी भी सद्भावना-पूर्वक विचार करने का प्रयास नहीं करता। अपनी इसी भावना के फलस्वरूप वह उनके प्रति विविध कुचक्रों का सृजन करता है और अभद्र शब्दों का प्रयोग करते हुए उनकी कार्य प्रणाली के प्रति अपने तीव्र असन्तोष का प्रतिपादन करता है। हृदय की सात्विक वृत्ति से रहित होने के कारण उसका व्यवहार कल्मषपूर्ण ही रहा है। उदाहरणार्थ समुद्रदत्त से कहे गये उसके निम्नलिखित शब्द देखिये—

'यह गौतम बड़ा ही कपटी मुनि है। देखते नहीं यह कितना प्रभावशाली होता जा रहा है। नहीं तो मुझे इन झगड़ों से क्या काम!'

मगध का राजवैद्य जीवक अत्यन्त साहसी और निर्भीक प्रकृति का व्यक्ति है। सत्य के अन्वेषण में उसकी निरन्तर रूचि रही है और उसने सदैव न्याय के पक्ष का समर्थन किया है। सम्राट् बिम्बसार के प्रति उसके हृदय में असीम आदर की भावना है और वह सदैव उनके हित साधन में प्रवृत्त रहा है। देव-दत्त को कुचक्रों में लिप्त देखकर वह उसे उनसे पृथक् रहने की स्पष्ट चेतावनी पहले ही दे देता है। उसके कर्मशील और निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व का परिचय केवल एक इसी वाक्य से मिल जाता है—

'नियति की डोरी पकड़ कर मैं निर्भय कर्म कूप में कूद सकता हूँ।' [बिम्बसार के प्रति कथित]

प्रसेनजित् अत्यन्त कुशल शासक होते हुए भी शङ्कालु प्रकृति के हैं। इसका प्रथम परिचय तो उसी समय प्राप्त हो जाता है जब वे स्वयं अपने पुत्र विरुद्धक का ही विरोध कर उठते हैं और तनिक सी वाक् चपलता के कारण ही उसके निर्वासन का आदेश दे देते हैं। इसी प्रकार कालान्तर में सेनापति बन्धुल के प्रति भी उन्हें अकारण शंका हो जाती है और वे उसके लिए गम्भीर दण्ड का आयोजन करते हैं। बाद में उन्हें अपनी इस भूल का अनुभव हुआ है और उन्होंने इसके लिए प्रायश्चित भी किया है।

महिला पात्रों में वासवी मानवता की समर्थक है और उनके हृदय में विश्व प्रेम की भावनाओं का विशेष विकास है। उनके हृदय में भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति गहन आस्था है और वे व्यक्ति के सर्वतोमुखी विकास के लिए यह आवश्यक मानती हैं कि वह समाज के स्वर के साथ स्वर मिला कर चले। वे अत्यन्त गम्भीर प्रकृति की नारी है और अवसाद के क्षणों में सम्राट् बिम्ब-

सार को धैर्य बँधाने की शक्ति तो केवल उन्हीं में थी। इससे उनके चरित्र के महत्व का और भी स्पष्ट बोध हो जाता है।

छलना का व्यक्तित्व वासवी के व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न है। उसके हृदय में शील और मर्यादा आदि सद्‌गुणों का प्रायः तिरोभाव ही रहा है। वास्तव में वह अन्तर्विद्रोह का सृजन करने वाली अत्यन्त भयकर नारी है। राजनीति के अन्तर्बाह्य से उसका पूर्ण परिचय है और अपने साहस के बल पर वह तत्सम्बन्धी बाधाओं का निराकरण करने के लिए भी पूर्णतः सन्नद्ध है। प्रस्तुत नाटक में कुचक्रों का सृजन करने वाले पात्रों में वही मुख्य है। उसने न केवल कुचक्रों का स्वय ही विधान किया है, अपितु उन्हें गति प्रदान करने के लिए अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरणा दी है।

पद्‌मावती हमारे समक्ष नाटक के प्रारम्भ में ही एक सरल हृदया और निष्कपट बालिका के रूप में उपस्थित होती है। उसके हृदय में जननी अपनी वासवी के समग्र गुण पूर्ण रूपेण वर्तमान हैं। अजातशत्रु को जीवहिंसा की ओर प्रवृत्त देखकर वह उसे उससे विरक्त रहने की शिक्षा देकर इसी का प्रमाण देती है। बाद में चल कर वह अपने पति को भी जिस निश्छल भावना और स्वस्थ प्रेम का परिचय देती है, वह इसी का प्रतीक है।

नाटक के कथानक को गति प्रदान करने का कार्य उसके पात्र ही करते हैं। उसकी सम्पूर्ण चेतना मुख्यत उन्हीं पर आधारित रहती है। 'अजातशत्रु' के विषय में भी यह तथ्य उतना ही वास्तविक है और उसके कथानक के अधिकाशत' राजनैतिक होने के कारण भी यही है कि उसके पात्रों की गतिविधि मूलतः राजनीति से ही सम्बद्ध है। 'प्रसाद' जी ने तत्कालीन देश-काल का यथार्थ चित्रण करते हुए कथानक की वास्तविकता को पूर्णत. सुरक्षित रखा है। इसके लिए उन्होंने आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया है। आन्तरिक रूप से उन्होंने तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक भावनाओं को और बाह्य रूप से कला का सयोजन करने के लिए उक्त युग में प्रचलित विशिष्ट शब्दों और विशिष्ट शैलियों का प्रयोग किया है।

'अजातशत्रु' में 'प्रसाद' जी ने रस की दृष्टि से शान्त रस को मुख्य स्थान प्रदान किया है। इसी के फलस्वरूप उनके कथानक में समय-समय पर शान्त रस के अनुकूल परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। उनके कुटिल पात्र भी नाटक के अन्त में या तो शान्ति की ओर उन्मुख हो गए हैं या उनके समक्ष कुचक्रों के विकास के लिए और अधिक अवकाश विद्यमान नहीं रहा है। पुरुष पात्रों में सर्वाधिक कुटिल भिक्षु देवदत्त को छलना की ओर से अपमानित

होकर सभी कुचक्रों का फल मिल जाता है। महिला पात्रों में कौटिल्य की प्रतिमूर्ति छलना अपनी भूल कर स्वय ही अनुभव कर लेती है। अजातशत्रु वाजिरा के प्रणय-पाश में बँध कर अपनी समग्र राजनीतिक दुरभिसन्धियों का परित्याग कर देता है शक्तिमती अपनी विपरीत बुद्धि के लिए मल्लिका से क्षमा मांग लेती है और विरुद्धक भी कारायण के समक्ष अपने सभी दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त कर लेता है। इस प्रकार उक्त नाटक के कथानक की मूल भावना सर्वत्र कुटिल से शान्त की ओर प्रेरित रही है।

'अजातशत्रु' में 'प्रसाद' जी ने पारस्परिक विचार अभिव्यक्ति का भी अत्यन्त श्रेष्ठ संयोजन किया है। उनके पात्रों की वाणी में कोई दुराव नहीं है और वे अपने मन की भावनाओं को व्यक्त करने में पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। वास्तव में उन्होंने इस बात का सर्वत्र ध्यान रखा है कि नाटक को गति प्रदान करने में वार्तालाप-योजना का मुख्य स्थान रहता है और यही कारण है कि 'अजातशत्रु' में उन्होंने वार्तालापों को कहीं भी खण्डित अथवा शिथिल नहीं होने दिया है। इन वार्तालापों को सामान्यतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) गम्भीर वार्तालाप—इस प्रकार के वार्तालापों में प्रायः जीवन के श्रेय-यथा की चर्चा की गई है और व्यक्ति को प्रवृत्ति-मार्ग से शनैः शनैः निवृत्ति की ओर उन्मुख होने का मगल सन्देश प्रदान किया गया है। बिम्बसार गौतम वासवी और मल्लिका के कथोपकथन इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

(२) मधुमय वार्तालाप—इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले वार्तालाप मुख्यतः यौवन के प्रेम-भाव से सम्बद्ध रहे हैं। तथापि कुछ अन्य प्रकार की शान्त स्निग्ध चर्चाओं का समावेश भी इसमें हो सकता है। उदयन के अपनी रानियों के प्रति प्रेम-सम्भाषण और वाजिरा के अजातशत्रु के साथ प्रेम-वार्तालाप इसी प्रकार के हैं।

(३) कुचक्र-प्रेरित वार्तालाप—इन वार्तालापों का स्वरूप 'अजातशत्रु' में नित्य नूतन रहा है और इनसे सम्बद्ध पात्रों ने निरन्तर नवीन दुरभिसन्धियों की चर्चा की है। इनमें उग्र और कलमषपूर्ण वातावरण की न्यूनाधिक रूप में निश्चित अन्तर्व्याप्ति रही है। छलना, अजातशत्रु, देवदत्त, शक्तिमती और विरुद्धक की उक्तियाँ प्रायः इसी प्रकार की हैं।

'अजातशत्रु' का उद्देश्य तिक्त वातावरण को मंगलमय वातावरण में परिवर्तित करना है। इसमें लेखक ने बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु के हृदय-परिवर्तन की कथा का प्रतिपादन किया है। रचयिता ने छलना को प्रेम का प्रतीक माना है और बिम्बसार को श्रेय के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित किया है। इस

प्रकार छलना से बिम्बसार की ओर उन्मुख होकर अजातशत्रु ने प्रेम का परित्याग कर श्रेय का अचल ग्रहण किया है।

'अजातशत्रु' का एक मुख्य आकर्षण उसकी शैली में भी निहित है। लेखक ने तत्कालीन देशकाल से सम्बन्धित उपकरणों द्वारा अपनी शैली को एक विशेष गति प्रदान की है और प्रत्येक प्रकार से यह प्रयास किया है कि नाटक का अध्ययन करते समय अध्येता को उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता की प्रतीति न हो। स्थान-स्थान पर रम्य कोमल गीतों की योजना द्वारा भी उन्होंने अपने नाटकों में माधुर्य का सचार किया है। इन गीतों के विषय विविध हैं, किन्तु शैली की दृष्टि से इनमें एक ही प्रकार की चेतना व्याप्त रही है। उदाहरणार्थ रानी पद्मावती का निम्नलिखित भावपूर्ण गीत देखिये—

मीड़ मत खिंचे बीन के तार!

× × ×

छेड़-छेड़ कर मूक तन्त्र को,

'अजातशत्रु' में 'प्रसाद' जी की शैली की एक विशेषता यह भी रही है कि उन्होंने राजनीति की अनेक जटिल समस्याओं को नितान्त साधारण रूप में उपस्थित कर दिया है। वास्तव में इस प्रकार के सभी स्पष्टीकरण उनके सूक्ष्म अध्ययन और चिन्तन के परिणाम हैं। इनके द्वारा उन्होंने राजनीति की उच्छृङ्खलता और निरंकुशता का विशेष नियमन किया है। राज्याधिकार की शाश्वत समस्या को लेकर प्रसेनजित् ने अपने पुत्र विरुद्धक के समक्ष उसे जिस सरल रूप में उपस्थित कर दिया है, उसका एक उदाहरण देखिये—

"क्या राज्याधिकार ऐसी प्रलोभन की वस्तु है कि कर्त्तव्य और पितृ-भक्ति से एक बार ही भुला दी जाए!"

इसी प्रकार 'प्रसाद' जी ने जीवन और जगत् के विषय में अपने विचार उपस्थित करते समय कहीं-कहीं अपने व्यक्तित्व को भी अत्यन्त सफलतापूर्वक उनमें समाविष्ट कर दिया है। वे सृष्टि के सामान्य माथारत प्राणियों से काफी ऊपर के व्यक्ति थे और अपने साहित्य में उन्होंने हृदय की रागात्मकता और बुद्धि के चिन्तन का अत्यन्त उपयुक्त समन्वय कर दिया है। यही कारण है कि उन्होंने 'अजातशत्रु' में केवल अपने वैयक्तिक चिन्तन को कहीं भी प्रमुख नहीं

होने दिया है। उक्त नाटक को बौद्धिकता के आग्रह से मुक्त रखने के लिए ही उन्होंने बसन्तक को विदूषक के रूप में उपस्थित किया है और उसके द्वारा अनेक रागात्मक तथा आकर्षक उक्तियों का प्रतिपादन कराया है। राजवैद्य जीवक के साथ हुई उसकी सभी वार्ताएँ अपने आप में अत्यन्त मनोरम बन पड़ी हैं। अतः भाव-प्रतिपादन की दृष्टि से 'अजातशत्रु' निश्चय ही अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है और उसमें नाटकीय सौंदर्य का विधान करने के लिए आवश्यक कला-तत्वों का अत्यन्त उपयुक्त समावेश हुआ है।

ध्रुवस्वामिनी : एक समीक्षा

"प्रसाद" के लोकप्रिय नाटकों में "ध्रुवस्वामिनी" का विशेष महत्त्व है। क्या कथावस्तु और क्या अभिनय की दृष्टि से यह सफल नाटक है, यह कहें तो अतियोक्ति न होगी। सर्वप्रथम तो इसकी कथावस्तु सरल है जटिल नहीं। घटनाएँ प्रसाद जी के अन्य नाटकों की भाँति उलझी हुई नहीं हैं। वे क्रमबद्ध हैं। एक के पश्चात् एक प्रत्येक घटना कार्य और कारण के बीच में आती हुई मालूम पड़ती है। रोचकता सर्वत्र बनी रहती है।

प्रथम अंक में "ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त पर प्रेम, रामगुप्त के शकराज की शर्त स्वीकार करने पर चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी की तैयारी होती है। द्वितीय अंक में उन दोनों के शक शिविर में जाकर शकराज को वध करने की कथा है। तृतीय अंक में ध्रुवस्वामिनी तथा राज्य से रामगुप्त को पृथक् किये जाने का चित्रण है। इसे हम ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त की प्रणय गाथा भी कह सकते हैं जिसमें रामगुप्त बाधक का कार्य करता है। इस कथानक का विस्तार ऐसे सहज स्वभाविक रूप में हुआ है कि दर्शक सम्पूर्ण नाटक का अभिनय रुचि के साथ देखता है। अन्य नाटकों की भाँति इसमें ५ अंक नहीं केवल तीन ही हैं। इनकी रचना करते करते "प्रसाद" अर्वाचीन नाटकों की शैली से अधिक प्रभावित हो चुके थे, सस्कृत शैलियों के अनुसार अपने नाटकों की रचना करना कुछ कम कर दिया था जो कि समयानुकूल और उपयुक्त था। उन्होंने अपने अंकों में दृश्य नहीं रखे तथा प्रत्येक अंक के आरम्भ में कुछ संकेत दे दिये हैं जो अभिनय करने वालों के लिए वातावरण एव परिस्थिति सृजन करने की दृष्टि से बड़े उपयोगी हैं। कथावस्तु बहुत दीर्घकाय नहीं है, अतः इसका अभिनय तीन घंटे से भी कम में हो सकता है

इस नाटक का साहित्यिक महत्त्व है। सफल नाटक का प्राण उसके पात्रों

में पाया जाने वाला अन्तर्द्वन्द्व (Mental Conflicts) होता है। इसमें "प्रसाद" जी ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित किया है। प्रो० मोतीलाल एम० ए० के विचार से "इस नाटक में बाहरी युद्ध नहीं प्रत्युत प्रत्येक पात्र के अन्तस्तल में एक अन्तर्द्वन्द्व दिखाई देता है। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है, रामगुप्त से घृणा। पूरे नाटक में यह द्वन्द्व चलता है, और अन्त में इसका निराकरण होता है। यही द्वन्द्व चन्द्रगुप्त के हृदय में भी है। उधर शकराज विजय चाहता है और साथ ही ध्रुवस्वामिनी भी, क्योंकि पहिले से ही ध्रुवस्वामिनी की ओर उसका आकर्षण था। कोमा के लिए उसके हृदय में कोई विशेष स्थान नहीं दिखाई पड़ता। कोमा अपने सोच में खुद ही घुलती है। शकराज के लिए उसका प्रेम है लेकिन वह नहीं जानती कि किस प्रकार वह अपना प्रेम पूरा करे। मन्दाकिनी को राज्य की चिन्ता है, अपनी भाभी ध्रुवस्वामिनी की, भाई चन्द्रगुप्त और रामगुप्त को सुधारने की। वह झंडा लेकर मैदान में कूदती है और विजय प्राप्त करती है। शिखर स्वामी को बराबर यही चिन्ता रहती है कि उसका स्थान बना रहे। जिस ओर वह अवसर देखता है झुक जाता है।"

उपरोक्त सभी स्थलों का अन्तर्द्वन्द्व दर्शनीय है। इनकी आन्तरिक अवस्था का बड़ा सुन्दर चित्रण इसमें मिलता है। इस नाटक में वीर रस की प्रधानता है। इसके पात्र प्रायः वीर, और साहसी हैं। ध्रुवस्वामिनी तथा चन्द्रगुप्त दोनों में वीर भावों का प्राचुर्य है। इसके अतिरिक्त सहायक रूप में शृंगार और करुण रस भी पाये जाते हैं। जैसे ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के पारस्परिक वार्त्तालाप में शृंगार का प्रयोग है। बौने कुबड़े के प्रसंग में हास्य का भी उपयोग है।

चरित्र चित्रण :—इस दृष्टि से "ध्रुवस्वामिनी" में दो प्रकार के पात्र हैं १–साधारण और २–विशेष। साधारण अथवा गौण पात्रों के चरित्रों को दिखलाना नाटककार का उद्देश्य नहीं है। उनका प्रयोग तो केवल इसलिए किया गया है कि उनसे मुख्य पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश पड़े अथवा किसी घटना विशेष की सफलता निर्भर हो। जैसे प्रतिहारी, हिजड़े, बौने कुबड़े, सामन्तगण आदि मुख्य चरित्रों पर प्रकाश डालते हैं। मुख्य चरित्रों में ध्रुवस्वामिनी, कोमा, मन्दाकिनी, चन्द्रगुप्त, रामगुप्त, मिहिरदेव और शिखर स्वामी आदि उल्लेखनीय हैं।

ध्रुवस्वामिनी इस नाटक की प्रमुख पात्री, आधार शिला और प्रेरणा है। उसमें आत्म सम्मान कूट कूट कर भरा है। वह निर्भीक, और साहसी और दृढ़निश्चयी है। कभी वह राजरानी के रूप में राष्ट्र से अपने अधिकारों की भीख मागती है, तो कभी वह साधारण सुकोमला नारी की तरह अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हुए कहती है, "मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ · मैं तुम्हारी हो कर रहूँगी।" यहाँ पर उसकी वही गति है, हृदय की वही अवस्था है जो हिन्दू समाज की साधारण प्रेमपूर्ण हृदय वाली स्त्रियों की होती है, जो ऐसी परिस्थितियों में ऐसा ही करती हैं। आगे चल कर हमें उसके व्यक्तिगत स्वतन्त्र आचरण का परिचय मिलता है। उसकी बुद्धिमत्ता के भी दर्शन होते हैं। यदि उसके चरित्र में कुछ निर्बलता है तो वह केवल यही है कि उसमें पर पुरुष की अनुरक्तता और आत्महत्या की प्रवृत्ति पाई जाती है। किन्तु जिन परिस्थितियों में फँस कर वह ऐसा करती है, उससे शका-समाधान हो जाता है।

श्रीराम रघुवीर प्रसादसिंह के शब्दों में, "ध्रुवस्वामिनी इस नाटक की सशक्त पात्री है। वह सघर्ष से निरन्तर युद्ध करती है और विजयलक्ष्मी के रूप में गुप्तवश को आलोकित कर देती है। उसमें दैन्य की छाया तो कहीं पड़ी ही नहीं, सिर्फ एक बार को छोड़कर, जब उसने रामगुप्त के सामने अपने पत्नीत्व के रक्षार्थ प्रार्थना की थी। लेकिन यहीं पर पुरुष की उदासीनता ने नारी के अन्दर पौरुष का भाव उद्दीप्त कर दिया। "चन्द्रगुप्त" के बाद इसी नाटक में पुरुष और स्त्री अपना अलग-अलग व्यक्तित्व लेकर कधे से कन्धा भिड़ाकर जीवन क्षेत्र में अग्रसर हो सके हैं। "प्रसाद" के अन्य नाटकों की तरह करुणापूर्ण मानवीय सहानुभूति का स्वर इसमें भी कुछ कुछ कोमा और मिहिरदेव के भाषण में परिलक्षित होता है।"

"ध्रुवस्वामिनी" को हम समस्या-प्रधान नाटक भी मान सकते हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लेकर प्रसाद जी ने इसमें दो समस्यों पर विचार किया है.—

१—ध्रुवस्वमिनी के विवाह मोक्ष (Divorce) की समस्या।

२—राजतन्त्र की समस्या जिसमें शक और गुप्तों का जातीय सघर्ष भी विद्यमान है।

"ध्रुवस्वामिनी" अभिनेयता की दृष्टि से भी सफल नाटक कहा जा सकता है। इसमें केवल तीन ही अंक हैं; आकार संक्षिप्त और पात्र भी परिमित हैं। अन्य नाटकों के अभिनय में जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, वे इस नाटक में नहीं हैं। सब घटनाएँ एक स्थानीय हैं; दृश्यों की सजावट के लिए निर्देश दे दिये गए हैं। दो पर्दों में सम्पूर्ण दृश्यों को दिखाया जा सकता है। संवाद चुटीले और संक्षिप्त हैं; स्वगत कथन और गीत भी कम हैं। क्रियाशीलता (Action) पर्याप्त है। अतएव यह नाटक रंगमंच पर सरलतापूर्वक खेला जा सकता है।

सामाजिक नाट्यकार लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्र जी का महत्त्व :—पाश्चात्य शैली एवं विचारधारा से प्रभावित आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र अपना विशेष महत्व रखते हैं। आप 'प्रसाद' के समकालीन नाट्यकारों में हैं 'प्रसाद' के नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप मिश्रजी के नाटक यथार्थवादी शैली में लिखे गए हैं। 'प्रसाद' भावुक नाट्यकार थे, जो काव्य की कल्पना में इतने लिप्त रहे कि उनके चरित्र भावुकता से परिपूर्ण होकर अस्वाभाविक से हो गए। हमारे समाज से वे कुछ ऊँचे दिखाई देते हैं। 'प्रसाद' में असभावनाएँ अधिक हैं वे जीवन की कठोरता, संघर्ष और यथार्थ वस्तु स्थिति से नहीं जूझते। इस भावुकता, कृत्रिमता, अस्वाभाविकता के विरुद्ध मिश्रजी का "सन्यासी' (१९२७) प्रथम क्रान्तिकारी नाटक के रूप में हमारे समक्ष आता है। "सन्यासी" का बुद्धिवाद, यथार्थवाद और व्यक्ति एवं समाज की निगूढ़तम गुत्थियों से सम्बन्धित नाटक भारतीय भाषा में नहीं था। तत्पश्चात् मिश्रजी के 'राक्षस का मन्दिर' (१९३१), मुक्ति का रहस्य (१९३२) बुद्धिवादी दृष्टिकोण से लिखे गए। इनकी उत्कृष्टता (इनकी भावुकता नहीं) इनकी ईमानदारी थी। काल्पनिक मनोभूमि छोड़कर इन नाटकों में मिश्रजी समस्याओं का बुद्धिवादी, तर्कपूर्ण सुलझाव ढूँढने के लिए अग्रसर हुए थे। वे पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में अधिक रुचि लेते हुए दीखते हैं। 'अशोक' को छोड़कर मिश्रजी के शेष नाटक 'प्रसाद' की प्रतिक्रिया में लिखे गए हैं। ये समस्या प्रधान हैं और इनमें बुद्धिवादी दृष्टिकोण से व्यक्ति, समाज और युग की व्यापक उलझनें उभारी गई हैं।

तुलनात्मक दृष्टि में देखें तो हमें मिश्रजी का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। श्री जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा प्रतिपादित इतिहास काल्पनिक एवं अतिरंजित है। प्रसाद जी डी० एल० राय से प्रभावित रहे। उन पर शेक्सपीयर की भावुक शैली का भी प्रभाव था। दोनों के चरित्र एवं संवाद एक से हैं, स्वगत अतिरंजित भावावेश से भरे हैं। यत्र-तत्र राय और 'प्रसाद' में असम्भावनाएँ दिखाई

देती है। शैक्सपीयर की भावनाएँ युग विशेष के लिए थीं। राय महोदय में भी भावुक कृत्रिमता पर्याप्त है। 'प्रसाद' इसी वर्ग से प्रभावित होकर अतिरंजित भावावेश पद्धति पर ही नाटकों की रचना करते रहे। इब्सन ने जिस सरलता, यथार्थवाद, स्वाभाविकता की क्रान्ति योरप में की थी, वह मिश्रजी के नाटकों में हिन्दी नाट्य जगत में प्रकट हुई। वे स्वाभाविकता और बुद्धिवादी दृष्टिकोण को लेकर अग्रसर हुए और नए प्रकार के स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक नाटकों की नींव डाली।

'मिश्रजी के नाटकों में न तो अनेक पात्र हैं, न गाने या कविता पाठ की सामग्री और न अनावश्यक दृश्य परिवर्तन। उनके नाटकों का पट-विस्तार भी इतना नहीं कि उसमें विभिन्न देश, काल, व्यवस्थाओं और घटनाओं की विभ्रममयी भरती हो। आधुनिक योरपीय शैली के अनुकूल उनमें गिने चुने आवश्यक पात्र हैं और व्यापार भी सुसगति और सुनियन्त्रित है। आपके कुछ शुरू के नाटकों में कहीं कुछ अनावश्यक वार्तों के विस्तार का दोष आ गया था किन्तु वह अब धीरे-धीरे जा चुका है।'*

नाटकों की विशेषतायें :—मिश्र जी के नाटकों की दो विशेषताएँ हमें विशेष रूप से प्रभावित करती हैं—(१) स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक चित्रण, (२) भाषा और भाव की यथार्थ अनुभूति। उनके पात्र जीवन की भूमि पर सत्य हैं। उनके भाव, मनोविकार, समस्याएँ वैयक्तिक हैं। अनेक पात्रों से लिपटी हुई समस्याएँ चिन्तन सत्यों की ओर संकेत करती हैं। पात्रों के अन्तर्जगत् के चित्रणों की दृष्टि से मिश्रजी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। अपने पात्रों को वे उच्चतम आदर्शों के रूप में नहीं, प्रत्युत अच्छाई बुराई से युक्त मानवों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिस भाषा का प्रयोग इन सामाजिक नाटकों में हुआ है, उसमें काव्य-सुलभ भावुकता अतिरंजना, आवेश, न होकर यथार्थ जीवन में प्रयुक्त सहज सीधी अलकार-विहीन अभिव्यक्ति है। स्वाभाविकता उनका प्राण है, बनावटी भावुकता बिल्कुल नहीं है। कल्पना के जगत में व्योम-विहार न कर उन्होंने आधुनिक संघर्ष-पीड़ा, वेदना तथा यथार्थ सामाजिक जीवन की उलझनों को हमारे सामने उपस्थित किया है। वे वर्तमान की कठोरताओं से पलायन नहीं करते, मनोविश्लेषण एव बुद्धिवाद से उनका हल निकालते हैं। योरपीय साहित्य में प्रतिपादित यथातथ्यवाद की प्रत्यक्ष छाया है।

---

* डा० रामप्रसाद त्रिपाठी।

लेकिन यह यथातथ्यवाद, यह स्वभाविकता यह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, कृत्रिम रूढ़ियों के विरुद्ध बुद्धिवादी क्रान्ति का स्वरूप उन्होंने योरोप से नहीं लिया है। इसका आदि स्रोत सस्कृत साहित्य का अध्ययन है। अपने यथार्थवाद की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में मिश्रजी ने सस्कृत साहित्य के आभार को माना है। कालीदास एव भास के अध्ययन से उन्होंने मनुष्य चरित्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण, परिस्थिति विशेष में उसके व्यापार, सवाद, चेष्टा, मुद्रा आदि को यथातथ्यवाद से लिया है।S

नाटकों की समस्यायें :—मिश्रजी द्वारा विवेचित समस्याएँ क्या हैं? सामाजिक नाटकों में मानव जीवन की जटिलनाओं से सम्बन्धित समस्याओं में नारी की बुनियादी जटिलताएँ हैं। सेक्स द्वारा इन्हें हल किया गया है। नैतिक मूल्यों का विश्लेषण भी किया गया है। "सन्यासी" में सेक्स की उलझने हैं। गौण रूप से राजनैतिक समस्याएँ भी आ गई हैं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में, "मिश्रजी के सभी नाटकों की मूल समस्या सेक्स है। इस समस्या के समाधान के लिए वे काफी गहरे उतरे हैं। उनके 'सन्यासी', "राक्षस का मन्दिर", "मुक्ति का रहस्य", "सिंदूर की होली" में चिरन्तन नारीत्व का विवेचन है। लेखक ने बुद्धि की सहायता से इस उलझी हुई समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। इसके साथ पिछले युग की अनेक समस्याएँ जैसे एशियाई सघ, मातृ मन्दिर (वेश्या सुधार); इलैक्शन, खद्दर, सुधारवाद का दम्भ आदि इन नाटकों में मिलेंगी।"

उदाहरण स्वरूप उनके "सिंदूर की होली" को ही ले लीजिए। इसकी मूल समस्या रिश्वत एव अपराध है। अपराधी मनुष्य एक अपराध को छिपाने के लिए दूसरा तीसरा यहाँ तक कि कई अपराध करता है। वह अपने आपको कानून से बचाने के हेतु तमाम सबूत नष्ट करने का उद्योग करता है। जिन व्यक्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से उसने हानि पहुँचाई है, उनका मुँह बन्द करने के हेतु वह नाना प्रलोभन देता है पर पाप अन्ततः पश्चाताप में आकर ही रुकता है। एक अपराध दूसरे को नहीं ढक सकता। सिक्के की शक्ति परिमित है। रिश्वत, अत्याचार, अपराध तथा वैधव्य—इन सभी समस्याओं का विवेचन इस एक नाटक में मिल जाता है। इसी के अन्तर्गत हमें भिन्न भिन्न प्रकार के आदर्श भी मिल जाते हैं। मनोरमा और चन्द्रकला दोनों शिक्षित स्त्रियाँ हैं। मनोरमा में वैधव्य का आदर्श है, तो चन्द्रकला में प्रेम के बलिदान का। यह

S देखिए—"दशाश्वमेघ" पृष्ठ १२।

व्यवहारिक आदर्शवाद मिश्रजी की निजी विशेषता है। ऐसे चरित्र हर नाटक में हैं।

मिश्रजी के सामाजिक नाटक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण लिए हुए हैं। "राक्षस के मन्दिर" में मुनीश्वर के चरित्र को ही ले लीजिए। वह कामपीड़ित होते हुए भी अपने अन्दर क्रान्ति की चिन्गारी दबाये हुए है। शराबी रामलाल वेश्या सुधार के लिए इतना उत्सुक है कि अपनी समस्त जायदाद मातृ मन्दिर को दान दे डालता है। "सिंदूर की होली" में मनोज में यह क्रान्ति का स्वर है। चन्द्रकला अपने पिता के लिए प्रायश्चित करती है। वह पचास हजार के प्रायश्चित में मरते हुए रजनीकान्त से विवाह कर लेती है। अन्त में अपनी शिक्षा के बल पर जीवन निर्वाह के लिए चली जाती है। मनोरमा वैधव्य जीवन बिताते हुए भी क्रान्तिकारी है। उसने समाज को बड़ी गहराई से देखा है। वैधव्य विधवा-विवाहों से नहीं मिट सकता मनोज को दिया हुआ उसका यह उत्तर देखिए—

मनोरमा—"विधवा विवाह हो रहा है.......... 'लेकिन वैधव्य कहाँ मिट रहा है? समाज इस आग को नहीं बुझा सकता इसलिए उसे अपने छज्जे से उठा कर अपनी नींव में रख रहा है। तुम्हारे सुधारक, राजनीतिज्ञ, कवि, लेखक, उपन्यासकार, नाटककार सभी विधवा के आँसुओं में बहते हुए दीख पड़ रहे हैं। वैधव्य तो मिटेगा नहीं...........तलाक का आगमन होगा। अभी तक तो केवल वैधव्य की समस्या थी...... .....अब तलाक की समस्या भी आ रही है! तुम्हारे कहानी लेखक इस समस्या को कला का आधार बना रहे हैं और इस प्रकार संयम और शासन को निकाल कर प्रवृत्तियों की बागडोर ढीली कर रहे हैं। उनका उद्देश्य अधिक से अधिक उपभोग है और इसी को वे अधिक से अधिक सुख समझ रहे हैं। लेकिन उपभोग सुख है?"

मिश्रजी ने सामाजिक समस्याओं का हल भी मौलिक विचार द्वारा प्रस्तुत किया है। समाज की समस्याओं के हल करने में उनके पात्र बुनियादी विचारक हो उठते हैं। मनोरमा द्वारा प्रस्तावित समस्या का हल देखिए—

मनोरमा—"...... "लेकिन जीवन नितान्त भला कहाँ है? विधवा विवाह और तलाक दो बुराइयों में से एक को पसन्द करना पड़ेगा........ "नहीं तो दोनों बुराइयाँ तो समाज को निगल जायेंगी।" .... समाज की चेतना के लिए विधवाओं का होना आवश्यक है... ...... 'उसके भीतर संकल्प है, साधना है, त्याग और तपस्या है... ....यही विधवा का आदर्श है और यह आदर्श तुम्हारे लिए गौरव की चीज़ है...........जितनी कोशिश इस आदर्श को मार

डालने की हो रही है अगर उतनी ही कोशिश इसे जीवित रखने के लिए होती तो तुम्हारा समाज और परिवार आज दूसरी चीज होती।"

मिश्रजी के नारी पात्र सामाजिक क्रान्ति में सहायक हैं। वे अपने नवीन विचारों एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण से समाज में नए मूल्यों का निर्माण करती हैं। चन्द्रकला में इसी प्रकार की क्रान्ति है। उसमें चिरन्तन नारीत्व का उदय हुआ है। वह अपने पाँवों पर खड़ी है। उसे पुरुष की आवश्यकता नहीं वह स्वय अपना प्रबन्ध कर सकती है। यह स्वतन्त्रता अन्य स्त्री पात्रों में भी मिलती है।

सामाजिक क्षेत्र में मिश्रजी एक मौलिक क्रान्तिकारी नाट्यकार के रूप में उदित हुए हैं। उनका दृष्टिकोण तार्किक बुद्धिवादी है। एक विचारपूर्ण मस्तिष्क तो उनके पास है ही, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि भी विकसित है। उन्होंने जिस यथार्थवाद का चित्रण किया है, उसी में हमें आदर्श की भी झाँकी मिल जाती है। मिश्रजी एक उत्कृष्ट जीवन शास्त्री हैं।

नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा उनका 'वत्सराज'

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी-नाट्य-साहित्य के विकास में एक विशेष धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। किंतु उनका प्रवर्तन-क्षेत्र क्या है और उनकी शैली क्या है, इस पर हिन्दी में विशेष खोज-बीन नहीं हुई है। मिश्रजी की कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ प्रसादजी से प्रभावित हैं। किंतु धीरे धीरे उन्होंने अपने लिए एक नई पद्धति का निर्माण कर लिया है। साधारणतः उन्हें समस्यामूलक नाटककार कहा जाता है। यूरोप के नाटककारों में इब्सन और शा समस्यामूलक नाटककारों में अग्रणी माने जाते हैं। समस्यामूलक नाटकों के रचयिता प्रायः बुद्धिजीवी होते हैं, अर्थात् मूलतः वे चिंतक होते हैं और नाट्य-रचना उनकी साधना होती है। जो नाटककार समस्या के निरूपण के साथ ही चरित्र-सृष्टि में भी समर्थ होते हैं अर्थात् जो बौद्धिक विवेचन के साथ एक सजीव नाट्य-सृष्टि भी प्रस्तुत कर सकते हैं, वे निश्चय ही श्रेष्ठ नाटककार हैं। समस्यामूलक नाटकों में प्रधान दोष यह देखा जाता है कि समस्या का विवेचन तो इनमें प्रमुख हो जाता है, नाटकीय तत्वों की अवहेलना हो जाती है। जार्ज बर्नार्ड शा के नाटकों में आंशिक रूप में यह दोष है। उनके नाटक तर्क-प्रधान हैं, किन्तु हमें यह सदैव याद रखना चाहिये कि कथोपकथन ही नाटक नहीं है। सफल नाट्य-सृष्टि के लिए अन्य तथ्यों की उपस्थिति अनिवार्य है। नाटकीय तथ्यों की इसी कमी के कारण शा सामाजिक विचारक के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। समस्यामूलक नाटकों में व्यक्त विचार प्रायः रूढ़ि विध्वंसक होते हैं। परंपरागत आचार-विचारों में क्रान्ति करना ही उनका सर्व प्रधान लक्ष्य रहता है। नाटककार एक विशिष्ट चिंतक के रूप में हमारे सामने आता है। रूढ़ियों और परम्पराओं को ध्वंस करने वाले विचारों से पाठकों को एक धक्का लगता है और हमारी चिर-परिचित मान्यताओं के सम्मुख जब एक प्रश्नवाचक चिन्ह उपस्थित होता है, तब हम आश्चर्य करते हैं और समस्याओं पर नई दृष्टि से विचार करने पर विवश

होते हैं। हमारी विचार-शक्ति को उद्बुद्ध करना ही समस्या-प्रधान नाटक की सबसे बड़ी सफलता होती है।

वस्तु-पक्ष—लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी के प्रमुख समस्यामूलक नाटककार कहे जाते हैं, किन्तु उनके आरम्भिक नाटकों की तथाकथित समस्याएँ बहुत अधिक स्पष्ट नहीं हैं। अनेक समस्याओं को एक ही नाटक में लेने के कारण वे बहुत-कुछ अनिर्देश्य और अनिर्णीत रह गई हैं। समस्या-प्रधान नाटकों में एक समस्या पर सर्वतोमुखी विचार रहता है। समस्या की यह एकता मिश्रजी के प्रारम्भिक नाटकों में नहीं पाई जाती। उनके प्रारम्भिक नाटकों में इतने प्रश्न आए हैं, कि नाटक की प्रमुख समस्या क्या है, इसका निर्णय कठिन हो जाता है। 'सिन्दूर की होली' में आखिर क्या मसस्या मानी जायगी? नारी की मनोभावना समस्या के रूप में उपस्थित की गई है। किन्तु वह वस्तुतः कोई समस्या नहीं है, मनोवृत्ति मात्र है। इसे तो हम एक विशेष प्रकार की चारित्रिक सृष्टि ही कहेंगे।

अन्य नाटकों में भी कुछ प्रश्न उठाए गए हैं और उन प्रश्नों का समाधान उपस्थित किया गया है। यह समाधान ऊपर से तो बौधिक ज्ञात होता है, किन्तु मूलतः वह भावनात्मक ही होता है। मिश्रजी की समस्याओं और समाधानों का बहिरंग तो तर्कपूर्ण ज्ञात होता है, किन्तु मूलत वह भावात्मक और आदर्शवादी ही होता है। यहाँ पर हमें कहना होता है कि मिश्र जी के नाटक पुनरुत्थानवादी हैं, उनमें भारतीय प्राचीन जीवन को एक नए सिरे से उपस्थित करने का उद्योग किया गया है।

तर्कों की योजना से ही कोई नाटक बुद्धिवादी नहीं बन जाता। उस समय का निरूपण भी बौद्धिक होना चाहिये। मिश्रजी में जीवन के प्रति वैज्ञानिक और बौद्धिक दृष्टिकोण प्रमुख नहीं है। समस्याओं को भावात्मक और आदर्शवादी विवृत्ति से ही वे सतुष्ट हो जाते हैं उनके नाटकों में कुछ समस्याएँ उठाई गई हैं। 'नारद की वीणा' में आर्य और अनार्य-सभ्यताओं के समन्वय का प्रसग उठाया गया है। इसी प्रकार 'वत्सराज' में हिंदू और बौद्ध विचार-पद्धतियों का विरोध प्रदर्शित है तथा बौद्ध जीवन-पद्धति की तुलना में हिन्दू-जीवन-पद्धति की महत्ता प्रतिपादित की गई है। किंतु यदि इन्हें समस्या कहा भी जाय तो ये समस्याएँ इतनी व्यापक और सामान्य हैं कि इनका निरूपण किसी नाटक को समस्यामूलक नाटक बनाने में कृतकार्य नहीं हो सकता। वैसे तो प्रत्येक नाट्य सृष्टि में कोई न कोई उद्देश्य रहता ही है, किंतु जिस विशेष अर्थ में 'समस्या-नाटक' शब्द का उपयोग होता है—विचार-सबधी क्रांतदर्शी

उन्मेष द्वारा हमारे जाने-माने विचारों का खोखलापन सिद्ध करने की पद्धति—उस अर्थ में लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक समस्यामूलक नहीं हैं और पाश्चात्य समस्या-नाटकों की परंपरा से भिन्न हैं।

मिश्रजी ने अपने नाटकों में यथार्थवादी शैली अपनाई है। उनके नाटकों की टेकनीक यथार्थ एवं अकृत्रिम है। इसके लिए आवश्यक है (अ) संवादों की लघुता और स्वाभाविकता, (व) नाटक में अधिक अंकों और दृश्यों का अभाव तथा (स) शैली में व्यंग्य और विनोद, हाजिर-जवाबी, कौशल तथा अन्य चमत्कारपूर्ण प्रयोग।

कुल मिलाकर एक यथातथ्यवादिता, जीवन जैसा है वैसा ही आभास देना मिश्रजी की कला का लक्ष्य है। कलाकार के रूप में उनकी कला यथार्थोन्मुख है, लेकिन विचारों के क्षेत्र में वे भावनावादी, आदर्शवादी तथा परम्परावादी हैं। शैली के यथार्थ के साथ वस्तु का आदर्श उनका गुण है। मनोविज्ञान तो आज के समस्त साहित्य का मेरुदण्ड है। मिश्रजी ने अपने नाटकों में मनोविज्ञान की स्थापना का दावा किया है, किंतु उनके नाट्य-चरित्रों का मनोविज्ञान उनकी विशिष्टता नहीं है।

मिश्रजी अपने-आपको भारतीय परंपरा का नाटककार भी कहते हैं। कोई भी समस्या प्रधान नाटककार अपने को परंपरावादी नहीं कहता। परंपरावादी नाटककार का बुद्धिवादी होना अत्यन्त कठिन है। किन्तु मिश्रजी एक ही साँस में अपने को बुद्धिवादी और परंपरावादी, दोनों कहते हैं। उनके नाटकों में जिस भारतीय परंपरा का उल्लेख है, वह समस्यामूलक नाटकों के विरोध में पड़ती है। वे अब भी नाटकों के नायकों का धीरोदात्त होना आवश्यक मानते हैं। यह विशुद्ध परंपरावादी दृष्टिकोण है। मिश्रजी अपने को रोमैंटिक शैली का विरोधी और शास्त्रीय शैली का समर्थक घोषित करते हैं। इससे अनुमित होता है कि वे प्रधानतः एक पुनरुत्थानवादी कलाकार हैं। समय के प्रवाह में आने वाली नई परिस्थितियों को अभारतीय मानना इसी दृष्टिकोण का परिणाम है।

वस्तु और दृष्टिकोण में नवीनता न होते हुए भी मिश्रजी ने शैली एवं नाट्य विधान में नवीनता स्थापित की है। इस कारण उनके नाटक कला की दृष्टि से काफी स्वाभाविक ज्ञात होते हैं। मिश्रजी के नाटकों में जिन स्थलों पर चित्रण उच्च कोटि के नाटकीय संघर्ष की सूचना देते हैं, वे अत्यन्त आकर्षक बन पड़े हैं। 'शा' की भाँति केवल विवेचना उनका प्रमुख लक्ष्य नहीं रहा है। यह

कदाचित् इस कारण कि मिश्रजी मूलतः समस्या-प्रधान नाटककार नहीं हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र 'प्रसाद'-शैली के नाटकों के विरोध में एक प्रतिक्रिया का भाव रखते हैं। प्रसाद-शैली के नाटकों की विशेषताओं के प्रति बौद्धिक अनास्था का भाव मिश्रजी के आरंभिक नाटकों से ही दिखाई पड़ता है। वस्तु और कला, दोनों क्षेत्रों में मिश्रजी प्रसादजी से असहमत रहे हैं। प्रसाद के नाटकों में यदि पात्रों का बाहुल्य और स्वच्छंदतावादी दृष्टि की प्रधानता है तथा पात्रों में मनोवैज्ञानिक सजीवता है, तो लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में इन सब के प्रति एक प्रतिक्रिया मिलती है। पात्रों का बाहुल्य उन्होंने प्रसादजी के नाटकों का एक दोष माना है और अपने नाटकों में उन्होंने अधिक पात्रों की योजना नहीं की है। प्रसादजी की काव्यात्मक भाषा का भी उन्होंने विरोध किया है। प्रसादजी के चरित्र-चित्रण से भी वे संतुष्ट नहीं हैं, क्योंकि प्रसादजी के नायक आदर्श धीरोदात्त पात्र नहीं हैं। मिश्रजी मनोवैज्ञानिक चरित्र-सृष्टि को भी नाटक की स्वाभाविकता का आवश्यक उपादान नहीं मानते, क्योंकि उनकी दृष्टि में नायक-नायिका के धीरोदात्त होने पर मनोवैज्ञानिक चरित्र-सृष्टि का प्रश्न ही नहीं उठता। मिश्रजी की नाट्य-शैली अपने पूर्ववर्ती नाटककार के विरोध में उठ खड़ी हुई है। प्रसाद-विरोधी मान्यताएँ मिश्रजी की नाट्य-विधि की सर्वप्रथम विशेषता है।

मिश्रजी ने पाश्चात्य नाट्य-शैली का अध्ययन किया है और हिंदी में उसकी प्रस्थापना का उद्योग किया है। पाश्चात्य नाटकों के इतिहास में समस्या-प्रधान नाटक इस युग की विशेषता है। नाटकीय विधान की सरलता ऐसे नाटकों का लक्ष्य रहा है। मिश्रजी ने इस सरलता को भी अपना लक्ष्य बनाया है। शैली के क्षेत्र में वे नए यथार्थवाद के समर्थक हैं। पात्रों के संभाषण में भाषा का स्वाभाविक अकृत्रिम प्रयोग, तर्कपूर्ण वाक्यावली समस्या-प्रधान नाटकों के प्रधान गुण माने जाते हैं। इब्सन और जार्ज बर्नार्ड शा ने अपने नाटकों में व्यंग्य-विनोद और उत्तर-प्रत्युत्तर की संभाषण-पद्धति अपनाई है। इसी पद्धति को अपने नाटकों में नियोजित करने का उपक्रम मिश्रजी ने भी किया है। किंतु यह नया यथार्थवाद मिश्रजी के नाटकों के अंतरंग को नहीं छूता। वस्तु-चयन और निरूपण में उनकी पद्धति यथार्थवादी नहीं है। उनके नाटकों में या तो समस्याएँ इतनी बड़ी होती हैं कि उनको सँभाल पाना कठिन हो जाता है या एक ही नाटक में इतनी समस्याएँ उलझी रहती हैं कि वे स्पष्ट नहीं हो पातीं। 'सिंदूर की होली' की समस्या स्पष्ट नहीं हो सकी है। ऐसे ही 'नारद की वीणा'

की समस्या समस्या नहीं रह गई है, वह इतिहास हो गई है। समस्याओं की विशालता एवं अनिर्दिष्टता के कारण मिश्रजी के नाटकों का निर्णय भी सर्वत्र समाधानकारक नहीं हो पाता। मिश्रजी ने अपने नाटकों में जिन समस्याओं को उठाया है, उनका बौद्धिक निर्णय देने की चेष्टा नहीं की है। उनका समस्त दृष्टिकोण भावनावादी ही रहता है। समस्या-नाटक की निर्णयात्मक पद्धति को मिश्रजी ने अपने नाटकों में नहीं अपनाया।

पुनरुत्थानवादिता एवं प्राचीन राष्ट्रीय गौरव का संदेश उनके नाटकों की तीसरी विशेषता है। हम कह सकते हैं कि जीवन और जगत् के संबंध में मिश्र जी की धारणा गतिशील नहीं है। राष्ट्रीय संस्कृति को निश्चय एवं शाश्वत रूप में देखने और समझने के वे पक्षपाती हैं। पुनरुत्थानवादियों की यही विशेषता होती है। यही कारण है कि उनके नाटकों में उग्र राष्ट्रीयता मिलती है। 'वितस्ता की लहरों' में यह उग्र राष्ट्रीयता अत्यंत प्रत्यक्ष है। प्रसादजी के 'चंद्रगुप्त' नाटक का कथानक प्रायः वही है जो 'वितस्ता की लहरों' का है। प्रसादजी ने सिकंदर का महत्त्व भी चित्रित करने की उदारता दिखाई है। पर मिश्रजी ने सिकंदर के चरित्र को बड़ी हद तक गिरा दिया है। उनका सिकंदर सर्वथा निरीह एवं पराजित रूप में चित्रित किया गया है। छोटे-से-छोटे सैनिक भी उसका उपहास कर सकते हैं। निश्चय ही यह प्रगतिशील दृष्टिकोण नहीं है। भारतीय जीवन और दर्शन के संबंध में भी मिश्रजी की धारणा उग्र हिंदुत्ववादी है। वे बौद्ध तथा अन्य हिंदू,भिन्न धर्मों को कदाचित् भारतीय नहीं मानते। इन धर्मों को उन्होंने एक आगंतुक पदार्थ माना है, भारतीय जीवन और संस्कृति के लिए विघातक। भारतीय जीवन का उनका आदर्श है भोग और त्याग का समन्वय। भले ही यह एक भारतीय आदर्श हो, पर क्या भारतीय आदर्श इतना ही है! इस तरह हम देखते हैं कि सामाजिक जीवन में पुनरुत्थानवादिता, उग्र हिंदुत्व एवं उग्र राष्ट्रीयता उनकी विशेषताएँ हैं।

कला-पक्ष—मिश्रजी के नाटकों व्यापार या क्रियाशीलता का प्राधान्य नहीं है। उनके नाटक गोष्ठियाँ बन जाते हैं जहाँ चार आदमी, मार्के की ही सही, बातचीत करते हैं। व्यापार को प्रदर्शित न कर वे उसे सूच्य बना देते हैं। प्रसादजी के नाटकों में कार्य-बाहुल्य जहाँ दोष की सीमा तक पहुँच गया है, वहाँ मिश्रजी के नाटकों में कार्य की अत्यंत कमी है। उनके पात्र चर्चा अधिक करते हैं, काम कम। उनके नाटकों में व्यापार पर्दे की आड़ में घटित होते हैं। 'वत्सराज' उनका एक सुन्दर नाटक है, पर उसमें भी हम गतिशील वस्तु रचना का अभाव ही पाते हैं। बदले में मिश्रजी समस्याओं और विचारों की लम्बी

व्याख्या में सन्नद्ध हो जाते हैं। इन समस्याओं की व्याख्या की भूमिका यथार्थ रहती है, इसमें सदेह नहीं। पर अभिनीत होने पर मिश्रजी के नाटकों की क्या स्थिति होगी, यह विचारणीय है। वे सुपाठ्य और विचारोत्तेजक होने के साथ ही रसात्मक भी हैं। पर अभिनय की सफलता के लिए शारीरिक और मानसिक क्रियाशीलता का आभास परमावश्यक है। प्रसाद के नाटकों में यह तत्त्व जितना ही प्रशस्त है, मिश्रजी में उसकी उतनी ही कमी है। मिश्रजी के नाटक बौद्धिक सवाद-प्रधान हैं, व्यापार और क्रिया-प्रधान नहीं हैं।

वत्सराज का विवेचन—'वत्सराज' श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के श्रेष्ठ नाटकों में एक है। इसके विवेचन से मिश्रजी की नाट्य-कला की कतिपय विशेषताएँ स्पष्ट हो सकेंगी। वत्सराज में तीन अक हैं और तीनों अकों में दृश्य विभाजन नहीं किया गया है। प्रथम अक के प्रारम्भ में जो पात्र आए हैं वे अन्त तक बने रहते हैं, यद्यपि अन्य पात्र भी बीच-बीच में आते रहते हैं। दृश्य-परिवर्तन से नाटक में कुछ विशेषताएँ आ जाती हैं, यद्यपि कुछ 'यथार्थवादी' समीक्षक इसका विरोध करते हैं। दृश्य-परिवर्तन से वस्तु-विकास में स्पष्टता और गतिशीलता आती है, साथ ही दर्शकों को नवीनता का भास होता रहता है। दृश्य विकास के साथ ही दर्शक आगे बढ़ते हैं। दृश्य-परिवर्तन के अभाव में व्यापार की प्रगति में स्थिरता या जड़ता आ सकती है। यदि हम केवल उपयोगिता की दृष्टि से ही देखें, तो नाटक में दृश्यांतर का होना आवश्यक जान पड़ता है। किन्तु दृश्यातर का विधान यथार्थवादी नाट्यकारों को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि दृश्यातर से दर्शकों को कृत्रिमता का आभास मिलेगा। यथार्थवादी प्रदर्शन की 'यथार्थता' को ही सब कुछ मानते हैं, और रंगमन्च तथा सामान्य जीवन के दृश्यों को एक बनाना चाहते हैं। वे दर्शक को रगमच पर नाटक का नहीं, यथार्थ 'घटना' का बोध करना चाहते हैं। यही कारण है कि यथार्थवादी लेखक अपने नाटकों में रगमच-सज्जा के विस्तृत विवरण देने का विशेष ध्यान रखते हैं और दर्शक को नाटक के खेले जाने का बोध न होने पाये, इसलिए वे दृश्यातर विधान का निषेध करते हैं। किन्तु ऐसे दर्शक तो कम ही होंगे, जिन्हें रगमच और यथार्थ जीवन-दृश्य के अन्तर का बोध न हो। विविध दृश्यों की योजना का एक शुभ परिणाम यह भी होता है कि इससे नाटक के कार्य या व्यापार की प्रगति का स्वाभाविक विकास सम्भव हो जाता है।

मिश्र जी नाटकों में यथार्थवादी दृष्टिकोण के हिमायती हैं। यथार्थवाद की रक्षा के लिये उन्होंने एक अक में प्रायः एक घण्टे का एक ही दृश्य रखा है।

किन्तु यदि आरम्भ में आए हुए पात्र ही अन्त तक बोलते रहें तो उसमें नाटकीयता बहुत कुछ क्षीण हो जायगी। नाटक न होकर वह गोष्ठी हो जायगा। एक कठिनाई और है। दृश्यांतर किए बिना अभिनेताओं के आवागमन का विधान नाटककार कैसे करेगा। एक या दो पात्र आदि से अन्त तक बने रहें और शेष पात्र क्रमशः आते-जाते रहें यही सम्भव है। मिश्रजी ने इसी पद्धति का प्रयोग किया है। प्रथम अंक में उदयन प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित रहता है। यही नहीं दूसरे तीसरे अंकों में भी वह प्रारम्भ से अन्त तक बना रहता है। इस तरह रंगमंच पर एक पात्र का आदि से अन्त तक बना रहना नाटकीयता के लिए एक बड़ा खतरा है। वह नाटक की गत्यात्मकता को समाप्त कर देगा। रंगमंच की दृष्टि से दोषपूर्ण होने के साथ ही अभिनय-कला की दृष्टि से भी वह दोषपूर्ण है।

एक अंक में एक ही दृश्य रखने के कारण अनेक बार पात्रों के परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी है। आरम्भ में उदयन और बसंतक, ये दो पात्र पन्द्रह पृष्ठों तक वार्तालाप करते रहते हैं। पात्रों की इस कमी के कारण नाटकीयता का स्थान शुष्क गोष्ठी ने ले लिया है। इसी अंक में महासेन के रंगमंच पर आने से यह समस्या उठ खड़ी होती है कि पहले का पात्र वसंतक क्या करे, वहीं रहे या बाहर चला जाय। किन्तु कोई पात्र अकारण ही तो बाहर नहीं जा सकता। उसके लिए उचित अवसर और कारण भी होना चाहिए। मिश्र जी ने पात्रों के एक समुदाय को उपस्थित कर सारे समुदाय या उसमें से कुछ को बाहर निकाल देने की पद्धति अपनाई है। किन्तु इससे स्वाभाविकता की रक्षा करने में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई है। सार्थकता की रक्षा करने के लिए अन्त में मिश्रजी को उदयन द्वारा सबको जाने की आज्ञा दिलवानी पड़ी है। सबके चले जाने पर उदयन और महासेन काफी देर तक बात-चीत करते हैं। यौगंधरायण भी आकर उस बातचीत में हिस्सा लेता है। अन्त में सबके जाने पर वासवदत्ता आती है।

इस तरह हम देखते हैं कि दृश्यांतर भले ही न किया गया हो, पात्रों का आवागमन मिश्रजी नहीं रोक सके हैं। ऐसे नाटकों में वस्तु गतिशील नहीं हो सकती। पात्र क्रिया-कलाप में भाग न लेकर केवल चर्चाएँ करते हैं, नाटकों की वास्तविक वस्तु पर्दे के पीछे घटित होती है। ऐसे नाटकों में व्यापार की परोक्षता दर्शक के लिए अनुपादेय सिद्ध होती है। जो बात पहले अंक के लिए कही गई है, वही दूसरे अंक के लिए लागू होती है। वासवदत्ता का अपहरण भी रंगमंच पर नहीं होता। तीसरे अंक में भी नाटककार ने घटना-

विवरण न देकर स्थिति-चित्रण ही किया है। बुद्ध के नए धर्म के विरोध में विस्तृत तर्कों से तीसरा अक भरा पड़ा है। केवल अन्तिम अवसर पर उदयन-पुत्र के रगमंच पर आने से नाटक में वास्तविक क्रियाशीलता का अनुभव होता है। शेष अक में वस्तु या कथानक की गत्यात्मकता का दर्शक को बहुत कम आभास मिल पाता है।

पहले अक में विदूषक और उदयन बंदीगृह में दिखाए गए हैं। उदयन को बंदीगृह में भी सम्पूर्ण सुविधाएँ प्राप्त हैं। वसतक उदयन का विदूषक है। वह राजा के रूप की प्रशसा करता है और महासेन की पुत्री वासवदत्ता के वरण का सुझाव देता है। वासवदत्ता भी उदयन पर आसक्त है। किन्तु उदयन परतप अर्जुन का वशज है। वह प्रत्येक भोग का उपभोग अनासक्त रूप से करने में विश्वास करता है। भोगों के मार्ग से वह भोगों पर विजय पाना चाहता है। इसी प्रसग में महर्षि जमदग्नि के आश्रम में रहने के कारण अपने ऊपर पड़े हुए प्रभाव का भी वह वर्णन करता है और घोषवती की प्राप्ति के प्रसग का भी उल्लेख करता है। यह मत समझिये यह कोई छोटी-मोटी चर्चा है। इस चर्चा में लेखक ने अनेकानेक पृष्ठ लगाए हैं। जिस घटना के लिये ये सारी चर्चाएँ भूमिका रूप में उपस्थित की गई हैं, वह हैं वासवदत्ता के हरण की घटना। इसी बीच रगमच पर महासेन के दर्शन होते हैं। यहाँ मिश्रजी के सम्मुख वसतक की समस्या उठ खड़ी होती है। उसके बाहर जाने का अवकाश या कारण नहीं है, इसलिए उसे खाट के नीचे छिपना पड़ा है। उदयन काचनमाला से और मदिरा से थोड़ा विनोद भी करता है। दूसरा प्रकरण महासेन, यौगधरायण और उदयन की बातचीत का है। फिर उसी घोषवती वीणा की बातें। उदयन की मा के निष्कासन की घटना पर यहाँ प्रकाश पड़ता है। यहीं पर उदयन और महासेन को मौका देने के लिए यौगधरायण को बाहर जाना पड़ता है। अक के अन्त में उदयन और वासवदत्ता रगमच पर रह जाते हैं। वासवदत्ता इस अवसर पर भी अगले क्षण घटित होने वाली अपने अपहरण की घटना के सम्बन्ध में केवल चर्चा ही करती है। कार्य के रूप में कोई वस्तु नहीं आती, सूच्याश की ही प्रधानता बनी रहती है। आदर्श और सिद्धात-स्थापनाओं के अतिरिक्त व्यापार-विकास की दृष्टि से नाटक के इस अक में कोई सामग्री नहीं है। हमें कहना पड़ता है कि इस अक में केवल सवादों का वैशिष्ट्य है। किन्तु केवल सवादमात्र से दर्शकों को सतोष नहीं हो सकता।

दूसरा अक उदयन के राज्यगृह से प्रारम्भ होता है। मदिरा और कांचन-माला के चरित्र द्वारा लेखक ने भारतीय और पारस्य सभ्यता का अन्तर दिखाने

का प्रयास किया है। इस प्रकार ये दो चरित्र कोरे अहेतुक नहीं हैं। इसी बीच पर्दे के पीछे एक नाटकीय घटना घट गई है। मंत्री यौगन्धरायण इस घटना का सूत्रधार है। उदयन को वासवदत्ता के जल मरने का विश्वास हो जाता है। वास्तविकता यह है कि वह मरी नहीं है, छद्म वेश में मगध जाकर उदयन से पद्मावती के विवाह की तैयारी करा रही है। वासवदत्ता के जीवित होने का पता लगने पर उदयन पद्मावती के प्रति विरक्त हो जाता है। कुमारी पद्मावती से वासवदत्ता की अत्यन्त घनिष्ठता हो गई है। दूसरे अंक में पारिवारिक जीवन का चित्र ही प्रमुख है। द्विपत्नीक होकर भी पति एक पत्नीव्रती रह सकता है। यही समस्या इस दूसरे अंक में चित्रित करने का प्रयास है। किन्तु यह कोई समस्या नहीं है। समस्या के इस प्रकार प्रस्तुत किए जाने से नाटककार की रूढ़िप्रियता का ही पता चलता है।

इसी दूसरे अंक में एक नई घटना भी आती है। बुद्ध के व्यक्तित्व ने समस्त उत्तर भारत को आकृष्ट कर लिया है। भारत के धार्मिक इतिहास में बौद्धधर्म का उत्थान एक अभूतपूर्व घटना थी। गौतम बुद्ध ने चार आश्रमोंवाले हिन्दू-धर्म के विरोध में श्रमणधर्म की स्थापना की। उदयन और उदयन का समस्त परिवार इस घटना से अभिभूत है। उदयन का पुत्र बौद्धधर्मानुयायी हो जाता है। तीसरे अंक में बुद्ध के प्रचार एवं कुमार के श्रमण होने से उत्पन्न परिस्थितियों का दिग्दर्शन है। विरोधी परिस्थितियों के संघात से तीसरा अंक भावनाओं का विलक्षण क्रीड़ास्थल बन गया है। उदयन के चरित्र का बड़ा सुन्दर उद्घाटन इस अंक में हुआ है। उदयन बौद्धधर्म के प्रति शंकालु है, किन्तु बुद्ध के प्रति यथेष्ट आदरभाव भी प्रदर्शित करता है। लेखक ने इसी प्रसंग में उदयन के मुख से बौद्ध तथा हिन्दूधर्म पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। आज्ञा के लिए आए हुए कुमार तथा उदयन के शेष परिवार के एकत्र होने पर बड़े ही प्रभावशाली दृश्य की अवतारणा की गई है। कुमार के उद्धार के लिए उदयन का अपनी दोनों रानियों सहित राज्य-त्याग का अन्तिम दृश्यांश अत्यन्त मार्मिक है। इसी मर्मपूर्ण दृश्य से नाटक की समाप्ति होती है।

यहाँ पर हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि इस नाटक की कार्यावस्थाएँ और अर्थ-प्रकृतियाँ किस प्रकार नियोजित हैं। नाटक का उद्देश्य बुद्ध की निवृत्तिमार्गी पद्धति की तुलना में उदयन की प्रवृत्तिमार्गी जीवनदृष्टि की विजय दिखाना है अथवा सामान्य रूप से उदयन के जीवन आदर्शों का अंकन करना इसका लक्ष्य है? किन्तु केवल किसी चरित्र के आदर्शों का अंकन नाटक के लिए पर्याप्त नहीं होता, उसमें विरोधतत्त्व का प्रदर्शन भी आवश्यक होता है। इस

दृष्टि से उदयन और बुद्ध के चरित्रों और आदर्शों का सघात ही नाटक का लक्ष्य माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में नाटक का वास्तविक कार्यारम्भ पद्मावती के उस अवसर के क्षोभ से होता है जब वह अपनी सखी गोपा के गौतम द्वारा त्याग किए जाने का वृत्तान्त पाती है। यदि द्वितीय अक की इस घटना से ही नाटक का कार्यारम्भ होता है, तो प्रश्न किया जा सकता है कि नाटक के प्रथम अक की क्या उपयोगिता है? प्रथम अक का इस प्रधान कथा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है और वह भूमिका मात्र रह जाता है। यदि प्रथम अक का कोई उपयोग है तो उदयन के चरित्र की सूचना मात्र देना ही। किन्तु यदि एक पूरा अक खपाने के बाद भी कार्य का प्रारम्भ न हो पाया हो, तो यह कथानक की विशृखलता ही कही जायगी। यदि उदयन के गुण-विकास को हम बीज अर्थ प्रकृति मान भी लें तो भी कार्यावस्था क्या है? वासवदत्ता के हरण का कार्य तो एक स्वतन्त्र कार्य है। नाटक के फल से उसकी कोई कार्य-कारण-सगति नहीं बैठती।

कार्य की दूसरी अवस्था 'प्रयत्न' का आरम्भ हम उदयन के बौद्धधर्म की अप्राकृतिकता की घोषणा से मान सकते हैं। स्वय उदयन के पुत्र का बौद्धधर्मानुयायी बन जाना कार्य की चरम सीमा कही जायगी। इसके बाद के सारे कार्य नियताप्ति की ओर उन्मुख हैं। फल प्राप्ति के पूर्व का अतिम कार्य कुमार को वापिस लाने का उद्योग है। इसके लिए उदयन का मन्त्री को आदेश देकर अपने पुत्र को बुलाना नियताप्ति की घटना है। अन्त में उदयन के पुत्र का पुनरागमन एव अभिषेक फलागम है।

वत्सराज में अन्तिम तीन कार्यावस्थाएँ तो स्पष्ट हैं, परन्तु प्रारम्भिक दोनों अवस्थाएँ उभर नहीं सकी हैं। नाटक के मुख्य कथानक के साथ आनेवाली उपकथाएँ प्रायः नाटक के बीच में चित्रित की जाती हैं, किन्तु वत्सराज के प्रथम अक में आई महासेन की प्रासगिक कथा ही पताका के रूप में दिखाई पड़ती है मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा राजकुमार के लिए एक नए राज्य की स्थापना का प्रयास प्रकट है। ऐसे ही यदि मदिरा और काचनमाला के प्रसग को छोड़ दें तो नाटक में अन्य कोई उपकथा नहीं है। वस्तुतः मदिरा और काचनमाला के चरित्र किसी प्रासगिक या अप्रासगिक कथानक का निर्माण करते भी नहीं हैं।

इन लक्षणों से ज्ञात होता है कि यह नाटक व्यवस्थित कार्य-शृखला से बद्ध नहीं है। पहले अक का दूसरे अक से कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं जुड़ता। नाटककार ने वासवदत्ता, पद्मावती एव उदयन और गौतम, उदयन एव कुमार की दो कथाओं को एक में मिलाने का प्रयास किया है। वस्तु रचना की दृष्टि से

ये दो अलग-अलग आख्यान हैं। इन दोनों आख्यानों में नाटककार के उद्देश्य भी अलग-अलग हैं। पहले आख्यान की मुख्य समस्या एक राजा का दो रानियों के प्रति सम्यक् व्यवहार की है। दूसरे आख्यान में श्रमणधर्म के अनौचित्य पर विचार किया गया है। हिन्दू-संस्कृति के आदर्श की नींव पर ये दोनों कथाएँ संग्रहित कर दी गई हैं। इस आदर्श की दृष्टि से इसका कथानक भले ही धारावाहिक कहा जाय, पर 'वस्तु' को आदर्श मात्र से कुछ अधिक होना चाहिए। वास्तविक घटनाओं और उनके प्रत्यक्ष घात-प्रतिघात की योजना ही नाटक के 'वस्तु'-स्थापत्य का प्राण होती है। इस नाटक में 'समस्या' के स्थापन का प्रयत्न भी किया गया है। क्रमागत हिन्दू-धर्म के साथ नवागन्तुक बौद्धधर्म का अन्तर दिखाते हुए नाटककार ने यह समस्या उठाई है—निवृत्तिधर्म के ऊपर प्रवृत्ति-धर्म का निरूपण किया है। समस्या का निरूपण करने में लेखक ने उपयुक्त तर्कों की सहायता ली है और साथ ही नाटक के कथा-विकास के साथ उसे संबद्ध रखा है। उनकी यह विशेषता उल्लेखनीय है, परन्तु यह प्रश्न फिर भी रह जाता है कि नाटककार ने समस्या का निरूपण करते हुए इतिहास की कहाँ तक रक्षा की है। हिन्दू-धर्म की ह्रासोन्मुख रूढ़ियों के साथ बौद्धधर्म के विकासोन्मुख तत्त्व का चित्रण भी ऐतिहासिक यथार्थ के लिए आवश्यक था, परन्तु इस ओर लेखक ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया है।

सेठ गोविन्ददास

आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों में सेठ गोविन्ददास का प्रमुख स्थान है। सेठ जी राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रियता से भाग लेते रहे हैं और कई बार जेल जा चुके हैं। वहाँ अवकाश के क्षणों में १५-७० नाटक तथा अनेक एकांकियों की रचना की है। उनके अनेक नाटकों का सफलतापूर्वक अभिनय हुआ है, कुछ के फिल्म भी बने हैं। × उन्होंने नाट्यकला का विशेष रूप से अध्ययन किया है तथा स्वय अभिनय भी किया है। नाट्यकला पर एक गवेषणा-पूर्ण निबन्ध भी लिखा है जो "नाट्यकला मीमासा" के नाम से प्रकाशित हुआ है और बहुत लोकप्रिय हुआ है। कालक्रम के अनुसार आपका नाटक-साहित्य इस प्रकार रखा जा सकता है :—

पूरे नाटक :—"हर्ष" (१६३५) प्रकाश (१६३५) कर्त्तव्य (पूर्वार्ध) १६३५ ; कर्त्तव्य उत्तरार्ध (१६३५) सेवा पथ (१६४०) कुलीनता (१६४०) विकास (१६४१) शशिगुप्त (१६४२) दुःख क्यों (१६४६) कर्ण (१६४६) महत्त्व किसे ? (१६४७) बड़ा पापी कौन ? (१६४८) दलित कुसुम (१६४६) पतित सुमन (१६४६) हिंसा और अहिंसा (१६४६) सतोष कहाँ ? (१६५०) पाकिस्तान (१६५०) त्याग या ग्रहण (१६५०) नवरस (१६५०) सिद्धान्त स्वातत्र्य (१६५०) राम से गांधी , शेरशाह , भूदान-यज्ञ (१६५४)

एकांकी नाटक सग्रह . (१) स्पर्द्धा (२) सप्तरश्मि (३) पचभूत (४) अष्टदत्त (५) एकादशी (६) चतुष्पथ (चार मौनोड्रामा का सग्रह) +

विषय वस्तु के अनुसार वर्गीकरण करने पर इनमें कई प्रकार की कोटियाँ है जैसे—

× "धुआधार" और "दलित कुसुम" के फिल्म बन चुके हैं।

+ सेठ जी के एकांकी नाटकों की विस्तृत आलोचना के लिए देखिए प्रो० रामचरण महेन्द्र कृत "हिन्दी एकांकी और एकांकीकार" मूल्य १॥।) प्रकाशक "सरस्वती सवाद कार्यालय, मोतीकटरा, आगरा।

पौराणिक नैतिक नाटक :—१—(कर्त्तव्य पूर्वार्ध) २—कर्त्तव्य (उत्तरार्ध) कर्ण

ऐतिहासिक नाटक :—१—हर्ष २—शशिगुप्त ३—कुलीनता

सामाजिक नाटक :—१—प्रकाश २—सिद्धान्त स्वातन्त्र्य ३—दलित। ४—बड़ा पापी कौन ? ५—सेवापथ ; ६—दुःखी क्यों ७—महत्त्व किसे ? भूदान यज्ञ।

दार्शनिक नाटक :—१—विकास २—नवरस

सेठ जी ने अपने नाटकों के विषय तथा समस्याएँ प्रायः सभी क्षेत्रों से लिए हैं। एक आलोचक * का कथन है कि नये पाश्चात्य विचारों और भावों के बलवान् प्रवाह में पड़कर अंश ग्राह्य और क्या दर्शनीय है, इसका विवेक न कर कच्ची बुद्धि के लोग जो अति की ओर बहे जाते हैं, उनको बहुत कुछ शिक्षा भी इन नाटकों में मिलेगी। आपको ईश्वर ने इस कार्य के लिए असाधारण-स्फूर्ति, आशु-कविता और ललित-हास्य आदि रसों को पहिचानने की विवेकनी बुद्धि तथा उन रसों का नाटकों में उद्भावन करने की विशेष शक्ति दी है। इनसे हिन्दी साहित्य की परिष्कृत अच्छी सम्पत्ति में वृद्धि होगी। दिल्ली में आपके रचित "दलित कुसुम" नाटक का अभिनय नहीं भुलाया जा सकता। दुष्ट पापियों के दुराचारों का बहुत सच्चा चित्रण है।

वास्तव में सेठ जी का व्यापक अनुभव, गहन ज्ञान और अद्भुत लेखन शक्ति का परिचय उनके नाटकों में मिलता है। उन्होंने हमारे इतिहास का तो बड़ा अच्छा अध्ययन किया ही है ; आजकल के समाज का भी बड़ी बारीकी से निरीक्षण किया है। उनके नाटक "प्रौढ़ विचार और कल्पना की सहायता के कारण नाट्यकला के बड़े अच्छे नमूने हैं।" +

"प्रसाद" के पश्चात् हिन्दी नाटकों में सेठ गोविन्ददास जी की देन सर्वाधिक है। प्रसाद के बाद जो नाटककार हिन्दी में आये, उन्हें नाट्यकला के विषय में कोई महत्त्वपूर्ण ज्ञान न था, प्राचीन अर्वाचीन नाट्यशास्त्रों का उन्होंने गहन अध्ययन न किया था। उन्हें अपनी नाट्यकला को परिष्कृत करने का अवसर भी प्राप्त न हुआ था। हिन्दी में प्रथम बार आधुनिक साहित्यिक गद्य के माध्यम से सेठ जी का "हर्ष" (१९३५) में प्रकाशित हुआ था। सहज

* डा० भगवानदास एम० ए०, डी० लिट्।

+ देखिए श्री रत्नकुमारी जी द्वारा रचित "सेठ गोविन्ददास के नाटक" पृष्ठ ३

स्वभाविकता, रंगमंच के नियमों का पालन और परिष्कृत गद्य की निजी विशेषताएँ लेकर सेठ जी ने नए प्रकार के पाश्चात्य टेकनीक से प्रभावित यथार्थवादी नाटकों की नींव रखी है। उन्होंने चरित्र चित्रण की दृष्टि से विशेष सफलता प्राप्त की है। उनके पात्र सप्राण हैं, अपनी मनोदशा और अन्तर्व्यथाएँ प्रकट करते हैं और हमारे हृदय में अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ जाते हैं। इनकी गद्य में साहित्यिकता के गुण हैं। यद्यपि ये गद्य में हैं, तथापि इनमें साहित्यिक और मार्मिक भाव यत्र तत्र भरे पड़े हैं। प्रसाद की भाँति अनेक सूक्तियाँ, उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ, रूपक तथा अर्थालंकार भरे पड़े हैं। छोटे २ वाक्यों की रचना इस कौशल से की गई है कि वे स्वतः मन में अटक जाते हैं और हमें गद्यकाव्य जैसा आनन्द आता है।

"इनकी साहित्यिकता के अलावा इनका बड़ा गुण हम यह समझते हैं कि इन नाटकों का रंगमंच पर भी जीवन हो सकता है। इनकी अपील वाचनालय तक ही सीमित नहीं है। सफल अभिनय के लिए नाटक में गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन की विशेष आवश्यकता है। सेठ जी के कथानक चलमान होते हैं और उनका कथोपकथन तरल और स्वभाविक। उनके अनेक दृश्य स्मृति पर पत्थर की लकीर से खिंच जाते हैं।" ×

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक श्री शान्तिप्रिय जी द्विवेदी लिखते हैं:—"सेठ जी किस युग की आत्मा लेकर साहित्य में आये हैं, यह उनके "हर्ष" और "कर्त्तव्य" नामक नाटकों से प्रगट है। प्रसाद की भाँति ही उनके साहित्य की भी आत्मा पुराकालीन है, किन्तु प्रसाद जी वर्तमान से अतीत की ओर लौटते चले गये और सेठ जी अतीत से वर्तमान की ओर। इस दिशा में सेठजी और प्रेमचन्द जी सहयात्री हैं। कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचन्द जी ने अपने समय का जो संसार दिया, एकांकियों और बड़े नाटकों में वही संसार सेठ जी ने भी दिया।

समाज के सभी वर्गों, सभी समस्याओं, सभी आन्दोलनों के चित्र दोनों की कृतियों में हैं, किन्तु प्रेमचन्द जी और सेठ जी में अन्तर है—प्रेमचन्द जी थे मुख्यतः समाज-सुधारक, सेठ जी हैं मुख्यत सांस्कृतिक-उपासक।

हिन्दी साहित्य के कुछ प्रमुख अंगों के प्रमुख कलाकार हमारे सामने इस प्रकार आते हैं—कहानी और उपन्यासकार प्रेमचन्द, काव्यकार में मैथिली-शरण गुप्त, नाटककार सेठ गोविन्ददास। इन साहित्यकारों ने अपनी अपनी

× प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०

दिशा में साहित्य का नेतृत्व किया है। प्रसाद जी ने उच्चकोटि के शिक्षितों के लिए अपने नाटकों में मानसिक आहार लेकर आये ; किन्तु जनता इससे लाभ न उठा सकी······भारतेन्दु के बाद सेठजी ने यही सत्प्रयत्न किया है। जिस प्रकार भारतेन्दु से आगे के नाटककार "प्रसाद" तो थे, उसी प्रकार प्रसाद के आगे के नाटककार सेठजी हैं। इस दिशा में प्रसाद जी विगत स्तम्भ थे, तो सेठ जी नवीन प्रौढ स्तम्भ हैं। प्रसाद जी तथा सेठ जी दोनों आर्य संस्कृति पर निर्भर आधुनिक साहित्यकार हैं। अन्तर यह है कि सेठ जी ने प्रसाद जी की गहन और रंगमंच की अपूर्णता का परिहार किया है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों के द्वारा अतीत इतिहास को देखा था, सेठ जी ने मुख्यतः वर्तमान जीवन को देखा है। एकाध पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक तो उनके साहित्यिक प्रयासों के मंगलाचरण हैं। इसके आगे उनका क्षेत्र आज का प्रतिदिन दूर-दूर तक फैलता हुआ भारतीय समाज और उसका बहुमुखी जीवन है। सन् १६२० से अब तक के २० वर्षों के जीवन में जनता के बीच आकर उन्होंने बहुत कुछ देखा, सुना, और समझा है—नाना पात्र, नाना चरित्र। इतने अनुभवों के कारण उनके आदर्शवादी हृदय को यथार्थवादी भी हो जाना पड़ा है।

जिस प्रकार उनके कथानकों का क्षेत्र विस्तृत है, उसी प्रकार उनका नाट्य-कला का क्षेत्र भी। उन्होंने अपने नाटकों में अनेक टेकनिकों का प्रयोग किया है। हिन्दी कविता में कला के नये नये प्रयोग प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी द्वारा आ चुके थे; कहानियों में भी प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के बाद नये २ युवकों द्वारा आरहे हैं, नाटकों में अब सेठ जी द्वारा आरहे हैं।"

डा० नगेन्द्र ने सेठ जी के नाटकों में पाये जाने वाले तीन तत्त्वों—व्यवहारिक आदर्शवाद, संघर्ष और वैभव का वातावरण पर जोर दिया है।* उनके अनुसार सेठ जी की महत्ता इसलिए है कि "उन्होंने अनेक समस्या-नाटकों की रचना की है। इन नाटकों के पीछे सेठ जी का व्यक्तित्व और सेठ जी के पीछे विगत युग का अभिजात वर्ग है···· ··प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण के लिए आदर्श चाहता है और सेठ जी को यह आदर्श युग-पुरुष गांधी की नीति में मिला है। उन्होंने तीन तत्त्वों को लेकर नाटक रचना की है—१—व्यवहारिक आदर्शवाद, जो उनका दृष्टिकोण बन चुका है २—संघर्ष, जो उन्हें माता पिता और परिवार के विरुद्ध करना पड़ा था ३—वैभव का वातावरण, जिसके वे

---

* देखिए डा० नगेन्द्र कृत "आधुनिक हिन्दी नाटक"

भाग रहे हैं। ये तीनों बातें सहज रूप में समस्या नाटक के अनुकूल पड़ीं और यही माध्यम उन्होंने चुन लिया।"

सेठ जी के विवेच्य विषय तथा समस्याएँ क्या हैं ! इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र लिखते हैं, "सार्वजनिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण सेठ जी इस जीवन की समस्याओं को अच्छी तरह समझते हैं। एसेम्बली में उन्हें उनके विवेचन और समाधान करने का सक्रिय अवसर भी मिला है, इसलिए इनके नाटकों में हमें पिछले युग के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की बुद्धि पर सुथरी आलोचना मिलती है। इन नाटकों के सघर्ष पर लेखक के अपने जीवन के सघर्ष का गहरा प्रभाव है। लेखक को जिस सघर्ष में से होकर गुजरना पड़ा है, वही प्रायः इन नाटकों का सघर्ष है" 'सेठ जी ने अपनी आँखों से चारों ओर ऐश्वर्य की जगमगाहट देखी है, अतएव उनके नाटकों की पृष्ठभूमि में वैभव के चित्र होना स्वाभाविक है। वैभव से झलमलाते हुए दृश्य जिनमें रूप रग के साथ सूक्ष्म चित्रण भी है, इन नाटकों में सर्वत्र मिलते हैं।"

प्रो० नलिन जी के अनुसार सेठजी के नाटकों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:—१—उन्होंने अपने नाटकों में समाज और व्यक्ति की समस्याएँ (जैसे अविवाहित लड़की की सन्तान की समाज में स्थिति जैसा "कर्ण" में है, कुलीनता का पाखण्ड दुरभिमान और आडम्बर, रगेसियार नेता, धूर्तों की पाप लीला आदि) ली हैं, पर वे बहुत हल्की हैं। २—मनोवैज्ञानिक समस्याएँ वे नहीं ले सके हैं और न व्यक्ति को ही उन्होंने अपने नाटकों में प्रमुख रूप से लिया है। ३—कथानक और चरित्र सभी कालों और क्षेत्रों से चुने हैं। उनके द्वारा चित्रित राम और कृष्ण के चरित्र मानवता के अश हैं। सामाजिक और राष्ट्रीय नाटकों के सभी पात्र आधुनिक जीवन में साधारणतया पाये जाते हैं, सभी पात्र समाज के उच्च, नीच या मध्यम वर्ग से चुने गए हैं। उनमें भी कहीं-कहीं आदर्शवाद की झलक मिलेगी। उनके चरित्र सप्राण हैं।"*

उपरोक्त मतों का निष्कर्ष यह है कि सेठ जी हिन्दी के श्रेष्ठतम मौलिक नाटककार हैं। वर्तमान राजनीति, समाज, और जीवन की नाना समस्याएँ अपने नाटकों में सफलता से चित्रित कर रहे हैं। सामाजिक नाटक आपका क्षेत्र है। व्यवहारिक आदर्शवाद आपका उद्देश्य है। पौराणिक नाटकों में भी आपने मानवतावादी दृष्टिकोण सामने रखा है।

---

* देखिए प्रो० जयनाथ नलिन एम० ए० कृत "हिन्दी के नाटककार" पृ० २००–२१२ तक

तंत्र (Technique) की दृष्टि से भी सेठ जी ने नवीन प्रयोग किए हैं। वे किसी विशेष विचार को लेकर नाटक की आधारशिला स्थापित करते हैं। कहीं-कहीं यह विचार न होकर जीवन की एक समस्या बन जाता है। "दुःख क्यों"; "महत्त्व किसे"; "बड़ा पापी कौन" तीनों वर्तमान जीवन की नाना समस्याओं पर आधारित हैं। प्रमुख विचार की उत्पत्ति के पश्चात उस विचार के विकास के लिए संघर्ष (Conflict) होता है। इनके नाटकों में दोनों प्रकार—वाह्य तथा आन्तरिक का संघर्ष पाया जाता है। वाह्य संघर्ष किसी एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति का अथवा किसी एक व्यक्ति के साथ समाज या राष्ट्र का अथवा पुरुषवर्ग के साथ स्त्री वर्ग का होना है। आन्तरिक संघर्ष एक ही व्यक्ति के हृदय का संघर्ष है। "शाप और वर"; "प्रलय और सृष्टि" आदि मोनोड्रामों में आन्तरिक संघर्षों के मनोवैज्ञानिक चित्र खिंचे गये हैं। वैषम्य का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग है। सेठ जी के नाटकों में यह संघर्ष एक भाव का दूसरे भाव तक का होता है और प्रतिक्षण इसमें परिवर्तन होता है। कथानकों में औत्सुक्य; विकास में कौतूहल और जिज्ञासा की प्रधानता रखते हैं। उनमें पर्याप्त मौलिकता और रोचकता है। हास्यरस का प्रयोग कम है और सर्वत्र एक गम्भीरता मिलती है।" सेठ जी की शैली व्याख्यात्मक है, व्यंग्यात्मक नहीं। ×

सेठ जी के शब्दों में सफल नाटक के लक्षण इस प्रकार हैं, "जिस नाटक में जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र संघर्ष होगा, जितनी संगठित एवं मनोरंजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र चित्रण होगा और जितनी स्वभाविक कृति एवं कथोपकथन होंगे, वह उतना ही उत्तम तथा सफल होगा।" इसी आदर्श का प्रयोग उन्होंने अपने नाटकों में रखा है। इनकी सफलता यह है कि सभी अंगों में एक दूसरे की सम्बद्धता है जिससे सारे नाटक पर एकता का वायुमंडल छाया रहता है।

सेठ जी ने अभिनेयता का सदैव ध्यान रखा है। आपके नाटकों का सविधान रंगमंचीय है। दृश्यों की व्यवस्था, पात्रों की वेशभूषा, प्रवेश प्रस्थान पर विशेष ध्यान रखा गया है। अधिकांश पात्रों की भाषा वही है जो पात्र वय, स्थिति और शिक्षा के अनुसार बोल सकते हैं। हिन्दू मुसलमानों के परस्पर सम्भाषण में हिन्दू पात्रों से सरल हिन्दी और उर्दू पात्रों से सरल उर्दू का प्रयोग कराया गया है।

× देखिए डा० नगेन्द्र कृत "आधुनिक हिन्दी नाटक"

१—कर्त्तव्य (पौराणिक नाटक)—सेठ जी ने इस नाटक के मुख्य भाव कर्त्तव्य पालन को दृष्टि में रख कर दो पात्र चुने हैं—पहला राम और द्वितीय कृष्ण। वैष्णव सम्प्रदाय के आराध्य देव रामचन्द्र का समग्र जीवन घटना सकुल परिस्थितियों में प्रवाहित होकर अन्त में वेदना, असम्पूर्णता और हाहाकार की विभीषिका में किस प्रकार समाप्त हुआ एव भगवतावतार कृष्णचन्द्र का जीवन व्रज की गोपिकाओं के अमर और निश्छल प्रेम के अश्रुओं तथा मधुर सहवास से परिपालित होकर महाभारत के भीषण द्वन्द्व तथा अनेक अन्य द्वन्द्वों के बीच से अन्त में परितोष तथा सुखैश्वर्य के अन्तिम श्वांस से किस प्रकार समाप्त हुआ है, यह कथानक नाटककार गोविन्ददास की लेखनी ने सफलता पूर्वक इस नाटक में अंकित कर दिया है। राम की सीता और कृष्ण की राधा के मानव चरित्र राम और कृष्ण के देव चरित्रों का निर्माण करते हैं। मानव जीवन के कर्त्तव्य पालन की गति की परणति राम को दुख और कष्ण को सुख देकर होती है।

सेठ जी ने कथानकों में नवीनता उत्पन्न की है। दोनों चरित्रों की कार्य करने की भावनाएँ और कर्त्तव्य करने की प्रणाली में विभिन्नता है। "दोनों की भावनाएँ और उन भावनाओं के अनुसार कर्त्तव्य करने की प्रणालियाँ एक दूसरे के ठीक विरुद्ध हैं। राम की भावनाओं तथा कर्त्तव्य पालन में झिझक है, इसलिए उन्हें अपने कर्त्तव्य पालन में, वह पालन हर दृष्टि से महान् होते हुए भी, पूर्ण दुख प्राप्त नहीं होता। कृष्ण की भावनाओं में किसी प्रकार की झिझक नहीं है। वे अपने कर्त्तव्यों का निशक होकर पालन करते हैं। उन्हें अपने कर्त्तव्य पालन में पूर्ण सुख है। इस नाटक में सेठ जी ने इस प्रकार की घटनाओं को खोजकर निकाला है जो यद्यपि समान परिस्थिति की घटनाएँ कहीं जा सकती हैं, परन्तु समान परिस्थिति में 'ये दोनों की कृतियों की भावनाएँ एक दूसरे से ठीक विपरीत हैं।" × इसमें कर्त्तव्य विकास की दो भूमियाँ दिखाई गई हैं। नाटककार के विवेचनानुसार मर्यादा पालन प्रथम भूमि है, जो पूर्वाङ्क में राम द्वारा पूर्णता को पहुँचती है। लोकहित की व्यापक दृष्टि से आवश्यकतानुसार नियम और मर्य्यादा का उल्लंघन उसके आगे की भूमि है जो नाटक के उत्तरार्द्ध में श्रीकृष्ण ने अपने चरित्र द्वारा—जैसे, जरासंध के सामने लड़ाई का मैदान छोड़कर भागना प्रदर्शित की है। वास्तव में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो अलग अलग नाटक हैं, पर सेठ जी ने अपने कौशल से कर्त्तव्य विकास की सुन्दर उद्-

× देखिए श्री रत्नकुमारी कृत "सेठ गोविन्ददास के नाटक" पृ० १०

भावना द्वारा दोनों के बीच पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। यह भी
एक प्रकार का कौशल है।

२—हर्ष (ऐतिहासिक नाटक)—जैसा नाम से ही स्पष्ट है, इस नाटक
में हर्ष तथा उसके राज्यकाल की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्थाओं
का दिग्दर्शन कराया गया है। वह युग धर्मान्धता की ज्वाला से धाँय धाँय जल
रहा था। सनातन तथा बौद्ध दोनों धर्मों के अनुयायी पारस्परिक द्वेष में दग्ध
हो रहे थे। शैव और बौद्ध एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे। राजनैतिक क्षेत्र में
सम्राटों और साम्राज्यों का महत्त्व था। हर्ष के वर्धन वंश का उत्थान हो रहा
था और गुप्त वंश का पतन हो चुका था। हर्ष के प्रतिद्वन्द्वी गुप्त वंशी शशांक
नरेन्द्रगुप्त थे। हर्ष सब धर्मों का एकीकरण कर एक सत्य की घोषणा करना
चाहते थे जिसे शैव और बौद्ध दोनों नापसन्द करते थे। सम्राट् ने अपनी
विधवा बहिन राज्यश्री को साम्राज्ञी बनाकर स्त्रियों के प्रति आदर श्रद्धा और
समानाधिकार के विचार को भी सुदृढ किया था, पर जन समाज को यह व्यव-
हार पसन्द न था। बौद्ध धर्म को आश्रय देने के कारण शशांक नरेन्द्र गुप्त और
आदित्यसेन विद्रोही होकर उनके प्राणों के प्यासे हो गए थे। इस कठिन समय
में माधव गुप्त नामक हर्ष के एक मित्र ने सहायता दी—आदि आदि परिस्थि-
तियाँ इस नाटक में चित्रित की गई हैं। श्री प्रेमचन्द जी ने इसके सम्बन्ध में
लिखा है :—

नाटककार ने हर्ष को आदर्श प्रजा पालक, अहिंसा व्रतधारी, पक्का-धर्म
परायण चित्रित किया है। हर्ष का चरित्र एक महान् ट्रेजेडी है, जो कितने
महान् सांस्कृतिक और राजनैतिक उद्देश्यों का स्वप्न देखता हुआ राजश्री को
साम्राज्ञी बनाता है, स्वयं उसका माडलिक बनता है पर भारत को एक राष्ट्र,
एक चक्रवर्ती के अन्तर्गत देखने की उसकी अभिलाषा निष्फल होती है और
उसका सारा जीवन राजाओं के विद्रोहों को दमन करने में व्यतीत हो जाता
है। अन्तिम दृश्य जिसमें माधवगुप्त ने अपने पुत्र आदित्यसेन के प्राणदंड की
अनुमति माँगी है और आदित्यसेन की माता ने पुत्र के प्राणों की भिक्षा,
बड़ा ही मर्मस्पर्शी है।" इस नाटक की एक विशेषता यह है कि प्राचीन वायु-
मंडल बड़ी उत्तमता से उपस्थित किया गया है। आर्य संस्कृति की झलक सामने
आ जाती है। परिस्थितियों का द्वन्द्व सुन्दर हुआ है।

३. प्रकाश (सामाजिक नाटक)—सेठजी का तीसरा सामाजिक नाटक
"प्रकाश" है, जो आधुनिक समाज और जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित है।
इसमें आजकल का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ है। सन् १९३४ के राजनैतिक वायु-

मण्डल के प्रभाव के कारण इसके निवासियों के विचारों में बड़ा परिवर्तन हो गया है। इस वायुमण्डल ने वस्तुतः मूक जनता की स्वतन्त्रता पूर्वक अपने हृदय की वेदना सुनाने का साहस प्रदान किया है। इस परिस्थिति को लेकर सेठजी ने "प्रकाश" नामक सामाजिक नाटक की रचना की है। प्रकाश, तारा नामक एक परित्यक्ता, बहिष्कृता, निर्वासिता और सताई हुई जननी का पुत्र है। जब तारा ऐश्वर्य के प्रासाद से गाँव के अभागे और दुखी जीवन में फेंक दी गई तब उसने उस साधन विहीन गाँव में अपनी आँखों के प्रकाश का परिपालन किया। किस प्रकार सामाजिक व्यावहारिकता से अनभिज्ञ प्रकाश, नगर में आकर अपनी मा के साथ रह कर मूक जनता का हृदय सम्राट बन कर नगर के धनी कपटी मायावियों के जाल को छिन्नभिन्न करने में समर्थ हुआ और किस प्रकार उसकी अदम्य प्रचेष्टा निस्वार्थ त्याग और देवों जैसे चरित्र पर आकृष्ट होकर मनोरमा ने अज्ञात रूप से उससे प्रेम करके उसके चरणों में अपने जीवन का अर्घ्य चढ़ाया—इस कथानक को लेकर सेठजी ने आजकल का वातावरण उपस्थित किया है। सर्वत्र रोचकता बनाये रखी है। वर्तमान राजनैतिक एव सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्र मिलता है जिसमें स्वार्थी मिनिस्टर और रंगे सियार काउंसिल के मेम्बर भी हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए जनता की कोई परवाह नहीं करते। समस्याओं का हल वही है जो भारत की परिस्थिति और राष्ट्र के अनुकूल हैं। भारतीय समाज का अत्यधिक सजीव और स्वाभाविक चित्रण है।

इन तीन नाटकों से सेठजी के व्यक्तित्व की भिन्न-भिन्न दिशाओं का ज्ञान हो सकता है। उनके एकाकी, मानोड्रामा नवीनतम प्रयोग हैं।×सेठजी के नाटक अँग्रेजी, मराठी और गुजराती में अनुवादित हो रहे हैं। उनमें नाना कथाएँ, चित्र, आदर्श और पात्र हैं। उनके नाटकों की लोकप्रियता निरन्तर बढ रही है। डा० बाबूराम सक्सेना के शब्दों में "सेठजी के नाटकों में पर्याप्त मौलिकता है और है पर्याप्त रोचकता। हिन्दी नाटक ससार के लिए तो यह बिल्कुल नयी सामग्री है।"

×सेठजी की एकाकी कला पर प्रो० महेन्द्र की "हिन्दी एकाकी और एकाकीकार" विस्तृत लेख पढ़िये।

श्री उदयशंकर भट्ट

श्री उदयशंकर भट्ट की नाटकीय प्रतिभा विविध शैलियों एवं विषयों के नाटक लिखने में स्पष्ट हुई है। जहाँ उनमें विषयों की विविधता है, वहाँ शैलियों की भी नवीनता है। उनके नाटकों में अतीत के उज्ज्वल रूपों का मार्मिक चित्रण है, तो आधुनिक जीवन और नवीन समाज की भी जीती जागती तस्वीरें हैं। उनके नाटकों को विषय की दृष्टि से विभिन्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

१. पौराणिक-नैतिक नाटक—इस वर्ग में हम भट्टजी के "सगर विजय" "अम्बा"; "मत्स्यगधा"; "मेघदूत"; विक्रमोर्वशी; कालिदास, द्रौण, अश्वत्थामा आदि रख सकते हैं।

२. ऐतिहासिक-आदर्शवादी नाटक—इसमें "विक्रमादित्य"; "दाहर अथवा सिंध पतन"; शक विजय; मुक्तिपथ आदि रख सकते हैं।

३. सामाजिक राजनैतिक—इस वर्ग में "कमला", "क्रान्तिकारी", "नया समाज'; "अन्तहीन अन्त" आदि यथार्थवादी नाटक रखे जा सकते हैं।

४. सामाजिक एकांकी—ये ६० के लगभग हैं जिनके "अभिनव एकांकी" "स्त्री का हृदय"; "समस्या का अन्त"; "धूमशिखा"; "पर्दे के पीछे"; "आदिम युग" आदि सग्रह प्रकाशित हुए हैं।

५. रेडियो एकांकी—"एकला चलो रे!" "मदन दहन"; "शशिलेखा" "सौदामिनी" आदि विभिन्न शैलियों के नाटक।

भट्टजी के नाटकों का क्षेत्र सृष्टिकर्ता, सृष्टि के समान विस्तृत, विविध और व्यापक है। उनकी दृष्टि दूर दूर तक गई है। पौराणिक धार्मिक समस्याओं से लेकर सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति तक की सम्पूर्ण समस्याएँ उनके नाटकों में फैली हुई हैं। एक ओर जहाँ वे प्रसाद जी की भाँति भारतीय सस्कृति अतीत इतिहास के उदात्त चरित्र, पौराणिक गाथाएँ गम्भीर शैली में अभिव्यक्त कर सके हैं, वहाँ दूसरी ओर वर्तमान जीवन की दैनिक सामाजिक राजनैतिक समस्याएँ भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सके हैं। सभी में उनकी को

बड़ी विशेषता दीख पड़ती है, वह है उनका काव्यात्मक दृष्टिकोण यद्यपि उनके सामाजिक एकांकियों में बौद्धिकता और विचार प्रधानता आ गई है। बाह्य-संसार के संघर्षों की अपेक्षा उन्होंने मनुष्य के अन्तर्जगत् को हलचलों को विशेष कर नाटकों में चित्रित किया है।

भट्टजी की प्रतिभा ऐतिहासिक नाटकों में निखरी है। इनकी मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता है पर कथावस्तु ऐतिहासिक है। इनका उद्देश्य राष्ट्र के उद्धार के लिए उत्तम आदर्शों को प्रस्तुत करना है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में आनेवाली त्रुटियों की ओर भी संकेत किया गया है। जिन तत्वों की राष्ट्र को विशेष आवश्यकता है, उनकी ओर भी संकेत हैं। इनकी कथावस्तु बड़ी कुशलता से निर्मित है। भट्टजी ने इतिहास की वे ही घटनाएँ चुनी हैं, जिनमें नवीनता और मार्मिकता है या जिनमें नाटकीयता का उचित समावेश हो सकता है और जिन पर अभी किसी ने नाटक का निर्माण नहीं किया है, या जिनका सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय महत्व है। "विक्रमादित्य" चरित्रप्रधान आदर्शवादी नाटक है जिसका नायक वीर, क्षमाशील, दयालु और परोपकारी है। उसने अनेक शत्रुओं को पराजित किया है तथा आवश्यकता पड़ने पर वह नृसिंह की सहायता को चल देता है। इस नाटक की चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा युद्ध क्षेत्र में असाधारण बलिदान देने को प्रस्तुत रहने वाली आदर्श वीरांगनाएँ हैं।

"दाहर" में नाटककार की दृष्टि देश में व्याप्त वर्ण-भेद, प्रान्त-भेद तथा अकर्मण्यता पर गई है। "हमारी जातीयता में धर्मवाद को निकम्मी थोथी रूढ़ियों ने हमें विवेक से गिरा दिया है, मनुष्यत्व से खींच कर दासता भ्रातृ-विद्रोह, विवेक शून्यता के गढ़े में ले जाकर पीस दिया है।" इसी समस्या को लेकर नाटक चलता है। इसमें इतिहास के तथ्यों का सर्वाधिक निर्वाह हुआ है। प्रमुख पात्र प्रायः ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इसमें कासिम के हृदय तथा मस्तिष्क का अच्छा चित्र उपस्थित किया गया है। सूर्य और परमाल के दो नारी चरित्र ऐसे हैं जिनका नमूना शायद संसार में खोजने पर भी न मिलेगा। फिर दाहर का शौर्य स्वयं एक पात्र बन कर उभरता है। बौद्धों की निर्बलता, विश्वासघात—इन सब बातों से कथानक अत्यन्त संघर्षमय हो उठा है।

"दाहर" की टेकनीक कुछ निर्बल है। डा० नगेन्द्र इस सम्बन्ध में लिखते हैं :—

"दाहर के कथा-विकास में नाटकोचित उतार-चढ़ाव और विकास का अभाव है। अतएव उसमें संघर्ष दो महान् तत्त्वों के बीच तन नहीं सका है। उसके दृश्यों में इसीलिए बल नहीं आ सका है। नाटक में ऐसी परिस्थितियाँ

विरल नहीं हैं परन्तु नाटककार उनमें प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर पाया............ टेकनीक की दृष्टि से यह नाटक असफल है। उसका रङ्गमंच से सीधा सम्बन्ध नहीं है दूसरे संस्कृत का प्रभाव उसे मुक्त नहीं कर सका है और विदेश की कला को भी वे सम्यक् रूप में ग्रहण नहीं कर सके हैं। ट्रैजिक वातावरण का सृजन करने के लिए उन्होंने रोमांटिक ड्रामा के अत्यन्त स्थूल प्रयोग काम में लाये हैं।"

"शक विजय" में अवन्ति के राजा गंधर्वसेन द्वारा सरस्वती साध्वी का अपहरण और उसके भाई जैन आचार्य कालक द्वारा शकों का भारत में लाया जाना चित्रित है। इसमें सब पात्र एक दूसरे से भिन्न हैं। कालकाचार्य का चित्र सफल बन पड़ा है। यह नाटक लेखक की पूर्णता का परिचायक है। सभी पात्र जीवन और जीवट के से हैं, मानों विभिन्न ज्वाला के सौंदर्य पुंज हों। सरस्वती और सखी के संवाद इतने कवित्वमय हैं कि कविता का आनन्द आता है। फिर गर्भ मित्र के साथ सरस्वती का आलाप पौरुष की पराकाष्ठा है।

"मुक्तिपथ" का कथानक गौतम का ऐतिहासिक विकास है। यह नाटक मूलतः रोमांटिक और विचार प्रधान है। बुद्ध भारतीय इतिहास के उज्ज्वल रत्न हैं। उनके चरित्र उनकी दृढ़ता, आत्म-ज्ञान की खोज के लिए उनका त्याग भारत के लिए ही नहीं विश्व के लिए भी अनुकरणीय है। भट्ट जी ने बुद्ध के जीवन को कथानक का आधार बना कर सिद्धार्थ के चरित्र में विचार प्रवणता और गंभीरता का समावेश किया है।

डा० सत्येन्द्र इस नाटक के विषय में लिखते हैं, "नाटककार ने अपनी कुशल लेखनी से आत्म केन्द्रित सिद्धार्थ को असाधारण विशेषता से मंडित दिखाया है कि उसका स्वरूप उसके आदर्श के समक्ष विद्रूप हो गया है"......" कहीं वह विभेदों में आस्था रखता है। भगवान् बुद्ध का चरित्र विभेद की पराकाष्ठा है। उसके समक्ष समस्त मानव समूह-हीन क्षीण हो गया है। जहाँ तक विविध भाव-समूहों का सम्बन्ध है नाटक में संकुचित स्वार्थ के त्याग ने मानव कल्याण में प्रवृत्त होने, दया प्रेम धर्माकरण अपने आप में प्रकाश होकर आत्म-शक्ति के द्वारा कल्याण लाभ करने चित्त को संयत रखने आदि के भाव बिखरे पड़े हैं।"

इस नाटक में धार्मिक संघर्ष का भी चित्रण है। बुद्ध मानव के लिए उत्कृष्ट धर्म की खोज करने निकलते हैं और अन्ततः बौद्ध धर्म तथा दर्शन की प्रतीति होती है। सामाजिक समानता का प्रारंभ होता है। इस नाटक की भित्ति

आत्म-बोधक के साथ-साथ ससार के दुःखों का पूर्ण निरीक्षण है। वाक्य सयत, सवाद चुस्त और चुभते हुए, सुलझे भाव, गहन दार्शनिकता और सम्पूर्ण मानव समाज के प्रति सदय दृष्टि, सभी नाटक के चमत्कारी अग हैं। सिद्धार्थ के चरित्र का सौंदर्य इस कलात्मक ढग से प्रस्तुत किया गया है कि सम्पूर्ण नाटक जैसे उससे प्रतिबिम्बित हो उठा है।

पौराणिक नाटकों में भट्टजी का "सगर विजय" नैतिक उद्देश्य से परिपूर्ण है। इस नाटक में नीति सत्य और धर्म की विजय तथा प्राचीन गौरव की भावना जाग्रत करना प्रमुख है। दुदम नामक अत्याचारी व्यक्ति ने बाहु को राज्यच्युत कर स्वय राजसिंहासन ग्रहण किया। बाहु अपनी गर्भवती पत्नी विशालाक्षी को लेकर भागे। उनकी दूसरी रानी बर्हि अपना सौत के लिए प्रतिहिंसा से भरी हुई थी। वह दोनों को जगल में विष दे देती है। बाहु की मृत्यु हो जाती है, किन्तु विशालाक्षी बच जाती है। वशिष्ठ उसे अपने आश्रम में रखते हैं। वहाँ सगर का पालन होता है। बर्हि उसे मरवाना चाहती है, किन्तु वह बच रहता है। दुर्दम उसे क़ैद कर लेता है, किन्तु बर्हि जो उसे मार डालना चाहती थी आ कर मुक्त करती है। अन्त में दुर्दम क़ैद होता है। सगर को राज्य प्राप्त होता है। नाटक में बर्हि का चरित्र बहुत रोचक है, कवित्व सर्वत्र मिलता है। बर्हि का चरित्र क्रोध, प्रतिहिंसा, क्रूरता, भयानकता का चरित्र है। इससे सहज ही सिद्ध हो जाता है कि अपनापन खोकर एक नारी कितनी भीषण एव क्रूर बन सकती है। उसके प्रतिकूल विशालाक्षी दया मूर्ति और करुणा की मानों साकार प्रतिमा है। शौर्य का चरित्र भी स्वय दिव्य हो उठा है। फिर राजकुमार सगर और ऋषियों के पुत्रों का सवाद नाटक में प्रसहन जैसा आनन्द देता है। चरित्र-चित्रण भट्टजी के नाटकों का प्रधान लक्ष्य है। उन्होंने इस नाटक के चरित्र चित्रण में सघर्ष को जितना सुन्दर रूप दिया है वैसा कदाचित अन्यत्र दुर्लभ है।

सामाजिक नाटकों में "अन्तहीन अन्त" उल्लेखनीय है। आजकल अनाथालयों में बच्चों को रखकर लोग कितना स्वार्थ सिद्ध करते हैं; किस प्रकार भ्रान्ति में पड़ कर लोग वास्तविकता की हत्या कर डालते हैं और छोटे मनुष्य में ऊपर उठने के कितने निहित बीज होते हैं और समय पाकर व्यक्ति कितना उदार कितना महान् बन जाता है—यही इस नाटक में चित्रित किया गया है। इस नाटक की एक विशेषता यह है कि जैसे चरित्र के स्तर पर स्तर खुलते जाते हैं।

"कमला" में भट्टजी ने ज़मीदारों के अह और उनके द्वारा प्रजा पर किए गए अत्याचारों को आधार मान कर नारी के प्रति पुरुष के अत्याचार को मार्मिक ढग से अभिव्यक्त किया है। इस नाटक में आज के समाज की अनेक समस्याओं का कलात्मक चित्रण है—जैसे ग्रामसुधार, साक्षरता आन्दोलन, गांधीवाद का प्रभाव, बेमेल विवाह, ज़मीदारों की कमज़ोरियाँ, सरकार की खुशामद, वंश का अभिमान, व्यक्तित्व की महत्ता, स्त्रियों पर अपनी अधिकार भावना जमाये रहना इत्यादि।

कमला देवनारायण की बुढापे में विवाहित पत्नी है। वह नए विचारों और उदार वृत्ति की स्त्री है। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती है पर पति द्वारा सदेह की शिकार होती है। उन्हें यह भ्रम हो जाता है कि शशिकुमार कमला का अवैद्य पुत्र है, जो देवनारारण के बड़े लड़के से हुआ है। कमला नदी में डूब कर आत्म हत्या कर लेती है। अन्त में शशिकुमार भी मर जाना है। कमला की मृत्यु से ही जमीदार के पाप का दण्ड मिलता है। इस नाटक का कथानक ऐसा है कि समाज की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर प्रकाश पड़ जाता है। वर्तमान जीवन के निकट होने से यह हमें विशेष रूप से प्रभावित करता है।

भट्ट जी की विशेष देन हैं उनके भाव नाट्य। "विश्वामित्र", मत्स्यगधा, राधा; कालिदास, विक्रमोर्वशी, मेघदूत इत्यादि। ये सदा हिन्दी नाट्य साहित्य में आकर्षण का केन्द्र रहे हैं और भट्ट जी की ख्याति का मुख्य आधार हैं। जहाँ काव्य कला की उच्चतम सीमाएँ इनमें पहुँची हैं, वहाँ मानव जीवन के चिरन्तन सत्यों, मानव जीवन की अनुभूतियों, आन्तरिक सघर्षों की कलात्मक विवेचना भी है। वासना मानव चैतन्य से तो प्रबुद्ध सघर्ष करती है, उसका कलात्मक निरूपण और चित्रण बड़ी मार्मिकता से हुआ है। यद्यपि व्यक्तित्व पुराने हैं, उनमें मानवोचित भावनाएँ आकांक्षाएँ और कमज़ोरियाँ हैं। वे आधुनिक जीवन की समस्याओं पर भी प्रकाश डालते हैं। मत्स्यगधा के लिए अनन्त यौवन का वरदान शाप सिद्ध होता है, "राधा" में प्रेम में दिव्य भक्ति का सम्मिश्रण है। डा० सत्येन्द्र के शब्दों में, "उन्होंने समाज के रूढि विरोधी व्यक्तित्वों को पुराण से अवतारण कर भारतीय समाज को उसका मुख उनके दर्पण में ही दिखा दिया है। कवित्व के साथ बौद्धिक योग इन भाव नाट्यों में विलक्षण हुआ है। हिन्दी का ऐसा कौन कवि है जो इस प्रक मानव जीवन के सत्ता सम्बन्धी मूल तत्त्वों का उद्घाटन और प्रतिपादन प्रखर मूर्त रूप में कर सका है।"

एकाकी नाटक के क्षेत्र में यह भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। इनमें आपने पौराणिक, सास्कृतिक, प्रागैतिहासिक काल से लेकर वैदिक युग के सामाजिक आचार विचार मर्य्यादाओं का चित्रण करते हुए आधुनिक सामाजिक और सामयिक समस्याओं को विवेचन का विषय बनाया है। एक ओर जहाँ आपने तर्कपूर्ण अनुसधान के बल पर काल के बन्धन तोड़ कर मनुष्य तोड़ कर मनुष्य सृष्टि के आदि पुरुष स्वायम्भुव मनु और शतरूपा द्वारा मनुष्य जाति की आदिम अवस्था की झाकी दी है, वहाँ दूसरी ओर आज के समाज तथा जीवन की सभी समस्याओं पर यथार्थवादी समस्या एकांकी लिखे हैं।

शैलियाँ भी भिन्न-भिन्न और नवीन रूपों की हैं—प्रहसन, सकेतवादी प्रतीक रूपक, गीति रूपक, रेडियो रूपक, झलकियाँ, गम्भीर एकांकी। आपके प्रहसन एक स्पष्ट व्यग्य होकर समग्र समाज की रूढ़ियों, दुराग्रहों, मूढ़ताओं तथा दुर्बलताओं पर व्यग्य करते हैं।

"आदिम युग" के एकाकी सर्वथा नूतन प्रयोग हैं। इनमें प्राणी विज्ञान, समाज विज्ञान, वनस्पत्ति विज्ञान, पुराण, वेद, आदिमानव 'शास्त्र का समन्वय करते हुए एक सर्वथा नूतन शैली और विषय के एकाकियों की सृष्टि की गई है। मनु युग सम्बन्धी बिखरी हुई समस्त सामग्री को परिष्कृत करने का प्रथम प्रयास है।

"दुर्गा" , "नेता" ; "उन्नीस सो पैंतीस", "वर निर्वाचन", "सेठ लाभ चन्द" आदि प्रारम्भिक एकाकियों में यथार्थवाद के दर्शन होते हैं, जो "स्त्री का हृदय" के सग्रह में और भी स्पष्ट हो जाता है। "समस्या का अन्त" और "धूमशिखा" में कौतूहल और जिज्ञासा का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। "धूम शिखा" के नाटकों में भट्ट जी ने अनुभूति के द्वार को खटखटा कर निकलने की चेष्टा की है। वे अपने पात्रों के रूप में कुछ नए अभीष्ट चित्र उपस्थित कर सके हैं। "पर्दे के पीछे" नवीनतम सग्रह है जिसमें सामाजिक जीवन के सच्चे जीते जागते मर्मस्पर्शी चित्र हैं।

भट्ट जी की एकाकी कला में सर्वत्र मौलिकता है, अन्धानुकरण नहीं है। उन्होंने स्वतन्त्र रूप से जीवन और समाज को देखा है और अपने ही ढग से उसकी आलोचनाएँ की हैं। आपने हिन्दी एकाकी को पाश्चात्य एकाकियों के समकक्ष ला खड़ा किया है।

भट्ट जी पौराणिक एव ऐतिहासिक विषयों से विशेषत. प्रभावित हुए हैं। उनके नाटक जीवन का प्रारम्भ पौराणिक नाटकों से हुआ था। बड़े नाटक प्रायः चरित्र प्रधान हैं। और चरित्रों के चुनाव में वे किसी वैशिष्ट्य का ध्यान

रखते हैं। आपकी एक विशेषता तत्कालीन वातावरण और पृष्ठभूमि की इतिहास सम्मत सत्यता और गहनता है। "दाहर" में आपने जिस परिस्थिति की विवशता का चित्रण किया है, जिन मौलिक कमजोरियों पर प्रकाश डाला है वे उनके भारतीय इतिहास के गूढ़ अध्ययन और तीखी अन्तर्दृष्टि के सूचक हैं। आपने चित्रित किया है कि शत्रु ने कैसे उन दुर्बलताओं से लाभ उठाया। आपके "दाहर" और "विक्रमादित्य" वियोगान्त शैली से प्रभावित प्रथम सफल और प्रभावशाली मौलिक नाटक हैं।

यों ऐतिहासिक नाटकों के मुख्य पात्रों को तो लचकाया नहीं जा सकता, किन्तु भट्ट जी ने गौण पात्रों को अपनी रुचि का विषय बनाया है। प्रमुख पात्रों को गन्तव्य लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए उन्होंने काल्पनिक पात्रों का निर्माण किया है। ऐतिहासिक पात्रों को तोड़ने मरोड़ने का बहुत कम प्रयत्न है। "अम्बा" और "सगर विजय" में यदि तोड़ा भी है, तो बड़ी कुशलता से उसे मुख्य घटनाओं से ऐसा जोड़ दिया है कि जोड़ मालूम तक नहीं होता।

आपके नाटकों में प्रायः दो प्रकार के पात्र रहते हैं १—हलके व्यक्ति जिनकी उक्तियाँ केवल ऊपरी स्तर तक ही रहती हैं। वे जीवन के ऊपरी हिस्से में ही रहते हैं २—वे पात्र जो जीवन समाज जगत की गहराई में प्रविष्ट होते हैं। पात्रों की गहराई जीवन की सवेदना से उत्पन्न होकर वातावरण की गहनता में वृद्धि करती है। भट्टजी के पात्र अपनी समस्याएँ अपने भीतर से लेकर चलते हैं, जिनमें आपकी दृष्टि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर अधिक रहती है। सामाजिक नाटकों में तर्क की प्रधानता है और परिस्थिति को कुशलता से निर्मित करते हैं। वे पात्रों के साथ चलती हैं। एकांकी नाटक प्रायः एक मूल समस्या पर आधारित किए गए हैं। पहले समस्या को ले लेते हैं, फिर उसमें उसी प्रकार के पात्र एव परिस्थितियाँ फिट करते हैं। पहले नाटकों में "स्वगत" का प्रयोग नहीं था, किन्तु अब मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करने में "स्वगत" का प्रयोग है। उनकी दृष्टि मूल भाव पर रहती है। वे टेकनीक को वहीं तक उपयोगी मानते हैं, जहाँ तक वह मूल भाव या समस्या उद्दीप्त करे और नाटक में चित्रित जीवन की स्वभाविकता और यथार्थता को विनष्ट न करे।

वे टेकनीक के कृत्रिम बन्धन में नहीं बंधे हैं। प्रारम्भिक नाटकों में संगीत और पद्य अधिक रहते थे किन्तु अब आप इन्हें आवश्यक नहीं मानते हैं। जब उन्हें गाना देना ही होता है, तो वे गीति नाट्य लिखते हैं। भट्ट जी के गीति-नाट्य हिन्दी में मौलिक हैं और काव्य की दृष्टि से अपना महत्त्वपूर्ण **स्थान** रखते

हैं। आजकल भट्टजी की प्रवृत्ति सामाजिक नाटकों, विशेषतः एकांकी नाटकों की ओर है। "क्रान्तिकारी"; "नया समाज", तथा "पर्दे के पीछे" (एकांकी संग्रह) हमारे समाज के राजनैतिक सांस्कृतिक और आधुनिक आदर्शों के व्यंग्य मिश्रित चित्र हैं, कुछ तीखे तो कुछ मीठे।

भट्टजी की भाषा शैली पर कविता का प्रभाव है। स्वभावतः कवि होने के कारण यत्र-तत्र कवित्व के मधुर प्रयोग हैं। पात्रों में भी कवित्व है। "मत्स्यगंधा" में छायावाद और प्रतीकवाद के सुन्दर उदाहरण हैं। इनकी रचनाओं में नाटकत्व है तथा हिन्दी नाटक की समृद्धि में बहुत बड़ा हाथ है। मनुष्य के अन्तर्जगत् की जिस उथल पुथल का चित्रण किया गया है, और उससे जो अभिनय सौन्दर्य मिलता है, वह हिन्दी के कम नाटकों में है।

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी अपने शब्द चित्रों, कहानियों तथा उपन्यासों की शैली के कारण तो प्रसिद्ध प्राप्त कर ही चुके हैं, नाटकों एकांकी तथा रूपक के क्षेत्र में भी अमर रचनाओं की सृष्टि कर चुके हैं। उनके नाटक भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा के कीर्ति स्तम्भ हैं। इस क्षेत्र में आपकी रचनाएँ इस प्रकार हैं:—

नाटक:—१—अम्बपाली, २—तथागत, ३—विजेता।

एकांकी:—१—सिंहल विजय, २—संघमित्रा, ३—नेत्रदान, ४—नया समाज।

रेडियो रूपक:—१—अमर ज्योति, २—शकुन्तला, ३—रामराज्य, ५—गाँव का देवता, ५—सीता की माँ।

बेनीपुरी जी के नाटकों की विशेषताएँ क्या हैं? जहाँ तक विषय चयन का सम्बन्ध है, बेनीपुरी जी ने अपने नाटकों के कथानक भारत की प्राचीन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक घटनाओं और महापुरुषों से चुने हैं। भारतीय हिन्दू युग, विशेषतः अशोक, बुद्ध, आदि से उन्हें विशेष प्रेरणा मिली है। तथागत बुद्ध उनके कई नाटकों में आते हैं। (जैसे अम्बपाली, तथागत आदि में) और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नाटक की घटनाओं और विचारधारा को प्रभावित करते हैं। "तथागत" बुद्ध के जीवन पर आधारित विस्तृत रेडियो नाटक हैं, तो "अम्बपाली" में सब पात्र बुद्ध की वाणी और विचारधारा से प्रभावित हैं और अन्ततः अम्बपाली, मधूलिका और पुष्पगधा भिक्षुणियाँ होकर नाटक का अन्त होता है। इसी प्रकार "सिंहल विजय"; "संघमित्रा" और "नेत्रदान" सम्राट् अशोक की सन्तानों से सम्बन्धित नाटक हैं। बौद्ध युग के स्वर्ण युग को नाटककार ने अपनी कल्पना के बल पर सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। "विजेता" चन्द्रगुप्त मौर्य के व्यक्तित्व को साकार रूप में चित्रित करता है।

पौराणिक नाटकों में "सीता की माँ" और "शकुन्तला"; मुख्य हैं। इनका आधार पौराणिक है और उद्देश्य नैतिक। सर्वत्र बेनीपुरी की वह सूक्ष्म सूझ, व्यक्ति और समाज के प्रश्नों के नवीन हल और अतीत गौरव का चित्रण है।

आधुनिक जीवन और राजनीति से सम्बन्धित नाटकों में "अमर ज्योति"; नया समाज, राम राज्य और "गाँव का देवता" आदि प्रमुख हैं। इनमें युग के नवीनतम प्रश्नों पर एक समाजवादी विचारक के दृष्टिकोण से विचार हुआ है। संक्षेप में बेनीपुरी जी की नाटकीय प्रवृत्तियाँ तीन श्रेणियों में विभक्त हो सकती हैं। १—ऐतिहासिक नाटक, २—पौराणिक नाटक और ३—सामाजिक नाटक। सर्वत्र प्रकटीकरण और विश्लेषण की नवीनता है। इनमें भी ऐतिहासिक नाटकों में बेनीपुरी की नाट्यकला का सौंदर्य विशेष रूप से देखा जा सकता है। आपके प्रसिद्ध नाटक "अम्बपाली" के विषय में विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

ऐतिहासिक नाटक "अम्बपाली"

"अम्बपाली" बेनीपुरी जी सर्वोत्कृष्ट कलाकृति है। अम्बपाली बौद्ध-युग की एक प्रसिद्ध नर्तकी थी, जिसे आधार लेकर साहित्य में अनेक काव्य, कहानी उपन्यासों की रचना हुई है। इसी इतिहास प्रसिद्ध प्रमुख पात्री को आधार मान कर एक कथानक का निर्माण किया गया है। नाटककार ने क्यों यह पात्री चुनी है, उसका कारण उन्हीं के मुख से सुनिये—

"अपने लिए पात्र के रूप अम्बपाली का चुनाव भी मेरे लिए स्वभाविक ही था। जहाँ अम्बपाली का जन्म हुआ था, उसी भूमि ने मुझे उत्पन्न किया है और एक पुरातत्वज्ञ ने तो यहाँ तक कह डाला है कि वृजियों के आठ कुलों में शायद मेरा वंश है जिसकी संघ शक्ति ने वैशाली को महानता और अमरता प्रदान की थी।"

अम्बपाली के चरित्र को बेनीपुरी जी ने एक इतिहासकार की अपेक्षा एक स्वतन्त्र कल्पना प्रिय साहित्यकार के नेत्रों से देखा है। हो सकता है इतिहास से मिलाने पर इसमें इतिहास की सत्यता न मिले किन्तु अम्बपाली का जो रूप अभिव्यक्त किया गया है वह सुन्दर आकर्षक और सुरुचि पूर्ण है। उनका ध्येय अम्बपाली और वैशाली की आत्मा का चित्रण रहा है। एक ओर नाटककार वैशाली की राज नर्तकी के व्यक्तित्व, सौन्दर्य चातुर्य वाक् कौशल को प्रकट करता है, तो दूसरी ओर वैशाली के संघ राज्य की विशेषताएँ स्पष्ट करता है। कहते हैं आज कल जहाँ मुजफ्फर का ज़िला है, वहाँ उत्तर विहार में तब वृजियों का प्रजातन्त्र था, जो संघ राज्य कहलाता था। प्रजातन्त्र के प्रश्नों पर विचार करते करते नाटककार आधुनिक राजनीति पर, प्रजातन्त्र की सफलता असफलता पर भी प्रकाश डालता है।

(१)

"अम्बपाली" का कथानक साधारण है। अम्बपाली सुन्दर किशोरी है। एक दिन ज्योतिषी जी ने उसके हाथ की रेखाएँ देखकर कहा था कि "तेरे चरणों पर हज़ार हजार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।" यही बात सत्य होती है। वह अरुणध्वज के साथ वैशाली के उत्सव में जाती है। वहाँ वह वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी वैशाली की राजनर्तकी चुनी जाती है। अम्बपाली का जीवन बदल जाता है। पुरानी स्मृतियाँ उसे सताती हैं, इधर नवीन उत्तरदायित्व का भार उस पर आ गया है। वह इस पद को उच्च आदर्श की पूर्ति नहीं मानती। इस पर पुष्पगधा उसे वृज्जिसंघ के आदर्श इस प्रकार प्रकट करती है :—

"अपनी सभी व्यक्तिगत रुचियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं को ठुकराकर, लात मार कर अपने आप को संघ के प्रत्येक सदस्य के मनोरंजन के लिए अर्पित कर देना—अपने व्यक्ति को समष्टि के लिए विलीन कर देना—इससे बढ़ कर आदर्श की उच्चता एक सुन्दर नारी के लिए क्या हो सकती है? वृज्जि-संघ की कुमारियाँ ही इतनी बड़ी साधना कर सकती हैं।"

तीसरे अंक में मगध के सम्राट् अजातशत्रु का अम्बपाली की ओर आकृष्ट होना; वृज्जियों पर चढाई, वृज्जि संघ मे फूट उनकी पराजय, अजातशत्रु का अम्ब-पाली को हस्तगत करने का प्रयत्न, भगवान बुद्ध के प्रभाव से अम्बर का वैराग्य, अजातशत्रु के मन में पराजय की भावना और अन्ततः अम्बपाली का भिक्षुणी हो जाना चित्रित है।

सम्पूर्ण कथानक अम्बपाली के चरित्र के इर्द गिर्द घूमता है। नाटककार ने उस राजनर्तकी के मन तथा जीवन के नाना मनोभाव बड़ी मार्मिकता से चित्रित किए हैं। नाटक का मुख्य रस शृंगार है पर करुण रस की धारा भी वेग से प्रभावित हुई है। शृंगार प्रधान होते हुए भी कहीं भी अश्लीलता नहीं आने दी है। अम्बपाली बड़ी शिष्टता से बातें करती है। शृंगार रस प्रधान दृश्यों में प्रकृति की रमणीयता के बड़े आकर्षक स्वरूप हैं। प्रकृति वर्णन करते समय बेनीपुरी जी का कवि हृदय बह निकला है। एक मादक मोहक प्रसंग देखिए। शब्दों से मानों चित्र ही खींच डाला है—

"एक विस्तृत सघन अमराई—आम की डाल-डाल मंजरियों से लदी, झुकी, भौंरे जिन पर गुंजार कर रहे, वासन्ती हवा जिनसे खेलवाड़ कर रही—आम के पेड़ों के बीच की जमीन में सरसों की फूली हुई क्यारियाँ—वृक्षों से लिपटी लताओं से जहाँ तहाँ बन गई कुंजों। सूरज की किरणों से अभी सोना

नहीं गया है—मजरियों, पत्तों, फूलों पर ओस की बूँदें उनके स्पर्श से चमचम कर रहीं—चिड़ियों की चहचह में दूर से सुनाई पड़ने वाली कोयल की कुहू...।"

(२)

"अम्बपाली" में एक मूल विचारधारा का प्रतिपादन है—सघशक्ति। सघ क्या है ? कैसा होना चाहिए ? सघ की सफलता का क्या रहस्य है ? इन सभी प्रश्नों का प्रतिपादन इस नाटक में स्थान-स्थान पर हुआ है। एक प्रकार देखा जाय तो यह संघ की सफलता असफलता का ही चित्र है। नाटककार ने विस्तार से सघ के हर पहलू पर विचार किया है।

कथानक का सम्बन्ध उत्तर बिहार में वृज्जियों के स्थापित प्रजातन्त्र से है। यह प्रजातन्त्र सघ राज्य कहलाता था। अम्बपाली एक वृज्जि कुमारी है। "अम्बपाली" के रसभरे कथानक में आधार रूप से इस प्रजातन्त्र को कसौटी पर कसा गया है वैशाली में एक भव्य सघागार था जिसमें उनके सघ के ७७०७ राजा एकत्र होकर समय-समय पर परामर्श और निर्णय करते थे। सघागार के नौबतखाने से तरह-तरह के बाजे बज कर दिग् दिगन्त को मुखरित करते थे। सघागार पर आठ गुम्बद थे, जो वृज्जियों के आठ कुलों के सूचक थे राजनर्तकी, वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का चुनाव उनका एक उत्सव था। वृज्जिसघ अपनी सफलता के लिए प्रख्यात था। वह नगर और ग्राम में कोई भेद नहीं करता था। वहाँ प्रजातन्त्र की पूरी समता थी। अपने गुण से हर नागरिक राजा हो सकता था, अपने रूप से हर सुन्दरी राजनर्तकी के गौरव को प्राप्त कर सकती थी।

राजनर्तकी का पद अश्लीलत्व से युक्त नहीं, वह एक गौरवशाली पद था। पुष्पगध अम्बपाली को राजनर्तकी के गौरव का स्मरण दिलाती हुई कहती है—

"वृज्जिसंघ की कुमारियाँ मर्यादा का उल्लघन नहीं करतीं। जिस दिन हमारी कुमारियाँ मर्यादा छोड़ देंगी, संघ की नींव हिल जायगी। नारियाँ राष्ट्र की इमारत की नींव की ईंट होती हैं।"

"हमारा यह सघ जम्बू द्वीप भर में इसलिए प्रसिद्ध है कि यहाँ की नारी और नर अपने व्यक्तित्व को सघ पर समर्पित कर देते हैं। सघ जिसके जो जिम्मेदारी देता है, वह उसे निभाता है। सघ की आज्ञा पर हमारा सैनिक समर क्षेत्र में अपनी गर्दन हँसते-हँसते कटा डालते हैं, हमारे नाविक अपनी पूरी जिन्दगी बजड़ों पर ही बिताकर नागरिक जीवन के सुख ऐश्वर्य से दूर रह कर हमारे सघ को नाना तरह के धन रत्न से विभूषित करते हैं...।"

वृज्जियों का यह संघबल बढ़ता रहता है और जब तक उनमें एकता समता और संघ पर बलिदान की भावना रहती है, तब तक कोई उन्हें नहीं हरा पाता। उनकी परिषद् बार-बार बैठती है और उसमें भरपूर उपस्थिति होती है। वृज्जि इकट्ठे उठते बैठते हैं और इकट्ठे अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यों की पूर्ति करते हैं। वे बाक़ायदा कानून बनाए बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और न बने हुए नियमों का उच्छेद करते हैं। वृद्ध बुजुर्गों का सम्मान करते हैं। वृज्जि अपनी कुमारियों और नारियों पर ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं करते हैं; अपने चैत्यों, मन्दिरों और समाधियों की रक्षा करते हैं; अर्हतों और तपस्वियों का आदर-सत्कार करते हैं। यही कारण है कि वे सपशक्ति का निरापद आनन्द लेते हैं। कोई उन्हें पराजित नहीं कर पाता। अजातशत्रु का महामन्त्री जब कुटिलता से वृज्जियों की एकता और निष्ठा तोड़ते हैं, तभी वे डरते हैं प्रजातन्त्र की सफनता किन सूत्रों पर आधारित है और किन निर्वलताओं के कारण उसका पतन होता है—यह इस नाटक में प्रत्यक्ष किया गया है।

(२)

"अम्बाली" एक रोमाटिक नाटक है जिसमें काव्य का सौन्दर्य भी निखरा है। कथोपकथन बड़े कल्पना प्रधान हैं। स्थान-स्थान पर मधुर बात-चीत की छटा है जिनमें प्रसून जैसी कोमलता और मधुरता है। यौवन का अल्हड़पन, मस्ती, शरारत, खेल तमाशे और नृत्य गीत आदि भावनाओं की तरंग पर तरंग उठ उमड़ रही है।

बेनीपुरी का भाषा पर असाधारण अधिकार है। जिस भाव को लिया है, उसी का चित्र-सा खींच दिया है। सरल सहज शब्दों का ही ऐसा प्रयोग है कि मन में कल्पना-मूर्ति सहज हो उठ आती है स्पष्ट और सर्वाङ्गीण, सुपुष्ट और सुविकसित। यौवन तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के दृश्य विशेष सुन्दर बन पड़े हैं।

भाषा सरल सजीव और सरस है। शब्द चयन सुन्दर है किन्तु कहीं-कहीं उर्दू और फारसी के शब्द भी आ गए हैं जो हलुवे में ककण जैसे खटकते हैं। जैसे आहिस्ता, फर्क, जिन्दगी, महसूस, मुखातिब, मजाल, परीशान, बर्दाश्त, गुलजार, खाक़, मिजाज़, नशा, हरारत रुख, जबरदस्ती आदि। तनिक से प्रयत्न से ऐसे शब्दों को हटाकर शैली को संस्कृत निष्ठ और सरस रखा जा सकता था। फिर भी सरस स्थल पर्याप्त मात्रा में हैं और पाठक को विमुग्ध कर लेते हैं। चार-पाँच सरस मर्मस्पर्शी गीतों से सरसता में अभिवृद्धि हुई है। बेनीपुरी

के कथोपकथन जानदार और जोरदार हैं, शैली के बाँकेपन के कारण प्रभाव तेजी से पड़ता है।

सीता की माँ (मौनोड्रामा)

इसके ५ दृश्यों में सीता की माँ द्वारा सीता जी के जन्म से लेकर बचपन, विवाह, वनगमन, नाना कठिनाइयों और अन्ततः पाताल प्रवेश की कथा चित्रित है। नाटककार ने अपनी कल्पना से सीता की माँ की कल्पना की है तथा उसके मन में उठने वाले नाना हाव-भावों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। सीता का जन्म धरती से क्यों कर सम्भव है? इसे आज के बुद्धिवादी नेत्रों से सत्यता का आवरण पहनाया गया है।

यह स्वोक्ति रूपक एक प्रकार का छाया नाटक है। पर्दे पर छाया मूर्तियाँ जगल के दृश्य, झोंपड़ी, छाया मूर्तियों में एक फटे वस्त्रों की उन्मत्त सी सीता की माँ का अभिनय करती है। यदि बाहर से कोई प्रवक्ता बोलता रहे और छाया मूर्ति का अभिनय करती रहे, तो सारा नाटक सुन्दरता से दिखाया जा सकता है।

इस रूपक में केवल एक ही पात्र बोलता है। अनन्य पात्रों के भाव और अभिनय इत्यादि भी वही अपनी वाणी की लचक से करता है। वार्तालाप भी स्वय ही करता है। वह पात्र है—सीता की माँ। सीता की माँ की स्थापना वेनीपुरी की कल्पना का एक नवीन प्रयोग है।

प्रथम दृश्य में सीता के जन्म की कथा है। १२ वर्ष तक देश में अकाल रहा, वर्षा; पेड़ पौधे सूख गए। गाँव में अन्न न मिला तो सीता की माँ जगल में भागी। पहले सूखे रूखे फल इत्यादि खाए फिर पत्तियाँ। वहीं किसी देवता के वरदान स्वरूप उसे एक चाँद सी बच्ची मिली। लेकिन भयकर अकाल में उसे दूध पिलाना भी एक समस्या हो गई तभी राजा जनक ने सोने के हल से पृथ्वी जोती। इधर यह स्त्री दोनों में लिपटी घास फूँस से ढकी अपनी पुत्री को हल के मार्ग में रख छुप गई धीरे-धीरे राजा का हल उधर आया और उन्हें सीता मिल गई। पृथ्वी का नाम उसे दिया गया। नाटककार का नवीन दृष्टिकोण सफल उतरा है। उसने एक पौराणिक तथ्य को बौद्धिक सत्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

द्वितीय दृश्य में जनकपुर की पष्पवाटिका में राम सीता मिलन और विवाह तृतीय दृश्य में वनगमन तथा वहाँ की कठिनाइयाँ, चौथे दृश्य में लका की अशोक वाटिका, पाँचवे में अयोध्या का प्रान्तर और अन्त में सीता का पृथ्वी में समा जाना वर्णित है।

सीता के चरित्र की विशेषताओं तथा जगत जननी पर समाज तथा लोकोपवाद का अत्याचार चित्रित है। सीता के प्रति अविश्वास अत्याचार और सतीत्व की परीक्षा आदि के चित्रण में राम को भी खरी-खरी सुनाई गई है—

"(राम) तुम निरपराधनी सीता पर दड पर दड बरसाते रहे और वह ऐसी कि तुम्हारे अपराधों पर पर्दा डालती रही। यदि वह वाल्मीकि ऋषि से सब बातें खोलकर कह दिये होती तो राम रामायण लिखी नहीं जाती और लिखी जाती, तो एक दूसरी ही तरह।"

यह रूपक नई-नई कल्पना और विचार धाराओं से परिपूर्ण है। जैसे एक स्थान पर कहा गया है कि राक्षसता को विनष्ट कर मानवता की प्रतिष्ठा करने के लिए ही सीता पधारी थी। अनेक स्थल काव्यमय हो गये हैं, जिन्हें पढकर गद्य काव्य का आनन्द आता है। छोटे-छोटे मार्मिक वाक्यों शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा सजीव वातावरण उपस्थित कर दिया गया है। यद्यपि इस रूपक में कहीं कहीं उर्दू शब्दों का प्रयोग है, किन्तु शब्दों की सजीवता में पाठक उनकी ओर ध्यान नहीं देता। शैली का बाँकापन, कल्पना की नवीनता और नई विचारधारा ने इस रूपक को सुन्दर और सुपाठ्य बना दिया है। बेनीपुरी की नाट्यकला में "अम्बपाली" और "सीता की माँ" सच्चे हीरे हैं।

श्री हरीकृष्ण "प्रेमी"

नाटककार प्रेमी की विशेषताएँ:—

हिन्दी नाटक साहित्य में सन् १९१५ से १९३३ तक का समय प्रसाद-युग कहा जा सकता है, जिसमें अतीतानुराग, स्वदेश प्रेम, भावुकता तथा नारी गौरव की भावना सर्वोपरि रही है। प्रसादोत्तर युग में हिन्दी नाटक-साहित्य में बौद्धिकता तथा समस्या-प्रधानता का समावेश होने लगा। इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक और समस्या प्रधान नाटक लिखे गये। ऐतिहासिक-धारा से नाटककारों में श्री हरिकृष्ण प्रेमी का शीर्ष स्थान है। कहना न होगा "प्रसाद के पश्चात् जो सफलता प्रेमी जी को ऐतिहासिक नाटकों में मिली है, वह सामूहिक रूप से किसी अन्य लेखक को नहीं। उनके ऐतिहासिक नाटक हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों से उद्भूत भावनाओं के चित्र तो हैं ही, साथ में वे उस आदर्शवादी परम्परा के भी प्रतिनिधि हैं जो भारत की सज्जनता आत्म-विस्तार और 'वसुधवै कुटुम्बक' की अनुगामिनी है।"×

"प्रेमी" जी ने अपने अधिकाश ऐतिहासिक नाटकों में राजस्थान के गौरव-मय, किन्तु पतनोन्मुख काल के दृश्य उपस्थित किए हैं। एक ओर उनमें राजपूतों की वीरता, अदम्य उत्साह और तेज का चित्रण है, तो दूसरी ओर उनकी राजनीतिक बुद्धिहीनता, व्यक्तिगत मानापमान भावना, क्षुद्र स्वार्थ और असत्य दर्प का भी आलेखन है। राजपूतों के पतन के विश्लेषण में कहे हुए उनके ये शब्द, "राष्ट्रीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बड़ी कमजोरी है"—इतिहास की एक कहानी मात्र नहीं, युग युग का चिरतन सत्य है। "प्रेमी" जी के नाटकों में एक ओर देश द्रोही भारतीयों के चित्र हैं, तो दूसरी ओर विश्वासपात्र और भारत भक्त विदेशियों के भी। इसीलिए तो "प्रसाद" की कार्नेलिया के समान उनके "राष्ट्र मन्दिर" एकाकी की नायिका मिस होम्स अँग्रेज होते हुए भी यह कह सकती है कि 'मैं हिन्दुस्तानी नहीं तो क्या!

× डा० सोमनाथ गुप्त : हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास।

अँग्रेज की बेटी हूँ, लेकिन मेरा जन्म हिन्दुस्तान में हुआ है। यह मेरी जन्म-भूमि है।" इसी प्रकार हिन्दू मुस्लिम समस्या के चित्रण में भी, अपने नाटकों के द्वारा "प्रेमी" जी यही सिद्ध करते प्रतीत होते हैं कि प्रत्येक हिन्दू भला नहीं होता और प्रत्येक मुसलमान बुरा नहीं होता। भले और बुरे दोनों और ही होते हैं। उनके 'मित्र' 'आहुति' और 'शपथ' यही कहानी कहते प्रतीत होते हैं। वस्तुतः हिन्दू और मुसलमान दोनों ओर से एक दूसरे की रक्षा के लिए आत्म बलिदान की सच्ची ऐतिहासिक कहानियों के नाटक प्रस्तुत करके भारत में साम्प्रदायिक वैषम्य और संघर्ष के उन दिनों में प्रेमी जी ने स्वय एक बड़ा ऐतिहासिक काम किया है। उनके नाटकों के कथानकों में कर्मवती का 'रक्षा बन्धन', 'शिवाजी' की 'साधना', वीर छत्रशाल का 'प्रतिशोध', हमीर चौहान की 'आहुति', दारा का 'स्वप्न भग', 'मित्र', रत्नसिंह और महबूब की मित्रता, कृष्ण का 'विषपान', विष्णुवर्धन की 'शपथ', हम्मीर के द्वारा चित्तौर का 'उद्धार' आदि इतिहास के ऐसे अमूल्य रत्न हैं, जिनको यदि प्रेमी जी रगमंच पर न लाते तो वे अतीत्त के खडहरों में दवे पड़े रहते। कहना न होगा प्रेमी जी का प्रत्येक नाटक उनके व्यक्तित्व का अन्तदर्शन है। उनमें उनके और उनके देश के पीड़ित प्राण बोले हैं। वे अतीत के आलोक में वर्तमान का दर्शन हैं, कल के प्रश्नों में आज का समाधान हैं।

पर "प्रेमी" जी का यह व्यक्तित्व जब उभर कर उनके पात्रों में, विशेषकर आदर्श पात्रों में आता है तो उन पात्रों में चारित्रिक विभिन्निना का अभाव होकर एक रसता आ जाती है। उनके पीछे नाटककार स्वयं बोलता-सा लगता है। इसलिए कुछ आलोचकों ने उन पर पुनरुक्ति दोष लगाया है। लेकिन यदि काव्य के प्रगाढ पडित और आचार्य केशव अनुदिन राम राम रटने को पुनरुक्ति दोष नहीं मानें तो 'प्रेमी' ही क्यों अपने आदर्शों की पुनरुक्ति को अपने नाटकों का दोष मानें?

यह आदर्शवादी चित्रण "प्रेमी" जी के नाटकों में तब एक दोष बन जाता है, जब वे पात्र की योग्यता देखे बिना ही उसे अति आदर्शवादी बना देते हैं। पर यह सब कुछ प्रेमी जी की उग्र राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिक एकता की आदर्शात्मक प्रवृत्ति का ही प्रभाव है। अन्यथा उनके आदर्श पात्रों के चरित्र चित्रण में अत्युक्ति भले ही हो, असंगति नहीं है।

आदर्श पात्रों के अतिरिक्त उनके नाटकों में खल पात्र और साधारण पात्रों की भी सृष्टि हुई है जिसने नाटकों में वहिर्संघर्ष की उद्भावना हुई है।

चरित्र चित्रण में "प्रेमी" जी का प्रमुख साधन कथोपकथन है, घटना, कार्य व्यापार आदि कम। पात्रों की उतरती चढ़ती भाव लहरियों पर कथोपकथन की नौका थिरकती चलती है। उनके कथोपकथन की भाषा में प्रसाद और ओज दोनों विद्यमान हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर उनकी भाषा भावानुकूल ही नहीं, देशकाल तथा पात्रानुकूल भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो "श्री हरिकृष्ण "प्रेमी" के कथोपकथन प्रसाद जी के कथोपकथनों से अधिक नाटकोपयुक्त हैं। उनमें प्रसगानुसार बातचीत का चलता स्वाभाविक ढग भी है और सर्व हृदय-ग्राह्य-पद्धति पर भाषा का मर्मव्यंजक अनूठापन भी।"‡

"प्रेमी" जी के नाटकों की अतिम किन्तु अन्यतम विशेषता उनके सुन्दर गीत हैं। यथासमय और यथास्थान मुखरित होने के साथ ही वे भावानुकूल और पात्रानुकूल भी हैं। परिस्थिति विशेष में वे एक तीव्रता और सवेदनशीलता लाने वाले हैं। नृत्यमय गीतों में तो गीत नाचता और नृत्य स्वय गाता सा लगता है। कवि प्रेमी की भावुकता, सरसता और तन्मयता उनके राशि राशि गीतों में मुखरित हो उठी है। वास्तव में "उनके गीतों में ऐसी गूज और मादकता है कि समाप्त होते ही एक सूनापन अनुभव होने लगता है।" +

प्रेमी जी के नाटकों की रगमचानुकूलता के विषय में कुछ कहना उनकी इस महत्ता को ही कम करना होगा। रगमच के अनुकूल नाटक लिखने वाले वे पहिले नाटककार हैं। यहाँ तक कि वर्त्तमान हिंदी रगमच के, जोकि अत्यन्त अपूर्ण एव अविकसित है। अपने नाटकों को अनुकूल बनाने के लिए उन्हें नाटककला की, स्वय अपने ही हाथों, कहीं कहीं हत्या भी करनी पड़ी है। पर रगमच की दृष्टि से उनमें एक त्रुटि, जो उन पर दिए गये निर्देशन के अनुभव से भी इन पक्तियों के लेखक को प्रतीत होती है, वह है कार्य व्यापार (Action) का अभाव।

प्रेमी जी के नाटकों पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वे सामयिक हैं, और इसलिए उनका मूल्य अस्थायी है। पर सामयिक होना एक बात है और अस्थायी होना दूसरी। प्रेमी स्वय इस विवेचन में कभी नहीं गये। एक बार दिल्ली की एक कवि गोष्ठी में बोलते हुए उन्होंने कहा था "लोगों का कहना है मेरी रचनाओं का स्थायी मूल्य नहीं है, पर मैं यह सब नहीं जानता। मेरे हृदय में जो आग थी, वह मैंने उगल कर रखदी है।" मेरी मान्यता है कि

‡ हिन्दी साहित्य का इतिहास।

+ श्री सत्यपाल विद्यालकार।

प्रेमी जी के नाटक अपनी समस्याओं में सामयिक किन्तु उनके समाधान में स्थायी हैं।

"प्रेमी" की सर्वश्रेष्ठ कृति "शपथ"

नाटककार प्रेमी जिनके १७ नाटक अब तक प्रकाश में आ चुके हैं, की नाट्यकला पर सक्षेप में विवेचन दिया जा चुका है, नीचे हम उनके एक नवीन नाटक 'शपथ' पर सक्षेप में आलोचनात्मक प्रकाश डालेंगे।

ऐतिहासिक आधार—

हूणों का आक्रमण और दशपुर (वर्तमान मदसौर मध्यभारत) के एक नायक विष्णुवर्धन द्वारा प्रतिरोध ही 'शपथ' के कथानक का मुख्य ऐतिहासिक केन्द्र बिन्दु है।

'शपथ' में आये हुए हूण सम्राट् तोरमाण और हूण युवराज मिहिर कुल के सम्बन्ध में बड़ा ऐतिहासिक प्रवाद और विवाद है। विद्वानों ने लगभग एक स्वर से हूणों को गुप्त साम्राज्य के पतन के एक अपरिहार्य कारण माना है। परन्तु उनका यह विश्वास केवल तोरमाण और मिहिरकुल को हूण नायक मान लेने पर आधारित है। यद्यपि यही मत साधारणतः प्रचलित भी है, पर उसके पक्ष में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। 'शपथ' के नाटककार ने तो उन्हें हूण ही माना है।

भारत में बाह्य आक्रमणों की एक धारा लगभग सन् ४६० ई० या इससे पूर्व आई जबकि स्कन्दगुप्त ने हूणों को पराजित किया। राजतरगिनी, शिलालेख और सिक्कों के अनुसार इन नवागन्तुक आक्रमणकारियों का नेता तोरमाण था। स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों को पराजित कर दिए जाने के पश्चात् हूणों और भारत के सम्बन्ध के विषय में, सर्वप्रथम सूचना हमें ५१८ ई० में उत्तरी 'वी' वंश की शासिका के द्वारा भेजे गए राजदूत सुगयुन के द्वारा प्राप्त होती है। उसके बाद दूसरा विवरण एक ग्रीक लेखक के समक्ष की पुस्तक (Christian to Pography जो ५३५ ई० में प्रारम्भ हुई पर ५४७ ई० में पूरी हुई) से मिलता है। जहाँ तक भारतीय सामग्री का प्रश्न है, महाराजाधिराज तोरमाण के शासनकाल के प्रथम वर्ष वाला ईरानी शिलालेख सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् ग्वालियर का एक शिलालेख (न० ६६) जो कि मिहिरकुल के शासन काल के १५ वें वर्ष का है, मिलता है। उसमें मिहिरकुल के पिता का नाम तो मिलता है पर उसके प्रथम दो अक्षर 'तोर' ही पढ़े जा सकते हैं, शेष

पूर्ण रूपेण मिट चुके हैं। उसे ही तोरमाण बना लिया गया है। एक दूसरा शिलालेख कुरु (पजाब) में इस सम्बन्ध में मिला है जिसमें राजाधिराज महाराजा तोरमाण-शाही जाउ (ब्ला) का उल्लेख हुआ है, जिसका कुछ विद्वान ईरानी शिलालेख से साम्य मानते हैं। परन्तु दूसरे उन्हें भिन्न मानते हैं।×पर आश्चर्य यह है कि इनमें से कोई भी शिलालेख उन्हें हूण नहीं मानते।

तोरमाण के सम्बन्ध में एक रोचक विवरण हमें एक जैन पुस्तक कुवलय माला (रचना काल ७०० शक सवत् अथवा ७७८ ई० स०) में भी मिलता है। ह्वैनसाग ने मिहिरकुल का विस्तृत वर्णन, प्राचीन नगरी शाकल (जो उसकी राजधानी थी) का वर्णन करते हुए दिया है। पर कुछ काल सम्बन्धी असगतियों के कारण ह्वैनसाग द्वारा मिहिरकुल के सम्बन्ध में दिए गए विवरण की विश्वसनीयता सदिग्ध हो जाता है।

'राजतरगिणी' में भी तोरमाण और मिहिरकुल सम्बन्धी विवरण आया है। परन्तु उसमें दिए गए इतिहास का इन दो हूण नायकों (तोरमाण और मिहिरकुल) की कथा से कोई मेल नहीं बैठता। भारतीय साहित्य में हूणों के सम्बन्ध में कहीं २ कुछ उल्लेख मिलता है। एक जैन लेखक सोमदेव (१० वीं शताब्दी) ने एक जनोक्ति की ओर निर्देश किया है कि एक हूण सम्राट ने चित्रकूट को विजित किया। सभवतः यहाँ सकेत मिहिरकुल की ओर है।

यशोधर्मन के मदसौर वाले शिलालेख में मिहिरकुल और हूणों दोनों का उल्लेख हुआ है, परन्तु इस ढग से कि दोनों में कोई सम्बन्ध लग सकने की अपेक्षा उनका निश्चित वैषम्य ही प्रकट होता है। इसी प्रकार तोरमाण और मिहिरकुल के सिक्के भी हमें उपलब्ध हैं, और ऐसे भी जिनमें केवल 'तोर' नाम ही आया है। यद्यपि उनमें ससनीद सम्राटों का अंधानुकरण ही प्रतीत होता है, परन्तु ऐसा कोई नहीं जिससे उन्हें हूण माना जा सके।

उपर्युक्त परिस्थिति में यह बात आश्चर्यजनक लग सकती है कि विद्वानों ने लगभग एक स्वर से हूणों को गुप्त साम्राज्य के पतन में एक अपरिहार्य कारण माना है। परन्तु उनका यह विश्वास केवल तोरमाण और मिहिरकुल को हूण नायक मान लेने पर आधारित है। यद्यपि साधारणतः यही मत प्रचलित भी है

× Bubbr उन्हें भिन्न मानते हैं, जबकि Sten konow, Cunnigham और V. A. का अनुकरण करते हुए एक मानते हैं।

पर उसके पक्ष में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। और कुछ लोगों की इस मान्यता को भी सहसा अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि तोरमाण एक कुशाण था, और हूणों से सम्बन्धित होने तथा हूण आक्रमणकारियों का नेतृत्व करने के कारण, उसे, विशेषकर भारत में हूण मान लिया गया। 'शपथ' के नाटककार ने भी उन्हें हूण माना है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कोसभस द्वारा वर्णित गोल्ल सम्राट का भी मिहिरगुल अथवा मिहिरकुल से साम्य मान लिया गया है। यह भ्रम संभवतः गोल्ल और मिहिरगुल में 'गल' के साम्य के कारण हो गया है, परन्तु इससे भी अधिक मिहिरकुल को हूण-नेता मान लेने से हुआ है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है बाह्य आक्रमणों की एक धारा लगभग सन् ४६० ई० या इससे पूर्व भारत में आई, जबकि स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित किया। हूणों की दूसरी धारा भारत में आने के पूर्व एक दो पीढ़ियाँ व्यतीत हो गई, और इसी नई दूसरी धारा का नेता था तोरमाण। वह मालवा तक बढ़ा चला आया था, परन्तु उसकी सफलता सम्भवतः सन् ५१० में भानुगुप्त द्वारा दी गई पराजय के कारण क्षणिक ही रह सकी।

कुछ समय के लिए हूण अभियान रुका, पर मिहिरकुल ने भी अपने पिता की महत्त्वाकांक्षा पाई थी। प्रारम्भ में उसे भी कम सफलता मिली, जैसा कि विदित है कि उसकी एक छत्रता को ग्वालियर में उसके शासन के १५ वें वर्ष में (५३० ई०) में स्वीकार किया गया था। पर जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है कि उसने सम्पूर्ण भारत को पद दलित कर लिया—कोसभस से भी उस समय हूण नायक को भारत सम्राट लिखा है। परन्तु हूणों के भाग्य में देर तक सफलता भोगना नहीं लिखा था, और मिहिरकुल का भाग्य निर्णय यशोधर्मन—विष्णुवर्धन (और नरसिंह गुप्त) के हाथों होना था।

मिहिरकुल पराजित हुआ, परन्तु उसका राज्य अथवा शक्ति अक्षुण्ण थी। यशोधर्मन (विष्णुवर्धन) के पतन के पश्चात्—जो कि कश्चित् पश्चात् ही होगया होगा—वह एक बार फिर उठ खड़ा हुआ। उस समय जो गुप्त सम्राट राज्यारोहित था वह सम्भवतः नरसिंह गुप्त बलादित्य था।* ह्वेनसांग ने अतनोगत्वा बलादित्य की मिहिरकुल पर विजय की कहानी लिखी है, पर, 'शपथ' में केवल मिहिरकुल और यशोधर्मन (विष्णुवर्धन) के संघर्ष को ही दिखाया गया है,

* श्री रामशंकर त्रिपाठी उस बलादित्य और नरसिंह गुप्त बलादित्य को एक नहीं मानते—दे० History of Ancient India P. 241.

बलादित्य से हुए संघर्ष को नाटककार ने छोड़ दिया है। विष्णुवर्धन को नायक मानकर चलने में संभवतः उसकी आवश्यकता भी नहीं थी।

'शपथ' के नायक विष्णुवर्धन के जीवन के विषय में इतिहास में विशेष सामग्री नहीं मिलती—संभवतः इसका कारण यह रहा हो कि वह किसी राज परम्परा में नहीं आता, वह तो जनसाधारण के बीच में से उस समय उठा, जब कि पंजाब, थानेसर और मालवा को गुप्त सम्राट, हूणों से न बचा सके और वहाँ की सारी प्रजा हूणों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी। और उस जन-विद्रोह का नेतृत्व किया जनेन्द्र विष्णुवर्धन ने।

अन्य ऐतिहासिक सामग्रियों में मालवा के मंदसौर नामक स्थान पर पाये गए एक स्तम्भ पर खुदे हुए (५३२ ई० के) आलेख में उस यशोधर्मन की प्रशस्ति मिलती है, जिसने "अपने राज्य की सीमाओं को ठुकराते हुए उन प्रदेशों को भी जीता जिन पर गुप्त सम्राटों का आधिपत्य नहीं था और न तो जहाँ राजाओं के मुकुटों को ध्वस्त करने वाली हूणों की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी।"* और लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गंगा से, स्पष्ट, हिमालय से लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशों के सामन्त उसके चरणों पर लौटते थे। मिहिरकुल ने भी, जिसने भगवान शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नहीं झुकाया, अपने मुकुट के पुष्पों द्वारा उसके युगल चरणों की अर्चना की।" ×

विन्सेन्ट स्मिथ का यह सिद्धान्त कि यशोधर्मन और बलादित्य ने हूण आक्रमणकारी का सामना करने के लिए एक सम्मिलित संगठित प्रयत्न किया, मौलिक हो सकता है, परन्तु वह केवल काल्पनिक मात्र है, और इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उससे अधिक सही यह प्रतीत होता है कि मिहिरकुल दो अवसरों पर खदेड़ा गया—मगध से बलादित्य के द्वारा और मध्यभारत में यशोधर्मन द्वारा। प्रेमी जी ने भी 'शपथ' में यही दूसरा दृष्टिकोण लिया है।

यशोधर्मन के वंश आदि के विषय में तो इसके अतिरिक्त और कुछ उल्लेख नहीं मिलता कि उसका उस राज वंश से कोई सम्बन्ध रहा था, जिसकी दीर्घ-शासक परम्परा की अन्तिम कड़ी बन्धुवर्मा था, जिसने कुमार गुप्त प्रथम [चंद्र-

---

* "ये मुक्ता गुप्तनाथैर्न सकल वसुधा क्रान्तिदृष्ट प्रतापैर्नाज्ञा
हूणाधिपानां क्षितिपति मुकुटा ध्यासिनी यान्प्रविष्टा।"

× "चूडा पुष्पोपहारैर्मिहिरकुल नृपेणार्चित पादयुगाम।"

गुप्त विक्रमादित्य का पुत्र, राज्यकाल (४१५-४५५ ई०)] के अधीन Fendatory chief के रूप में दशपुर को राजधानी बनाकर मालव प्रदेश पर (अथवा उसके कुछ भाग पर) राज्य किया। बधुवर्मा (बंधुवर्मन) और यशोधर्मन के बीच लगभग एक शताब्दी व्यतीत होगई और हम इस युग में उसके वश के इतिहास के विषय में अन्धकार में हैं। फिर एकाएक ५३० ई० के लगभग यशोधर्मन एक उल्का के समान राजनीतिक क्षितिज पर उदित होता है—पर दूर-दूर तक के साम्राज्य जीतकर और एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर अपने साम्राज्य के साथ सहसा उल्का के समान ही तिरोहित भी हो जाता है।

यशोधर्मन की सामरिक विजयों आदि के विषय में जो कुछ जानकारी मिलती है, वह प्रमुखतः केवल मंदसौर के दो स्तम्भों पर लिखित शिलालेख (नं० ७०) के द्वारा, जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है। लेकिन इस प्रकार की सामान्य और रीत्यानुगत प्रशस्तियाँ जो कि सस्कृत काव्य में तथा शाही प्रशस्तियों में सर्वजात हैं, जैसी की तैसी मानी नहीं जा सकतीं और उसी के आधार पर यशोधर्मन को उत्तर भारत का एक छत्र सम्राट मान लेना भी सभवतः युक्ति युक्त न होगा। परन्तु यह भी सही है कि यशोधर्मन के विषय में की गई यह सार्वजनिक घोषणा नितान्त निराधार नहीं हो सकती, और उसे एक महान विजेता मानने में कोई सन्देह नहीं हो सकता।×

मदसौर (दशपुर) और आसपास की भूमि का उसके साम्राज्य का केन्द्र होना, इस बात को सिद्ध करता है कि वह प्रथम देश को हूणों से मुक्त करके अधिकार में आया तथा विपुल ख्यातिवान हुआ। यहीं आकर यशोधर्मन की विक्रमादित्य उपाधि को लेकर इतिहासकारों में मत वैषम्य उत्पन्न हो गया है पर विस्तार भय से उस विवेचन में हम यहाँ नहीं जाएँगे।

वत्सभट्ट को प्रेमी जी ने विष्णुवर्धन का मित्र और कवि बतलाया है। इतिहास में इस काल के प्रमुख कवियों में उसका नामोल्लेख नहीं मिलता। हाँ कुमार गुप्त द्वितीय के समय (सन् ४७२-४७७ ई०) में एक वत्सभट्टि का उल्लेख अवश्य मिलता है, जो कोई महान कवि नहीं था, पर उसकी प्रांजल कविता के लिए

× दे० A new History of the Indian People VOL VI प्रकाशन-भारतीय इतिहास परिषद पृ० २०३

हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए। + उसकी रचनायें पाषाण पर स्थायी रूप से खुदी हुई हैं। ÷

'राजतरंगिनी', शिलालेखों एवं सिक्कों के द्वारा यह बात ज्ञात है कि तोरमाण ने गुप्त-साम्राज्य के पश्चिम प्रदेशों के विशाल भाग को छीन लिया था और अपनी सत्ता को सुदूर मध्यभारत तक फैला दिया था। उसकी यह शासन विजय लगभग ४८४-८५ ई० में हुई जब कि वहाँ बुद्धगुप्त के (४७७-४६५ ई०) के जागीरदार के रूप में मैत्री विष्णु राज्य करता था। लेकिन यह एक विडम्बना थी कि इसी मैत्री विष्णु के अनुज धन्यविष्णु ने तोरमाण के शासन के प्रथम वर्ष में ही उसकी अधीनता स्वीकार करली। 'शपथ' के नाटककार ने इसी ऐतिहासिक आधार पर धन्यविष्णु को एक देश द्रोही के रूप में चित्रित किया है।

इन ऐतिहासिक पात्रों तथा मूल कथानक के ऐतिहासिक आधार प्राप्त होने के साथ-साथ नाटक में आये हुए 'दशपुर', 'एरण' आदि स्थल नाम भी इतिहास प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उपरोक्त बातों में प्रेमी जी ने ऐतिहासिक तथ्यों का ध्यान ही नहीं रखा वरन् विस्तृत, मूक इतिहास को वाणी भी दी है।

कथानक और वस्तु संगठन

शपथ की कथावस्तु बहुत सूक्ष्म है। भारत में हूणों के भयंकर आक्रमण से कथा प्रारम्भ होती है जिसमें विष्णुवर्धन के पिता (जिनका नाम अज्ञात है) हूणों से युद्ध करते हुए अपने प्राण विसर्जित कर देते हैं। और तभी विष्णुवर्धन की शपथ प्रारम्भ होती है कि "महाकाल के इस बिजली के समान चमकने वाले अस्त्र की शपथ खाकर कहता हूँ कि बर्बर हूणों को भारत की सीमा से

+ Vatsa bha "thı, The author of the mandsor 'pras'astı' of Kumaıgukta and Bandheı Varman, wos a prob of no hıgh oıder, but hıo shonld bı gratıful to hım for hes neat-poeua . " A new Hıstorg of Indıan People VOL VI P. 407.

÷ Harıscna and Vatse bha thı, conteımporarıas of Samudıa gupta and Kumar gupte II res pectıalg, have left to us Theır comporı tı ons pırma nantlg ıncised on Stones" Hıstorg of Ancıent Indıa by R. S. Trıpa Thı P. 272.

निर्वासित किए बिना अब यह अस्त्रि म्यान में मुँह नहीं छिपाएगी।" इधर विष्णुवर्धन की माता पार्वती सती हो जाती है। शत्रु से प्रतिरोध लेने के लिए विष्णुवर्धन देश की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित एवं संगठित करता है। पर धन्यविष्णु अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा—पाटलीपुत्र के राज्य सिंहासन पर बैठने की लालसा और प्रलोभन में स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के साथ विश्वासघात और देश के साथ विद्रोह करके हूणों के साथ मिल जाता है। परन्तु विष्णुवर्धन का मित्र वत्स, धन्यविष्णु की नर्तकी कंचनी के साथ मिलकर हूण सम्राट तोरमाण की हत्या स्वयं कंचनी के हाथों करा देता है। इधर युद्ध में धन्यविष्णु का वध स्वयं उसकी बहिन सुहासिनी ही कर देती है। शत्रु सेना भी छिन्नभिन्न होती है और मिहिरकुल पराजित होता है। मालव प्रदेश से उखाड़ फेंके जाने पर मिहिरकुल ने कुत्सित षड्यंत्र द्वारा काश्मीर नरेश को मार कर काश्मीर पर तो अधिकार कर ही लिया था, यदि उसे और अवकाश मिल जाता और मालव उसे सीमान्त पर जाकर न धर दबाते तो भारत के भाग्याकाश में फिर काली घटायें छा जातीं। पर इतिहास में मिहिरकुल की पराजय हूणों की अन्तिम पराजय बननी थी, और विष्णुवर्धन की विजय को उसके कीर्ति स्तम्भ के रूप में युग-युग के लिए अमर होना था। नाटक में युद्ध और संघर्ष से श्रांत हो जाने वाले मन को विश्रांति देने के लिए विष्णुवर्धन और सुहासिनी की प्रणय कथा तथा वत्सभट्ट और कंचनी की प्रेम कहानी को भी स्थान मिला है।

पर मिहिरकुल का मालव पर आक्रमण तथा विष्णु वर्धन का जन संगठन करते हुए शत्रु से प्रतिरोध लेना और उसे पराजित करना ही नाटक की अधिकारिक वस्तु है। विष्णुवर्धन और सुहासिनी तथा वत्स भट्ट और कंचनी की प्रणय कथा प्रासंगिक वस्तु है। धन्य विष्णु और सुहासिनी की प्रणय-चर्या ने तो 'प्रकरी' का रूप ले लिया है।

इनके अतिरिक्त नाटक में ऐसी सूक्ष्म घटनाएँ भी हैं जो रंगमंच पर नहीं होतीं, पर जिनकी सूचना मात्र हमें पात्रों के द्वारा मिलती जाती है—जैसे एरण के रणक्षेत्र में विष्णुवर्धन के पिता का देहान्त, विष्णुवर्धन की माता पार्वती का सती होना, मिहिरकुल द्वारा एरण का विध्वंस, स्थल और जल मार्ग पर अज्ञात जल दस्युओं द्वारा हूण शस्त्रास्त्रों की लूट कंचनी द्वारा तोरमाण की हत्या, सुहासिनी के हाथों अपने देशद्रोही भाई धन्यविष्णु का युद्ध में वध इत्यादि।

अपनी अधिकारिक तथा प्रासंगिक कथा को उचित महत्व तथा स्थान देने और रगमच की असुविधा के कारण ही नाटककार कुछ घटनाओं की सूचना मात्र दे देते हैं। पर ऐसी सूच्य घटनायें कम से कम होनी चाहिए तथा इस कोटि में वे ही घटनाएँ आनी चाहिएँ, जो या तो रगमच पर न दिखाई जा सकें। या फिर अत्यन्त गौण हों। प्रेमी जी के सम्मुख भी ऐसी सूच्य घटनाओं के लिए ये ही कारण रहे होंगे, परन्तु मैं समझता हूँ कि यदि तोरमाण की हत्या का दृश्य विधान किया जाता तो वह अधिक प्रभावशाली होता। इसी प्रकार धन्यविष्णु की हत्या अपनी ही वहिन सुहासिनी के हाथों मच पर दिखाया जाना बड़ा मार्मिक और दर्शक की भावना को तुष्टि देने वाला होता। अस्तु।

मेरी दृष्टि में कुल मिलाकर शपथ का वस्तु-सगठन विशृ खल तो नहीं है पर शिथिल अवश्य है और इस शिथिलता का कारण है, पात्रों का अपनी-अपनी विचारधारा की अभिव्यजना में अधिक लगे रहना, प्रणय-व्यापार को अधिक विस्तार मिलना, घटनाओं तथा कार्य का अभाव और मार्मिक तथा प्रभावशाली दृश्यों का अभाव। वस्तुतः सम्पूर्ण कथानक इतना सरल और ऋजु है कि घने तत्वों को सगठित करने वाले सूत्रों के लिये अवकाश ही वहाँ नहीं रह गया। पर यह दोष नाटककार की कला का नहीं, वस्तु की वैसी उपलब्धि का है।

पात्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण की कला:—

शपथ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटक है। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक अधिकाशतः प्रख्यात नायक-चरित्रों और उनकी जीवन घटनाओं को लेकर चलते हैं। परन्तु आधुनिक नाटककार नायक की प्रख्याति के बन्धन को स्वीकार करके नहीं चलता। 'शपथ' का नायक यशोधर्मन भी ऐतिहासिक होते हुए भी इतिहास के लिये एक साधारण व्यक्ति था। उसके कहीं के वशानुगत राजा होने का भी इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु साम्राज्य के पतनोन्मुख युग में, जब कि स्कदगुप्त के पश्चात् हूणों के समान आतंककारिणी दुर्द्धर्ष शक्ति से लोहा लेने वाला कोई व्यक्ति रह नहीं गया था, विष्णुवर्धन जैसे एक साधारण व्यक्ति ने ही परिस्थितियों से ऊपर उठकर, जनमन को उत्तेजित कर एक सफल सशस्त्र राजनीतिक क्रान्ति की, और हूणों को पराजित कर देश को स्वतन्त्र किया। चाहे इस पात्र को इतिहास ने मूल्य न दिया हो, किन्तु

प्रेमी जैसे राष्ट्रीय नाटककार की दृष्टि से ऐसे क्रान्तिकारी और स्वाधीनता के विजयी सेनानी का चरित्र कैसे छिप सकता था !

ऐतिहासिक नाटक होने के कारण विष्णुवर्धन ही नहीं अन्य पात्र—तोरमाण, मिहिरकुल, वत्स भट्ट और धन्य विष्णु आदि भी ऐतिहासिक हैं। पर इतिहास-सिद्ध पात्रों में जहाँ लेखक ने अपनी कल्पना के बल पर सजीव वैयक्तिकताएँ भर दी हैं, वहाँ अपने कल्पित पात्रों को भी अन्य पात्रों और घटनाओं के बीच नियोजित करके ऐसे वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया है कि उनमें भी ऐतिहासिक सत्य का दर्शन होने लगता है। पात्र कल्पना और उनके चरित्र-चित्रण में इतिहास और कल्पना के समुचित सम्मिश्रण के कारण स्वाभाविकता और वास्तविकता जो उनके आवश्यक गुण हैं मूलतः दृष्टव्य हैं।

सम्पूर्ण नाटक में प्रमुख पात्र कुल १५ हैं, जिनमें १० पुरुष पात्र और पाँच स्त्री पात्र हैं। इनके अतिरिक्त बीस-एक दूसरे गौण पात्र हैं, जो कभी कभी कुछ क्षणों के लिए मंच पर आते हैं। इस दृष्टि से पात्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

नाटककार ने पात्रों के व्यक्तित्व के निरुपण में संतुलन और विविधता का ध्यान रखा है—वे न तो व्यक्तित्व हीन प्रतीत होते और न निरे 'टाइप'। चरित्र चित्रण की पद्धति में अधिकतर कथोपकथन का ही उपयोग हुआ है, क्रिया कलाप का कम। पात्रों के चरित्र के विकास में भी एक रूपता अधिक दिखाई देती है, संघर्षमयी परिवर्त्तनशीलता उनमें नहीं पाई जाती—उसका कारण परिवर्त्तनमयी संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रभावजन्य अंतर्द्वन्दों की अवतारणा का अभाव ही है।

एक चरित्र प्रधान नाटक

जब किसी नाटक में कथोपकथन कहानी का विकास कम और चरित्रोद्घाटन अधिक करते हैं तो वह नाटक घटना प्रधान न बनकर चरित्र प्रधान रह जाता है। 'शपथ' में घटनायें कम, चरित्रोद्घाटन अधिक है। नाटक के अधिकांश पात्र—लगभग सभी पात्र—रंगमंच पर जैसे अपना मंतव्य, अपनी विचारधारा प्रकट करने आते हैं, और अपनी अपनी बात सुनाकर चले जाते हैं। नाटकीय घटनायें केवल संकेत रूप से, यदा-कदा किसी पात्र के मुख से प्रकट करदी गई हैं। हूणों का आक्रमण, विष्णु-वर्धन के पिता का रण में रणभूमि में प्राण विसर्जन, पार्वती का सती होना, 'किन्हीं छल दस्युओं' द्वारा

हूणों के शस्त्रागारों से भरे पोत को लूट लेना, वत्स और कंचनी का मालव में स्थान स्थान पर नाटक आदि खेलते हुए जन-जागृति का शखनाद फूकना, वत्स और कचनी के ही षडयत्र से हूण सम्राट तोरमाण की हत्या तथा स्वय सुहासिनी द्वारा अपने ही हाथों अपने देशद्रोही भाई धन्यविष्णु का वध, आदि अनेक सनसनी पैदा करने वाले प्रसंगों को केवल पात्रों के द्वारा कथोपकथन के बीच कहलवा दिया गया है।

वैसे तो शपथ का घटना सूत्र ही इतना क्षीण है कि उसे सिमेट कर एक बिन्दु के सदृश रखा जा सकता है। संभवत: इसका कारण लेखों के शब्दों में यह रहा हो कि जिस यशोधर्मन अथवा विष्णुवर्धन को नायक बनाकर नाटक लिखा गया है, "वह एक साधारण व्यक्ति था। उसके कहीं के वशानुगत राजा होने का इतिहास में कोई प्रमाण नहीं है।" जब मूल नायक के विषय में ही इतिहास विशेष जानकारी नहीं देता, तो नाटक में आये हुए अन्य समकालीन पात्रों के विषय में इतिहास कोई कहानी क्या देता? सभवतः यही कारण है कि हूण-आक्रमण, विष्णुवर्धन के जन-नेतृत्व और उसके द्वारा की गई सफल राजनीतिक क्राति के सूत्र को पकड़कर ही लेखक को केवल अपनी कल्पना के द्वारा अधिकाशतः पात्रों को उपस्थित करना पड़ा है। किसी प्रख्यात कथा के अभाव में ही शपथ में घटनाओं का आयोजन कम और चरित्रोद्घाटन अधिक हुआ है। और घटनाओं के अभाव में ही चरित्र चित्रण, घटनाओं तथा क्रिया व्यापारों के बीच न होकर पात्रों के द्वारा अभिव्यक्त अपने विचारों के द्वारा हुआ है। यही कारण है कि 'शपथ' के पात्रों में चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व या परिवर्तन नहीं के बराबर है। प्रारम्भ से ही प्रत्येक पात्र एक निजी विशिष्ट समाज-नीति, धर्मनीति अथवा राजनीतिक-दार्शनिकता को लेकर चला है और अन्त तक वह उसी का प्रतीक बना अपरिवर्तित रूप में बोलता (और कभी कभी कार्य करता) रहता है।

प्रत्येक नाटक में उसकी घटनायें, घटनाओं की सक्रान्तिक सघर्षात्मक स्थिति, पात्रों के अन्तर्द्वन्द और वहिर्द्वन्द उसमें रोचकता, सजीवता और सरसता की प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। 'शपथ' में वहिर्संघर्ष तो है, पर अन्तर्संघर्ष के अभाव में उसकी सजीवता पर कुछ आघात् लगा है। फिर भी सुन्दर कल्पना-विधान, आकर्षक कथोपकथन, साहित्यिक परिमार्जित भाषा तथा भावानुकूल रसात्मक शैली ने नाटक की सरसता और सजीवता की पर्याप्त रक्षा करली है।

कथोपकथन—प्रेमी जी के नाटकों में हम सबसे प्रथम बार 'शपथ' के कथोपकथनों में ही शुद्ध साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग पाते हैं। पर उसमें न दुरूहता है, न अस्पष्टता और शिथिलता। उसमें माधुर्य, कमनीयता और भावानुकूलता बनी हुई है। विचार सकुलता कभी इतनी समास प्रधान होगई है कि पात्रों के कहे हुए वाक्य भाव-स्थिति विशेष में सूक्ति रूप में प्रकट हुए हैं जैसे—

१—'भोग और विवेक के प्रकाश में भोगा हुआ भोग तप है।'

२—'मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है।'

इन जैसी पचासों सूक्तियों के अतिरिक्त, धर्म, दर्शन, नीति, राजनीति आदि पर विचार गुफित भाव भी सम्पूर्ण नाटक में बिखरे पड़े हैं।

यद्यपि सम्पूर्ण नाटक में शान्तरस प्रमुख है, और इसीलिए आवेग-पूर्ण स्थल कम हैं, परन्तु कथोपकथनों की भाषा पात्रों के मनोभावों के अनुरूप कहीं त्वर, कहीं प्रशांत, कहीं खंडित और कहीं सूक्तिमय होती गयी है। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग तो प्रायः सम्पूर्ण नाटक में मिलेगा। उन्माद और आवेग में कथोपकथन में कितना बल, कितना प्रभाव और कितनी नाटकीयता आ जाती है, यह सुहासिनी के प्रेम के उन्माद से निसृत इन वाक्यों में दिखाई देगा—"तो बनादो मुझे भी ऐसी भाग्यशालिनी! निकालो खड्ग, करदो मेरे सम्पूर्ण तनमन हृदय में अताणित घाव। भरदो मेरे प्राणों में अनन्त वेदना, जिससे मैं युग युग तक चीखती रहूँ।"

चलते हुए कथोपकथन और उसके द्वारा उपस्थित प्रसग को बन्द करने के लिए कभी कभी नाटककार किसी पात्र के अंतिम शब्द को पकड़कर उसी से एक व्यग, परिहास समर्थन अथवा विरोध के स्वर में बोलते हुए किसी अन्य पात्र का प्रवेश दिखाकर कथोपकथन को एक नवीन मोड़ देता है। 'शपथ' के कथोपकथनों में भी ऐसे प्रयोग हुए हैं।

कभी कभी कथोपकथनों के द्वारा प्रेमी जी की लेखनी व्यंग और विनोद के छींटे उड़ाती हुई वेग से किन्तु क्रमिक रूप से अपने गन्तव्य और मन्तव्य की ओर भागती जाती है। व्यर्थ का अप्रासंगिक उलझाव न होने से कथोपकथन की सार्थकता की सुरक्षा हो सकी है। मुख्य कथावस्तु से विलग होकर टूट कर चलने वाले व्यक्तिगत वार्तालापों में भी कथासूत्र कहीं न कहीं से जुड़ा रहता है। इसी कारण इन कथोपकथनों की रोचकता और अनिवार्यता में दामन चोली का सम्बन्ध स्थिर हो पाया है।

कथोपकथन का उद्देश्य चरित्र चित्रण के साथ घटना तत्त्व को विकसित करना भी होता है। परन्तु 'शपथ' में प्रथम अंक का सातवाँ दृश्य तो मानों केवल उसमें आये हुए पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए ही रखा गया हो। सैद्धान्तिक दृष्टि से ऐसे दृश्यों का चाहे कितना ही महत्त्व हो पर नाटकीयता, सरसता और कथा प्रवाह की दृष्टि से वे नीरस ही प्रतीत होते हैं।

वैसे तो सम्पूर्ण 'शपथ' में सर्वत्र ही प्रेमी जी की भाषा परिमार्जित और प्राजल है पर उन स्थल ।र तो जहाँ उनके पात्र प्रेम की उन्मद अलसता में डूब जाते हैं, भाषा अत्यन्त सरस और भावमयी हो उठी है। जैसे द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में। इसी प्रकार द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में मद्यपों के कथोपकथन हास्य रस की सृष्टि की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

'शपथ' में कथोपकथनों का नाटकीय सूचनाएँ देने तथा तर्क वितर्क करने में भी उपयोग किया गया है। उनमें, इस प्रकार, विविधता है, आरोह-अवरोह है, भावानुकूलता है और है एक प्रभावोत्पादकता। कथोपकथन की धारा में पाठक या दर्शक डूबता उतराता चलता है, चलता जाता है—जब तक कि अन्त में चलकर उसे साँस लेने का अवसर न मिले।

देशकाल वातावरण—जैसा कि प्रत्येक नाटक के लिए आवश्यक है, 'शपथ' में तत्कालीन युग और देश की स्थिति का सच्चा चित्रांकन देखने को मिलता है। गुप्तकाल : उसकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक उन्नति, समृद्धि और अवनति तथा उसके कारणों पर लेखक ने यथास्थान और यथा-समय प्रकाश डाला है।

शपथ-कालीन भारत हूणों के आक्रमण और पतनोन्मुख मरणशील गुप्त-साम्राज्य के युग का भारत था। हूणों का राज्यलिप्सा में मदान्धता, व्यभि-चारिता तथा आतंकवादिता के सामयिक चित्र इस नाटक में, प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में दिखाई देंगे। जैसे—"पराजित जाति की नारियों को विजेता सैनिकों के मनोरंजन का खिलौना बनना ही चाहिए।"

वैसे तत्कालीन भारत के सैनिकों की ही नहीं, सर्वसाधारण की निर्भीकिता, साहस और नैतिकता मिहिरकुल जैसे हूण युवराज को भी चकित करने वाली थी, परन्तु धन्यविष्णु जैसे 'नर की खाल पहने हुए श्वान' भी इसी देश में, उसी काल में थे। तभी तो मिहिरकुल जैसे विदेशी को भी कहना पड़ा "भारत की यही तो सबसे बड़ी निर्बलता है कि यहाँ के विभिन्न भूपालों की व्यक्तिगत

महत्त्वाकांक्षायें उन्हें संगठित होकर विदेशी शक्तियों से अपने देश की रक्षा नहीं करने देती।"

गुप्तों की विलासप्रियता, आलस्यप्रियता, रूढिवादी धर्मभीरुता, बौद्ध-भिक्षुओं का हूणों के साथ गठबंधन, आदि के कारण ही 'शपथ' में गुप्तसाम्राज्य के पतन की कहानी प्रस्तुत करते हैं। यह सत्य है कि ऐसे ही समय विष्णुवर्धन जैसे जन नायक भी उत्पन्न हुए हैं पर इन नायकों में जो एक दुर्बलता सदैव से मिलती आई है वह विष्णुवर्धन में भी थी—और वह है अतिशय उदारता, क्षमाशीलता, आदर्शवादिता, जिसने तुम्हें धोखा दिया और संकट में डाला।

सच तो यह है कि शपथ में चित्रित भारत का राजनीतिक चरित्र शपथ कालीन भारत घटनात्मक दृष्टि को छोड़कर चारित्रिक दृष्टि से चिरतन भारत ही कहा ज सकता है।

अतीत का दर्पण: वर्त्तमान का प्रकाश स्तम्भ:—

इतिहास अपने को दुहराता रहता है, उसकी पुनरावृत्ति होती रहती है, इसे सब जानते हैं, परन्तु फिर भी हम इतिहास से शिक्षाग्रहण नहीं करते—

इसीलिए, तो प्रेमी जी को लिखना पड़ा—

> है शपथ में देश की भूली कहानी,
> है शपथ में देश की भूली जवानी,
> चिर नई इतिहास की गाथा पुरानी,
> है पड़ी संसार को फिर फिर सुनानी।'

इतिहास की इस पुरानी गाथा को जो चिर नवीन रहेगी, हम दो प्रमुख समस्याओं के रूप में देख सकते हैं—

(१) भारत पर विदेशी हूणों का आक्रमण,

(२) देश में धन्यविष्णु जैसे देशद्रोहियों का विश्वासघात।

कहना न होगा देश को स्वतन्त्र करने के लिए जो राजनीतिक और सामाजिक समस्याएँ विष्णुवर्धन के सम्मुख थीं ठीक वैसी ही आधुनिक युग में भी राष्ट्र-नेताओं के सम्मुख थीं। दोनों ही युग में भारत की अखडता छोटे २ राज्यों में विभाजित थी। इसोलिए तो शपथ में कहे गए विष्णुवर्धन के ये निम्नांकित शब्द वर्त्तमान के लिए भी प्रकाश स्तभ है—

१—"राज्य, प्रदेश जाति और वर्शों के प्राचीर को चीरकर हमारे व्यक्तित्व मुक्त आकाश में पख फैलायें, देश के प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा का अश मानें।"

२—"वे (गणराज्य) अपने राष्ट्र भारत के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझकर एक दूसरे के प्रति प्रतिद्वन्द्वता न कर, राष्ट्र के विकास में एक दूसरे के सहायक बनें।" आदि।

इसी प्रकार सामाजिक छूआछूत तथा सामाजिक वैषम्य के विरोध में कहे गए 'शपथ' की सुहासिनी के ये शब्द आज भी हमारा मार्ग-निर्देशन करते हैं—

"प्रत्येक विवेकशील हृदय को आशका है कि भारत में सामाजिक वैषम्य की जो खाइयाँ खुद गई हैं वे एकदिन हमारी स्वाधीनता को डस लेंगी और विजयी विदेशी विजित आर्यों की भी वही स्थिति कर देंगे जो आर्यों ने आदि-वासियों की है।"

इस सामाजिक सहिष्णुता के अतिरिक्त प्रत्येक देश की स्वतन्त्रता और एकता के लिए धार्मिक सहिष्णुता और उदारता की भी आवश्यकता होती है। 'शपथ' में प्रतिपादित और विष्णुवर्धन द्वारा मुखरित यह भावना आज के भारत में भी अनिवार्य समझ कर ही तो गाँधी जी ने सर्व-धर्म-समन्वय को प्रचारित किया था।

'शपथ' द्वारा प्रस्तुत अतीत के दर्पण ने 'धन्यविष्णु' का जो रूप प्रतिविम्बित किया है। वह पराधीन भारत के लिए तो एक प्रकाश स्तम्भ था ही स्वतन्त्र भारत के लिए भी सदैव रहेगा। 'जयचन्द' और 'धन्यविष्णु' की पुनरावृत्तियाँ भारत में हुई हैं, और कौन जाने कब तक होती रहेंगी। लेखक ने वैसे उसका समाधान भी बतलाया है—अपनी ही बहिन के द्वारा धन्यविष्णु जैसे देशद्रोही, विश्वासघाती भाई की हत्या! जिसने भारत के कलक को पोंछ ही तो दिया। पर वह समाधान वैयक्तिक होने से नाटकीय तो बन पड़ा है, किन्तु राजनीतिक नहीं। भारत को तो ऐसे देशद्रोहियों का राजनीतिक समाधान भी खोजना होगा, क्योंकि प्रत्येक धन्यविष्णु की बहिन सुहासिनी नहीं हो सकेगी।

कुल मिलाकर राजनीतिक एकता, सामाजिक एकता और धार्मिक एकता इस नाटक में भारतीय स्वाधीनता और एकता की त्रिसूत्री योजना बनकर आई है, जो 'शपथ' के युग के लिए जितनी सत्य थी, उतनी आज भी है और जब-जब इतिहास की पुनरावृत्ति होगी, तब-तब रहेगी।

गीत-योजनाः—

"शपथ" की प्रधान गायिका उज्जयनी की नर्तकी कंचनी है। उसके गीतों में, जो नाटक के कुल ६ गीतों में से ५ हैं, उसके अन्तर का यौवन-उन्मद उद्दाम प्रेम रसभरी गगरी सा छलछल पड़ता है।

वत्सभट्ट एक कवि होते हुए भी प्रारम्भ में केवल दो पंक्तियाँ गुनगुना कर रह जाता है, जबकि उससे अधिक गीतों की अपेक्षा रखना स्वाभाविक है। पर उस अभाव की पूर्ति उसके काव्यमय कथोपकथनों में उसकी भावुक-कल्पना की उड़ानों से हो जाती है।

पर रूप, यौवन और प्रेम की प्रतिमा कंचनी जब हमारे उर अन्तर के रंग-मंच पर छवि के पायल अनुरणित कर जाती है तो उसके गीत का प्रत्येक चरण अपनी गति में रुनझुनित हो उठता है, क्योंकि उसका प्रत्येक स्वर अपनी मादकता में उन्मद और लय अपने उन्माद में तन्द्रिल है। उसकी अप्सरी-वासना तप-संयम-प्रण को विचलित करने वाली और उसका रस झीने घूंघट से आवृत चन्द्रानन सा झिलमिल! उसके प्रत्येक आकर्षण में मधुलोभी मधुकर को मधुपान का आमत्रण है। वह अपने गीतों का दीप जलाकर ही तो युद्ध घटाओं के आच्छादन के नीचे मावस में भी दीवाली जलाकर विष्णुवर्धन को उज्ज्वल प्रभात का आलोकित सदेश दे जाती है। वस्तुतः कंचनी के सभी गीत या तो प्रणय की ज्वाला सुलगाने के लिए हैं, या कर्त्तव्य की। युद्ध और सघर्ष के बीच ये गीत हमें रोककर एक क्षण के लिए रस-विभोर कर जाते हैं। मेघ-गर्जन की भीषणता में बिजली से चमकने वाले ये गीत, प्रलय की ज्वाला और प्रणय की सजलता, दोनों लिए हुए हैं।

भाषा शैली—प्रेमी जी के मुस्लिमकालीन नाटकों में तो उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रयोग हुआ है पर पूर्व मुस्लिम कालीन नाटक होने से 'शपथ' में शुद्ध साहित्यिक हिंदी का ही प्रयोग हुआ है। भाषा सबधी उनका यह प्रयोग नूतन होने पर भी अधिकारपूर्ण है। कृत्रिमता उसमें नहीं है। उसकी नाटकीयता विचारों की सैद्धान्तिक गहनता में भी अक्षुण्ण है। वह साहित्यिक होते हुए भी सजीव है, कलात्मक होते हुए भी गत्वर है। सभी पात्रों की भाषा समान होते हुए भी उनकी साहित्यिक वैयक्तिक विशेषताओं तथा परिस्थिति विशेष की भाव स्थिति के अनुरूप भाषा में उतार चढाव तथा शैली भेद विद्यमान में।

इस अनिवार्य विविधता को छोड़कर वही कोमल कमनीय, कलित-ललित वाक्य योजना, रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षाओं में बँधी भावाभिव्यक्ति तथा प्रतीक और संकेत-विधान मयी अभिव्यजना 'शपथ' में सर्वत्र दिखाई देती है। यह नाटकीय कथावस्तु के युग विशेष की माँग तो है ही, पर इससे आगे यह कवि प्रेमी की देन भी है।

कभी विचार गुंफित भावाभिव्यक्ति के समय, शपथ के पात्रों के मुख से निकलकर, प्रेमी जी की भाषा सूक्ति मय हो जाती है, तो कभी भावधारा में बह कर प्रवाहमयी—वहाँ ऊँची से ऊँची काव्य कल्पना भी उसके प्रवाह को अवरुद्ध नहीं कर सकी है। कभी वह परिहास से गुदगुदाती है तो कभी व्यग में कचौटती चलती है। कभी वह विचारों का ताज पहिने राजसी चाल से चलती है तो कहीं भोले बालक की सहज सरल अवोधना लपेटे नगे पैर ही दौड़ती जाती है।

साहित्यिक अभिव्यक्ति में तो 'शपथ' की भाषा में लक्षणा और व्यंजना शक्ति का खुल खेलकर प्रयोग हुआ है। अभिधा तो उनकी चेरी सी लगती है। इसी प्रकार उसमें माधुर्य और ओज गुण प्रमुखतः दिखाई देता है, पर प्रसाद-गुण कम होते हुए भी प्रेमी के 'प्रेयत्व' का उसमें अभाव नहीं। इसी आधार पर उनके शब्दों में कोमला वृत्ति और वैदर्भी रीति तथा कहीं परुषावृत्ति और गौड़ी रीति मिलती है। उपनागरिका वृत्ति तथा पाचाली रीति तो कहीं-कहीं परिलक्षित होती है। उनके शब्दों के स्वर और अर्थ में स्वाभाविक घनिष्टता तथा अधिकाशत उनकी वाक्य योजना में एक चित्रोपमता, रोचकता और अनुरणात्मकता है।

'शपथ' शीर्षक का औचित्य

'शपथ' विष्णुवर्धन के देश को आक्रातांओं से मुक्ति दिलाने की प्रथम शपथ-ग्रहण से लेकर उसकी पूर्ति तक की कहानी है। वह मूल भाव-सूत्र रूप में आद्यात विद्यमान रहती है, इस दृष्टि से 'शपथ' शीर्षक उपयुक्त ही है। पर यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि क्या इस नाटक का शीर्षक विष्णुवर्धन नहीं रखा जा सकता था? एक चरित्र प्रधान नाटक होने से ऐसा हो सकता था। पर नाटककार ने चरित्र नायक पर बल न देकर उसके द्वारा ली हुई शपथ और उसकी पूर्ति पर ही अधिक बल दिया है। इस दृष्टि से उसमें चाहे देवेन्द्र सत्यार्थी के नामकरणों का सा आकर्षण न हो पर सार्थकता और औचित्य अवश्य है।

रस और नायकत्त्व

प्रेमी जी के नाटकों में बहुधा शान्त, वीर, करुण और शृंगार रसों की ही प्रधानता होती है, हास्य रस का उनमें लगभग अभाव ही रहता है। इसका कारण स्वय प्रेमी जी का व्यक्तित्व और उसके अनुरूप उनकी कथानक सृष्टि तथा पात्र योजना है।

'शपथ' में भी ये ही दसों रस हैं। हास्य रस का सुन्दर विधान द्वितीय अंक के पाँचवें दृश्य में हुआ है। एक वही दृश्य लगभग समूचा हास्य रस प्रधान है। एक उदाहरण लीजिए—"युवती स्त्री की माँग में सिंदूर न हो तो उसमें और श्रीफल में अंतर ही क्या रह जाए!"—धर्मदास

वीर रस के कोई साक्षात दृश्य इस नाटक में आये नहीं हैं। केवल कहीं कहीं विष्णुवर्धन, मिहिरकुल आदि पात्रों के कथोपकथनों में वीर रस का स्थायी भाव उत्साह झलक उठता है। वीर रस स्वयमेव पूर्णता की स्थिति को नहीं पहुँचा है।

शृंगार रस तो सम्पूर्ण नाटक में आद्योपांत निर्गत होता है। विष्णुवर्धन और सुहासिनी, वत्स भट्ट और कचनो की प्रेमचर्या में तथा मदाकिनी की सरस उक्तियों की मधुचर्या में शृंगार रस छलक छलक पड़ा है। आश्चर्य हो सकता है कि एक क्रांतिकारी नायक विष्णुवर्धन के जन संगठन तथा स्वाधीनता सग्राम को लेकर भी 'शपथ' वीर रस प्रधान क्यों नहीं हुआ? उसके कारण हैं। प्रथम तो यह कि नाटक में कोई भी दृश्य—एक जयदेव और उमा के हूणों द्वारा घेर लिए जाने के प्रसंग को जोड़कर—वीर रस-सृष्टा और उद्‌बोधक नहीं है। दूसरे यह कि यह नाटक साक्षात राजनीतिक क्रांति का नहीं वरन् उसकी सिद्धान्त-वादिता का नाटक ही दृश्य रूप से अधिक है।

इसीलिए 'शपथ' वीर रस प्रधान न होकर शृंगार और शांत रस प्रधान नाटक बन गया है। उसका शांत रस उन सभी दृश्यों में प्रस्फुटित हुआ है, जहाँ पात्र अपनी विचार धारा को प्रकट करते जाते हैं। वस्तुतः इस 'शांत' को सजीव और उत्प्रेरक बनाने वाले केवल दो ही रस उसमें हैं—प्रधान रूप से शृंगार और गौण रूप से हास्य—अन्यथा सम्पूर्ण नाटक निर्जीव और नीरस हो गया होता।

नाटक को संवेदनात्मक बनाने के लिए करुण रस का एक प्रमुख स्थान होता है। 'शपथ' में भी करुण रस है पर उद्वेलित करने वाला नहीं, एक टीस और कसक छोड़ जाने वाला! विष्णुवर्धन के पिता की मृत्यु, पार्वती का सती

होना, विष्णुवर्धन के अभियान की बाधायें और मदाकिनी के जीवन का सूना। सूनापन हमको एक विषाद से भर जाता है।

धन्यविष्णु और तोरमाण की मृत्यु दुखद प्रसग होते हुए भी करुण नहीं, क्योंकि वे खल पात्र हैं, उनके विनाश से उल्टे सुख सतोष और आनन्द मिलता है।

धन्यविष्णु के प्रति 'जुगुप्सा' और विष्णुवर्धन के प्रति उमड़ती हुई सहानुभूति चाहे रस न हों पर वे हमारे हृदय के ऐसे भाव बन जाते हैं जो नाटक के आदर्श और चित्राकन के साथ हम को एक रस बनाए रखते हैं।

नाटक का पर्यावसान शात रस में हुआ है। नायक के व्यवधानों की परिसमाप्ति और फलागम की प्राप्ति जो होती है, वही हमें आशा और निराशा को ऊँची नीची तरगों में झुलाती अन्त में सफलता के तट पर उतार कर हमारी झोली में एक आनन्दमयी शान्ति का उपहार दे जाती है।

यद्यपि विष्णुवर्धन शपथ का नायक है, पर वह एक ऐसा नायक है, जिसकी भुजायें कचनी और वत्स हैं, जिसका हृदय सुहासिनी है, जिसकी गति जनता है, पर जिसका मस्तिष्क वह स्वय है। विष्णुवर्धन का व्यक्तित्व एक समीकृत व्यक्तित्व लगता है, इसीलिए उसका नायकत्व विकेन्द्रित। और फिर भी वह सच्चा नायक है, क्योंकि नेतृत्व हीन भारत की स्वतन्त्रता के लिए, जनता के बीच से एक साधारण व्यक्ति सा उठकर, वही नेतृत्व देता है और स्वय फल भोक्ता भी बनता है, यद्यपि प्रेमी जी की कल्पना का स्पर्श पाकर सच्ची फल भोक्ता तो जनता बन गई है क्योंकि विष्णुवर्धन के शब्दों में देश व्यक्ति से बड़ा है। इसीलिए वस्तुतः इस नाटक में विष्णुवर्धन फल का प्रदाता है, भोक्ता नहीं।

शास्त्रीय दृष्टि से भी चाहे वह नायक की योग्यता के अनुसार अभिजातकुल का प्रख्यात व्यक्ति न हो पर नायकत्व के अन्यान्य गुण उसमें विद्यमान हैं। वह धीरोदात्त है—शोक क्रोध आदि से प्रचलित नहीं होता, क्षमावान है, गम्भीर, स्थिर और दृढव्रती है। उसका गर्व विनयावृत है—और सबसे बढ़कर उसमें जन नेतृत्व की सफलता है। वस्तुतः लेखक के उद्देश्य और आदर्श ने विष्णुवर्धन के नायकत्व में पूर्णता प्राप्त की है।

अभिनेयत्व

साधारणतः प्रेमी जी के सभी नाटक रगमच की दृष्टि से सफल बन पड़े हैं।

प्रसाद के नाटकों के इस अभाव को प्रेमी ने पूरा किया है। 'शपथ' नाटक में भी रगमच पर अभिनेता का ध्यान रखा गया है।। मंच संकेत नाटक की अभिनेयता में सहायक हुए हैं। पात्रों के प्रवेश प्रस्थान मच सजावट, की सुविधा दृश्य परिवर्तन, अक-विभाजन, सवाद, कार्य व्यापार दृश्य विधान, तथा नाटकीय प्रसगों की सृष्टि आदि सभी दृष्टि से शपथ की रगमचीय सफलता असदिग्ध है। पर इन सबके विस्तृत और पृथक् पृथक् विवेचन के लिए यहाँ स्थान नहीं। ×

× प्रो० प्रेमचन्द कृत अप्रकाशित आलोचनात्मक पुस्तक नाटककार हरिकृष्ण "प्रेमी" ।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर

नाटककार श्री जगदीशचन्द्र माथुर का रचना काल सन् १६२६ से प्रारम्भ हुआ। सन् १६३६ ई० में आपका प्रथम एकाकी "मेरी बाँसुरी" प्रकाशित हुआ था। १६४६ में पाँच एकाकी नाटकों का सग्रह "भोर का तारा" प्रकाशित हुआ, जिसके नाटक "खण्डहर", "रीढ की हड्डी", "भोर का तारा" आदि रगमच की दृष्टि से लिखे गए थे। दो एकांकी इतिहास तथा शेष तीन सामयिक समस्याओं पर लिखे गए है। "भोर का तारा" में राष्ट्रीय कर्त्तव्य की वेदी पर शेखर का कविता-कामिनी का बलिदान बहुत सुन्दर है। "खडहर" में क्लर्कों के जीवन की एक सुन्दर झाँकी है। "रीढ की हड्डी" में स्वतन्त्र दिमाग की उमाशकर के चारित्र्यक दोष को स्पष्ट करती है। "ओ मेरे सपने" दूसरा एकाकी सग्रह (१६५३) में प्रकाशित हुआ। इसमें "घोंसले", "खिड़की की राह", "कबूतरखाना", "भाषण" और "ओ मेरे सपने" सग्रहीत है। श्री माथुर ने इन्हें नटखट नाटकों की श्रेणी में रखा है, "ऐसे नाटक जिनमें व्यग्यकार अपने पात्रों के साथ कुछ छेड़छाड़ करता है, कुछ चुहल कुछ शरारत करता है या स्याह रग में नहीं रगता। जिन कमजोरियों का खाका "ओ मेरे सपने" में खींचा गया है, उन पर नाटककार खड्गहस्त और कुचित भ्रू होकर प्रहार नहीं करता, बल्कि उनके अतिरजित स्वरूप को हमारे सामने रखकर उनके बेडौलपन मे अवगत कराना चाहता है। "ओ मेरे सपने" के नाटक अपने हास्य-व्यग्य, सवादों की अतिरजनापूर्ण शैली और परिस्थितियों के अभूतपूर्व गुफन के लिए हिन्दी नाटकों में बेजोड़ है। माथुर साहब का नवीनतम नाटक "कोणार्क" (१६५४) नाट्यकला की दृष्टि से अभूतपूर्व रचना है। विषय निर्वाचन कथावस्तु, क्रमविकास, सवाद, ध्वनि मितव्ययता और रगमंचीय कला की दृष्टि से "कोणार्क" एक परिष्कृत रचना है। "कुँवरसिह", "शारदीया", और "बन्दी" माथुर साहब के नवीनतम नाटक हैं। "बन्दी" में एक नवीन प्रयोग किया गया है। हिन्दी नाटकों में रगमचीय अभिनयशील नाटकों के निर्माण-कर्ताओं में माथुर साहब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक और ऐतिहासिक

दोनों प्रकार के सफल नाटक आप हिन्दी को प्रदान कर चुके हैं। कुछ में व्यंग्य दिल बहलाव है और गुदगुदी उत्पन्न करने की क्षमता है, तो कुछ में गहन जीवन-दर्शन, ऐतिहासिक आदर्शवाद है और प्रबल प्रेरणाओं का घात-प्रतिघात।

नाटकों की विशेषताएँ:—

माथुर साहब के एकांकियों और नाटकों की समस्याएँ प्रायः सामाजिक हैं। आपने अधिकतर मध्यवर्ग की समस्याओं को चित्रित किया है। आज के मनुष्य का जीवन इतना व्यस्त हो चुका है कि उसे अपनी वाह्य मान प्रतिष्ठा, दिखावा तथा आर्थिक कठिनाइयों से क्षण भर को परे हट कर दूसरों की समस्याओं के बारे में सोचने का अवकाश नहीं है। हर व्यक्ति अपनी अलग समस्याओं में डूबा हुआ है। जनता में सामूहिक चेतना है। वह बाहरी दृष्टि से अपना पद, मर्यादा, इज्जत, सामाजिक स्थिति बनाए रखना चाहता है, पर अन्दर से आर्थिक खोखले-पन का अनुभव कर रहा है। ऐसे दिखावे के अनेक चित्र इनके नाटकों में हैं। शोषकों का शोषितों के प्रति अत्याचार; शोषितों का शोषकों के प्रति विद्रोह, रूढ़िग्रस्त समाज के प्रति तरुणों का विद्रोह, रोजी रोटी का प्रश्न, अधिकारों की लड़ाई; नारी समस्या, गरीबी, लाचारी, रोमांस की निस्सारता, आय-व्यय की समस्याएँ, विवाह समस्या तथा जीवन के अन्य छोटे बड़े मसले माथुर साहब ने अपने नाटकों में चित्रित किए हैं। उनके एकांकियों की समस्याएँ प्रायः सामाजिक हैं, लेकिन उनकी कला की सुन्दरता इस बात में है कि वे अपनी विचारधारा को संकेतों के रूप में प्रकट करते हैं। कोई भी नाटक आदर्शवाद अथवा उपदेश वृत्ति से बोझिल नहीं है। व्यंग्य का बड़ा अच्छा प्रयोग है। सामाजिक विषमताओं और कमजोरियों को ऐसे अतिरंजित रूप में प्रस्तुत किया है कि देखते ही बनता है। इनके प्रहसनों की एक विशेषता परिष्कृत हास्य है।

माथुर साहब के नाटक आज के मध्यवर्गीय जीवन के जीते जागते हँसते खेलते या कराहते चीखते चित्र हैं। उन्होंने जीवन को समीप से देखा और कलम के साथ पूरी-पूरी ईमानदारी बरती है। नए जीवन की परिस्थितियों को चित्रित किया है। जन जीवन नाना समस्याओं के फन्दे में उलझ कर मुक्ति के लिये छटपटा रहा है। उसकी अपनी मजबूरियाँ हैं। नाटककार माथुर जीवन के बहुत करीब हैं। उनके नाटकों में जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है; उनके शब्दों में मध्यवर्गीय जनता का स्वर मुखर होता है। यही कारण है कि उनके एकांकियों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

टेकनीक की दृष्टि से रगमच को अनुकूलता माथुर साहब की सबसे बड़ी देन हैं। उनका प्रत्येक नाटक रगमन्च पर सफलतापूर्वक खेला जा चुका है। स्वय उन्हें अभिनय का उत्तम ज्ञान है। रगमच पर अभिनय करने का उन्हें प्रारम्भ से ही शौक रहा है। अत उनके नाटक केवल पढ़ने मात्र के लिये ही नहीं, रगमच पर उनका जीवन है। आज के नाटकों में यह गुण बहुत कम पाया जाता है। उनके सवाद सक्षिप्त, मर्मस्पर्शी, वाक्वैदग्ध्ययुक्त और चरित्र की चारित्रिकता प्रकट करने वाले हैं। सहज स्वाभाविकता उनका गुण है। वह वादविवाद का रूप ग्रहण नहीं करता। व्यग्य का प्रचुर प्रयोग है। सगीत का प्रयोग नहीं किया गया है।

आपके रगमचीय निर्देश विस्तृत हैं, जिनसे पाठक भी पात्रों की रूप कल्पना कर सकता है। कहीं-कहीं चित्रों द्वारा रगमच का पूर्ण विधान स्पष्ट कर दिया गया है। उपक्रम और उपसहार माथुर साहब के नवीनतम प्रयोग हैं, जिनमें हम सस्कृत नाटकोंकी प्रस्तावना और पाश्चात्य नाटकों के प्रोलौग और एमलौग एव कोरस की झलक पाते हैं। "कोणार्क" के उपक्रम में कथा का सक्षिप्त निर्देश है। ये नाटक रगमच के लिये हैं। और इस दृष्टि से पूर्ण सफल हैं। रगमच के उपयुक्त दृश्यों का विधान रहता है। जैसे-जैसे रगमच की कसौटी पर वे कसे जायँगे, वे अधिक निखरेंगे।

माथुर साहब के नाटकों की भाषा सरस और परिष्कृत है। साहित्यिक सौन्दर्य यत्र-तत्र मिलता है। एकांकियों में पात्रों के अनुकूल स्वभाव गुण कर्म और स्थिति के अनुसार चलती हिन्दी का प्रयोग है। वाक्य छोटे-छोटे दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली सहज सरल शैली में है। भाषा की सरसता, कल्पना और कविता का समन्वय उनके नाटकों का एक आकर्षण है। हिन्दी में रंगमच के योग्य नाटकों का बहुत अभाव है। हर्ष है कि इस कमी को माथुर साहब के नाटक दूर कर रहे हैं।

माथुर साहब का "कोणार्क":—

"कोणार्क" नवीतम कृति है, जिसमें माथुर साहब की नाट्यकला अपने पूर्ण परिष्कृत रूप में दिखाई देती है। इसमें प्राचीन तथा नवीन नाट्यकला का मनोरम सामजस्य है। कोणार्क के देवालय को लेकर लेखक ने एक कथानक का निर्माण किया है। कोणार्क के मन्दिर के विषय में कई बातें विचारणीय हैं। मध्यकालीन उड़ीसा के मन्दिरों की परम्परा में यह अन्तिम भवन है। इसके नष्ट होने के पश्चात् इस कोटि और शैली के मन्दिरों का निर्माण ही बन्द हो गया। दूसरे उस परम्परा के मन्दिरों में स्थापत्य, कल्पना और कला की विवि-

बता है। मानों यह शैली कोणार्क के निर्माण में अपनी चरमावस्था में पहुँची। तीसरे जहाँ अन्य मन्दिर पुरी और भुवनेश्वर जैसे नगरों में बनाये गये, कोणार्क के लिए ऐसा स्थान चुना गया जिसके आसपास दूर तक आबादी नहीं थी। पुरी से १६ मील दूर समुद्र तट पर यह मन्दिर स्थित है। चौथे, इस मन्दिर के उपपीठ पर अंकित युगल मूर्तियाँ आधुनिक विचार से अत्यन्त अश्लील हैं और उसका उद्देश्य समझ में नहीं आता। पाँचवीं और अन्तिम रहस्यपूर्ण बात यह है कि मध्यकालीन उड़ीसा का अन्य कोई मन्दिर इस खण्डित और भग्नावस्था में नहीं है, यद्यपि यह सब के बाद में बना। मन्दिर का मुख्य अंश (विमान) टूटा पड़ा है और कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि मन्दिर कभी व्यवहार में लाया ही नहीं गया।

उपक्रम—इसका तात्पर्य दर्शकों को कोणार्क की एक वेदनामयी झाँकी दे देना है। झीने पर्दे पर अन्धकार में कोणार्क के खण्डहर की हलकी सी झलक दीख पड़ती है। तीन स्वर इस प्रारम्भिक कथा भाग की सूचना देकर मानो वातावरण निर्माण कर देते हैं। प्रारम्भिक दो स्वर कोणार्क की सुन्दरता का वर्णन करती हैं। तीसरे स्वर में इतिहासिक कथाभूमि का वर्णन है।

सात सौ वर्ष पूर्व उड़ीसा प्रदेश में परम पराक्रमी महाराज नरसिंह देव का राज्य है; विशु उनका महाशिल्पी है जिसने एक के बाद एक कर भुवनेश्वर में चार मन्दिरों का निर्माण किया है पर फिर भी राजा की स्थापत्य कला कामना और महाशिल्पी विशु की साधना पूर्ण नहीं हुई है। अतः उसने कोणार्क के रूप में अपनी कला का निखरा हुआ रूप प्रस्तुत किया है। इसमें भगवान सूर्य की प्रतिमा को स्थापित किया गया है, गुप्त चुम्बकों के द्वारा अधर खड़ी है। कोणार्क में विशु की विराट् कल्पना साकार हो चुकी है। इसका रूप पाषाण के एक विशाल रथ जैसा है, जिसकी पिण्ठ सैकड़ों गज लम्बी है; दुर्ग जैसी इसकी प्राचीर हैं, जिसमें बारह चक्र हैं और सात भव्य घोड़े जुड़े हुए हैं। कथानक का प्रारम्भ तब होता है, जब मन्दिर के निर्माण का कार्य लगभग समाप्त हो चुका है, केवल शिखर पूरा होना शेष है। सारे उत्कल प्रदेश की आँखें कोणार्क पर लगी हुई हैं। यही प्रतीक्षा है कि उसका शिखर कब पूरा होगा? कब केसरी पताका फहरायगी?

प्रथम अंक—इसमें कोणार्क का निर्माण, अम्ल के ऊपर त्रिपट भर को स्थापित कर देने की कठिनाइयाँ, मन्दिर की कला की मूलप्रेरणा, धर्मपद नामक एक नए शिल्पी का आगमन, नरसिंहदेव के महामात्य का शिल्पियों पर अत्याचार, महाराज नरसिंहदेव के विरुद्ध षड्यंत्र का प्रारम्भ आदि घटनाएँ

चित्रित हैं। जब राजनगरी से दूर सागर के किनारे बारह वर्ष से मन्दिर तैयार हो रहा है, तो उत्कल राज्य की राजधानी में उलटफेर चल रही हैं। महाराज नरसिंहदेव तो बंगाल में यवनों को पराजित करने में लगे हैं, उत्कल का शासन महामात्य के हाथ में है। महामात्य शिल्पियों पर अत्याचार कर रहा है। दूर-दूर से आने वाले शिल्पी महामात्य द्वारा किए गए अत्याचारों के समाचार लाते हैं। उनमें से कितनों ही के कुटुम्बों पर अन्याय का हथौड़ा पड़ चुका है। राज की सेना तो बंगाल में मुसलमानों से युद्ध कर रही है और इधर दण्ड-पाशिक सैनिकों (पुलिस) के बल पर महामात्य की शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इसी बीच उत्कल राज्य का प्रधान शिल्पी कोणार्क का निर्माता विशु अपनी कहानी प्रारम्भ करता है। उसकी कला का उद्‌गम क्यों कैसे हुआ? उसकी एक प्रेयसि थी चन्द्रलेखा। वह एक शबर किशोरी थी, अपने गाँव वालों के संग जंगली छाल जड़ियाँ इत्यादि बेचने आती थी। उसकी सुन्दरता और भोले पन पर मुग्ध होकर शिल्पी विशु उसे अपनी बना बैठे। दोनों स्वर और ताल की भाँति एक दूसरे पर रीझ गए। उसी के प्रेम से विशु की कला प्रस्फुटित हुई। कुछ कारणवश चन्द्रलेखा से विशु का वियोग हो गया उसके वियोग से विशु की कला में और भी निखार आया। बीस वर्ष पूर्व जब चन्द्रलेखा माँ बनने वाली थी, विशु उसे छोड़कर भाग आया था—चन्द्रलेखा और उसकी सन्तान से दूर—भुवनेश्वर में देवमन्दिर की छाया में, कला के आंचल में अपना मुँह छिपाने। अपनी सन्तान के लिए विशु ने एक कामदेव की प्रतिमा दी थी और चन्द्रलेखा ने अपने प्रेम का उपहार एक भुजबंध दिया था। धर्मपद १८ वर्ष का दृढ तेजोमीय आँखों घुंघराले बालों वाला असाधारण शिल्प प्रतिभा का युवक है। उसे किसी गुरु ने दीक्षा नहीं दी है। वह मन्दिर में कार्य करने वाले शिल्पियों पर होने वाले अत्याचार और अन्याय का निर्देश करता है, यौवन और विलास की मूर्तियाँ बनाना छोड़ने का आग्रह करता है। इतने में चालुक्य प्रवेश कर विशु से कहता है—

"राजनगरी में मैंने सुना था कि कोणार्क में राज्यकोष का धन नष्ट हो रहा है। न शिल्पी लोग ठीक काम कर रहे हैं, न मजदूर। दस दिन हो गए कलश तक स्थापित नहीं हो सका।"

चालुक्य क्रुध हो कहता है कि एक सप्ताह में यदि कोणार्क का देवालय पूरा न हुआ तो शिल्पियों के हाथ काट डाले जायगे। धर्मपद सहायता करता है केवल इस शर्त पर कि मन्दिर प्रतिष्ठापन के दिन विशु के सब अधिकार धर्मपद को मिलेंगे।

दूसरा अंक—इसमें कथानक का विकास होता है। १५ दिन पश्चात विशु के उसी कक्ष में उत्कल नरेश नरसिंह देव पधारे हैं। अपने पराक्रम से उन्होंने यवन सूबेदार को पराजित कर दिया है। कोणार्क को तैयार देखकर विभोर हो रहे हैं। वे शिल्पियों को आश्वासन और पुरस्कार दे रहे हैं। उन्हें महामात्य के विद्रोह और आक्रमण की सूचना मिलती है। "कोणार्क" मन्दिर दुर्ग में परिवर्तित कर दिया जाता है। धर्मपद कोणार्क की रक्षा का भार सम्हालता है। चुपचाप समुद्र के किनारे से जगन्नाथपुरी के श्रीमन्दिर के अधिष्ठाता के पास सहायता की सूचना भेजी जाती है। धर्मपद शत्रु से लड़ते और मन्दिर की रक्षा की योजना बनाता है। उसकी आज्ञा से प्रहरियों को धनुर्बाण दे दिये जाते हैं; भास्कर प्राचीर पर के पाषाण-खण्डों का जिम्मा अपने ऊपर लेता है। सिंह द्वार पर शिल्पियों के साथ व्यूह रचना का प्रबन्ध करता है। कोणार्क दुर्गपति बन जाता है। उसके अदम्य साहस और संगठन दक्षता पर सब विस्मित हैं।

तीसरा अंक—इस अंक में कथानक अपनी चरमसीमा (Climox) पर पहुँचता है और एक रहस्य का उद्घाटन होता है। विशु को विदित होता है कि धर्मपद उसकी प्रियतमा का ही पुत्र है। लड़ते-लड़ते धर्मपद मूर्छित हो गया है। उसकी मूर्छा ने ही बिजली दौड़ा दी है और शत्रु को रुक जाना पड़ा है। उसकी संगठन शक्ति के आगे मुट्ठी भर लोगों ने उस बलशाली सेना को इतनी देर तक रोक रखा है। इतने में मालूम होता है कि मन्दिर के दक्षिण प्राचीर के एक अंश में शत्रु के एक छोटे दल ने चुपचाप रास्ता बना लिया है। आहत धर्मपद फिर भी रक्षार्थ आगे बढ़ जाता है। बाहर बड़ी हलचल है। विशु के मन में घोर संघर्ष है। वह नहीं चाहता कि उसकी पावन कलाकृति कोणार्क भ्रष्ट हाथों में जाय। ठीक उस समय जब चालुक्य मन्दिर के गर्भ गृह में प्रवेश करती है विशु चुम्बक को तोड़कर सूर्य की विशाल मूर्ति को गिरा देता है, जिससे मन्दिर उन पर गिर कर सब को नष्ट कर देता है। यह था शिल्पी विशु का बदला।

उपसंहार में यह बात स्पष्ट कर दी जाती है कि कोणार्क के विमान के टूटते ही अत्याचारी चालुक्य तथा उसके साथियों का विनाश हुआ। विशु की जिस विराट कल्पना ने कोणार्क को साकार किया था, उसी कोणार्क की गोद में उसे मृत्यु शय्या मिली।

यों तो इस नाटक का निर्माण एक करुण कथा पर हुआ है किन्तु इसमें कई रसों का समावेश हुआ है। विशु की कला का मूल कारण प्रेम है। चन्द्र-

लेखा के सौन्दर्य और प्रेम के प्रवाह ने उसे कलाकार बना दिया है। वह स्वयं कहता है :—

"उद्दाम और उच्छृङ्खल प्रेम की आग जो एक दिन मेरा परिधान बन गई थीं, उसी परिधान का वियोग मेरी कला का उद्गम हुआ, और मेरे हाथों का पत्थर उसी ताप से मुलायम होकर साकार सौन्दर्य हो चला " "

"उसके प्रेमपाश में मेरे सुनहले सपनों के लिए घोंसला मिल गया और हम दोनों स्वर और ताल की भाँति एक दूसरे पर रीझ गये ·· उस मग्न रागिनी का विषाद मेरी कला का वैभव था। यदि चन्द्रलेखा से वियोग न होता तो शायद मेरी कारीगरी सोयी पड़ी रहती · · ।"

दूसरी कथा वात्सल्य रस से भीगी हुई है। विशु और उसके पुत्र धर्मपद का कथासूत्र मोहक है। पिता पुत्र को पाकर हर्ष से विह्वल हो उठता है। पुराना प्रेम, मधुर स्मृतियाँ जाग्रत हो उठती हैं। विशु को अपने कलाकार पुत्र पर गर्व है। वह अपने को धन्य मानता है कि किसी अदृश्य शक्ति ने उसे शिल्पकला सिखा दी। सैंकड़ों हज़ारों वर्षों तक कोणार्क के उन्नत शिखर को देख कर लोग कहेंगे कि यह विशु और उनके बेटे की कला की सर्वोत्कृष्ट कृति है, वह सचमुच एक भाग्यशाली पिता है। लेखक ने यह भाग बड़े कोमल मनोभावों से पूर्ण कर दिया है।

इस नाटक में शिल्प और सौन्दर्य कला और पुरुषार्थ का मंजुल संयोग दिखाया गया है। विशु का पुत्र धर्मपद जहाँ उच्चकोटि का कलाकार है, वहाँ वह वीर निर्भय योद्धा, उच्चकोटि का संगठन कर्त्ता, स्वामिनी आत्म निर्भर स्वदेश प्रेमी भी है। वह इतनी देर तक चालुक्य की सेना को रोके रहता है जब तक कि नरसिंह देव नौका में बैठ कर सुरक्षित स्थानों पर पहुँच सकें।

इसमें जन शक्ति की राजनीति का भी प्रदर्शन है। जिस राजा के साथ जनता की शक्ति है, उसकी शक्ति कितनी बढ़ जाती है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। दीन निर्धन प्रजा की शक्ति कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों से दुर्दम सेनाओं का बल भर देती है। उनके अस्त्र बनते हैं, कुदाली दण्ड, हथौड़े और पत्थर। कलाकार दोनों काम करते हैं कला की साधना तथा राजा को निष्कपट करना। विशु की कला ही महान नहीं, उसका अन्तिम बलिदान भी महान् है।

इस नाटक का मुख्य पात्र विशु है, जो अपनी कला का पारगत है। उत्कल राज्य का प्रधान शिल्पी और पारगत है। वह बारह वर्ष की साधना के पश्चात् कोणार्क बनाता है पर चालुक्य के हाथ से उसे अपावन न होने के लिए बलि-

दान करता है। कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं हो सकता। उसका चरित्र आदर्श है। उसका पुत्र धर्मपद वीर साहसी योद्धा और उससे भी बढा चढा कलाकार है। इन दोनों चरित्रों पर यह नाटक आधारित है। कोई स्त्री पात्र न होने पर भी सघर्ष बड़ा ही सुन्दर अङ्कित हुआ है। अप्रत्यक्ष रूप से इसमें नारी की महत्ता, उसके प्रेम और मातृत्त्व का प्रतिपादन हुआ है। यह नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर की बड़ी सफलता है। मुख्य नाटक की गति तीव्र और अविच्छिन्न है। नाटक प्रारभ होने के लिए उपक्रम में कथासूत्र भी दे दिया गया है उपसंहार में समाप्ति पर दर्शकों की विशृङ्खल मानसिक दशा की तुष्टि को उतार दे दिया गया है। सब सूत्र स्पष्ट हो जाते हैं।

माथुर साहब ने "कोणार्क" की कथावस्तु का आधार इतिहास से लिया है किन्तु उनकी कल्पना इतनी सशक्त है कि तत्कालीन वातावरण बड़ी सुचारुता से उत्पन्न कर सके हैं। अनेक प्रासगिक घटनाएँ जोड़कर "कोणार्क" नाटक में नाटकत्व का सचार किया गया है। अन्तिम प्रसग जिसमें विशु मदिर तोड़ता है बड़ा शक्तिशाली बन पड़ा है। नाट्यशिल्प की सफलता स्पष्ट है। नाटक आरम्भ से अन्त तक, अपनी घटनाओं के विकास और चरम परिणति में, पाठकों को केन्द्रित किए रहता है। सर्वत्र सजीवता बनी रहती है। अन्त रहस्यात्मक है। नाटक के अन्त में दर्शकों को ज्ञात होता है कि धर्मपद की प्रतिभा का उद्गम स्थान कहाँ है! उसके पिता का नाम पता चलते ही दर्शक स्तम्भित रह जाते हैं। पिता-पुत्र का सम्बन्ध स्पष्ट कर नाटककार ने उत्सुकता को अन्त तक स्थिर रखा है। अन्त में विशु का मंदिर को तोड़ना भी चमत्कार पूर्ण है।

इन नाटक का शिल्प बड़ी सुचारुता से बनाया गया है। केवल ३ अंकों में ही सम्पूर्ण कथावस्तु को नियोजित कर दिया गया है। घटनाएँ एक के बाद एक तीव्रता से आगे चलती हैं। अन्त में जहाँ विशु और धर्मपद का पिता पुत्र सम्बन्ध स्पष्ट होता है, तो कथानक में उभार आता है। अन्त में चरमसीमा तक पहुँचते पहुँचते यह एक रहस्यात्मक ढग से समाप्त हो जाता है। अंतिम अंक में घटनाएँ बहुत तीव्र हैं; कार्य व्यापार भी पर्याप्त है और सबसे अधिक मर्मस्थल को स्पर्श करने की बड़ी शक्ति है।

काव्यत्व का स्पर्श सम्पूर्ण नाटक पर है। प्रारम्भ और अन्त मधुर काव्य से होता है। अन्त में कोरस की झलक है। समाप्त होते होते एक कारुणिक मानसिक पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। निम्न उदाहरणों में विचारों की गहराई, मौलिकता, अनुभूति की तीव्रता स्पष्ट परिलक्षित होती है :—

"उद्दाम और उच्छृङ्खल प्रेम की आग जो एक दिन मेरा परिधान बन गई थी; उसी परिधान का वियोग मेरी कला का उद्गम हुआ, और मेरे हाथों का पत्थर उसी ताप से मुलायम होकर साकार सौन्दर्य हो चला। आज वह गर्मी कहाँ जो पत्थर को पिघला दे।"

"उसके प्रेमपाश में मेरे सुनहरे सपनों के लिए घोंसला मिल गया और हम दोनों ताल और स्वर की भाँति एक दूसरे पर रीझ गये' ...... 'उस मान-रागिनी का विषाद मेरी कला का वैभव था। यदि चन्द्रलेखा से वियोग न होता तो शायद मेरी कारीगरी सोई पड़ी रहती।"

कैसा अपूर्व क्षण होगा वह! मेरी सारी साधना फलीभूत होकर आह्लाद और उन्माद में विलय हो जायगी, धरती और अम्बर मेरे उल्लास को सम्हाल न सकेंगे।"

माथुर साहब ने चरित्र चित्रण में कमाल हासिल किया है। उनके पात्र विशु, धर्मपद, राजराज चालुक्य, मुकुन्द सजीव पात्र हैं। उनका पृथक् पृथक् व्यक्तित्व है, निजी विशेषताएँ हैं। आपके नाटकों की भाषा सरल सरस और चुस्त है। पात्रों एव वातावरण के अनुसार बदलती है। एकांकियों की भाषा आधुनिक ढग की है, सांस्कृतिक नाटकों में काव्य का सहज स्पर्श है। इनका संविधान रंगमचीय है। स्वय रगमच का अनुभव होने के कारण ये नाटक स्कूल कालेजों और अमेचर क्लबों में भी लोक-प्रिय होंगे। रगमच का चित्र दे देने से व्यवस्था सम्बन्धी कठिनाइयाँ उपस्थित नहीं होतीं। परिशिष्ट में दिये गये अनुभवों से नए अभिनेताओं को पर्याप्त सहायता मिल सकती है। विषय निर्वाचन, कथावस्तु, क्रमविकास, संवाद आदि की दृष्टियों से इनके नाटक सफल हैं। *

---

* श्री जगदीशचन्द्र माथुर के एकांकियों के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र अध्याय प्रो० महेन्द्र की "हिन्दी एकांकी और एकांकीकार" पुस्तक में पढ़िये।